प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया

प्रवचन-क्रम

1. जोगी, चेत नगर में रहो रे...2
2. विस्मय है द्वार प्रभु का...28
3. सतनमा तें लागि अंखियां..51
4. मदहोश हमें तू कर दे...75
5. बिन गुरु मारग कौन बतावै...98
6. दूर जाना है मुझे..123
7. गुरुमत अगम अगाध...146
8. द्विज मनसिज, पंख खोल...171
9. चंदरोज को जीवना...198 10..बन गया हूं बांसुरी मैं 226

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
पहला प्रवचन

जोगी, चेत नगर में रहो रे

जग में जै दिन है जिंदगानी।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी।।
या देही का कौन भरोसा, उभसा भाठा पानी।।
उपजत मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरूर गुमानी।।
यह तो है करता की कुदरत, नाम तू ले पहिचानी।।
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी।।
काहु के हाथ साथ कछु नाहीं, दुनिया है हैरानी।।
दूलनदास बिस्वास भजन करू, यहि है नाम निसानी।।

जोगी चेत नगर में रहो रे।
प्रेम रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे।।
अंतर लाओ नामहि की धुनि, करम-भरम सब धो रे।।
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रगट कहो रे।।
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे।।

सब काहे भूलहु हो भाई, तू तो सतगुरु सबद समइले हो।
ना प्रभु मिलिहै जोग जाप तें, ना पथरा के पूजे।
ना प्रभु मिलिहै पउआं पखारे, ना काया के भूंजे।।
दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी।
आनकै जिव आपन करि जानहु, तब मिलिहैं अविनासी।
पढ़ि-पढ़ि के पंडित सब थाके, मुलना पढ़ै कुराना।
भस्म रमाइ जोगिया भूले, उनहूं मरम न जाना।।
जोग जाग तहियां से छाड़ल, छाड़ल तिरथ नहाना।
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निरबाना।।

मेरे गीत शोर थे केवल तुमसे लगी लगन के पहले जैसे पत्थर-भर होती है हर प्रतिमा पूजन के पहले

स्वर थे लेकिन दर्द नहीं था
मेरे छंद सुवासित कब थे
आंसू के छींटों से पहले
जीवन से उद्भासित कब थे
मुझमें संभावना नहीं थी दर्दों के दोहन के पहले जैसे अमृत प्राप्य नहीं था सागर के मंथन के पहले

अपने में सौंदर्य समेटे
होने को तो सृष्टि यही थी
लेकिन जो सुंदरता देखे
दृग में ऐसी दृष्टि नहीं थी
स्वच्छ नहीं थी नजर तुम्हारे रूपायित दर्शन के पहले जैसे कांच मात्र रहता है कांच सदा दर्पण के पहले

तुमसे जोड़े सूत्र स्नेह के
जुड़ बैठा मुझसे जग सारा
सारी दुनिया का हो बैठा
मैं जिस दिन हो गया तुम्हारा
मैं था बहुत अपरिचित निज से तुमसे परिचय-क्षण के पहले जैसे सीप न जन्मे मोती स्वाति-नखत जल-कण के पहले

कोकिल जितना घायल होता
उतनी मधुर कुहुक देता है
जितना धुंधवाता है चंदन
उतनी अधिक महक देता है
मैं तो केवल तन ही तन था मुझमें जागे मन के पहले
जैसे सिर्फ बांस का टुकड़ा है बंसी-वादन के पहले

मनुष्य तो बांस का एक टुकड़ा है--बस, बांस का! बांस की एक पोली पोंगरी। प्रभु के ओंठों से लग जाए तो अभिप्राय का जन्म होता है, अर्थ का जन्म होता है, महिमा प्रकट होती है। संगीत छिपा पड़ा है बांस के टुकड़े में, मगर उसके जादुई स्पर्श के बिना प्रकट न होगा। पत्थर की मूर्ति भी पूजा से भरे हृदय के समक्ष सप्राण हो जाती है। प्रेम से भरी आंखें प्रकृति में ही परमात्मा का अनुभव कर लेती हैं।
सारी बात परमात्मा से जुड़ने की है। उससे बिना जुड़े सब है और कुछ भी नहीं है। वीणा पड़ी रहेगी और छंद पैदा न होंगे। हृदय तो रहेगा, श्वास भी चलेगी, लेकिन प्रेम की रसधार न बहेगी। वृक्ष भी होंगे लेकिन फूल न खिलेंगे; जीवन में फल न आएंगे। परमात्मा से जुड़े बिना कोई परितृप्ति नहीं है। परमात्मा से जुड़े बिना लंबी-लंबी यात्रा है, बड़ी लंबी अथक यात्रा है; लेकिन मरुस्थल और मरुस्थल! मरूद्यानों का कोई पता नहीं चलता।
आज हम एक अपूर्व संत दूलनदास के साथ तीर्थयात्रा पर निकलते हैं। दूलनदास अब केवल बांस के टुकड़े नहीं हैं, बांसुरी हो गए हैं। कृष्ण के स्वर उनके प्राणों को तरंगित कर रहे हैं। अब वे केवल सागर नहीं हैं। मंथन हो चुका, अमृत प्रकट हुआ है। कहां खारा सागर और कहां मंथन से प्रकट हुआ अमृत! दोनों में जोड़ भी नहीं बैठता। गणित और तर्क काम नहीं आते। अब उनकी वीणा मुर्दा नहीं है, आत्मवान हो उठी है।
कोकिल जितना घायल होता
उतनी मधुर कुहुक देता है
जितना धुंधवाता है चंदन
उतनी अधिक महक देता है
मैं तो केवल तन ही तन था मुझमें जागे मन के पहले
जैसे सिर्फ बांस का टुकड़ा है बंसी-वादन के पहले
दूलनदास का वादन शुरू हो गया है। बांसुरी सप्राण हो उठी है। दूलनदास
के हृदय में परमात्मा नाच रहा है। अगर उनकी दो-चार बूंदें भी तुम्हारे हृदय पर पड़ गईं तो तुम कुछ के कुछ हो जाओगे; फिर तुम वही न रहोगे जो थे। तुम्हारी दृष्टि बदलेगी और जब दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है। तुम्हारे भीतर भी मोती पैदा हो सकते हैं। दूलनदास के स्वाति नक्षत्र में बरसती बूंदों को अपने हृदय तक पहुंचने दो। खोलो अपने हृदय की सीप को। सुनो ही मत, पीयो। क्योंकि ये बातें नहीं हैं जो सुनकर पूरी हो जाएं; ये जीवन को रूपांतरित करने के सूत्र हैं। ये क्रांति के सूत्र हैं। यह पारस का स्पर्श है; लोहा सोना हो सकता है।
मैं था बहुत अपरिचित निज से तुमसे परिचय-क्षण के पहले
जैसे सीप न जन्मे मोती स्वाति-नखत जल-कण के पहले
छोड़ना मत यह अवसर। मुश्किल से आता है स्वाति का नक्षत्र। मुश्किल से बरसती है अमृत की बूंद। कहीं ऐसा न हो कि सीप तुम्हारी बंद ही रह जाए। बूंद गिरे भी और तुम्हारे हृदय तक न पहुंचे। वर्षा हो भी और तुम प्यासे रह जाओ। मेरे गीत शोर थे केवल तुमसे लगी लगन के पहले
जैसे पत्थर-भर होती है हर प्रतिमा पूजन के पहले
दूलनदास के साथ थोड़े दिन तक की यह यात्रा तुम्हारे जीवन में अविस्मरणीय हो सकती है। उनकी रोशनी में तुम अगर चल लो तो तुम्हें अपनी रोशनी की याद आ सकती है।
यही तो सदगुरु का सत्संग है। तुम्हारे पास अपना दीया नहीं है लेकिन किसी का दीया जला है। रात अंधेरी है, अमावस है। जिसका दीया जला है उसके साथ तुम चार कदम चल लो तो तुम्हारा पथ भी प्रकाशित होता है। और न केवल यही कि

तुम्हारा पथ प्रकाशित होता है, तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि यही संभावना मेरी भी है, ऐसा ही दीया मैं भी हूं। तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि जैसा आज मैं अंधेरा हूं, कल सदगुरु भी अंधेरा था। आज सदगुरु प्रकाशित हुआ है, कल मैं भी प्रकाशित हो सकता हूं। जो मेरा वर्तमान है वही तो कल सदगुरु का अतीत था। जो आज उसका वर्तमान है, कल मेरा भविष्य हो सकता है। उड़ते हुए पक्षी को देख कर, जो पक्षी कभी न उड़ा हो उसके भी पंख फड़फड़ा उठते हैं। वृक्ष को खिलते हुए देख कर जो वृक्ष कभी न खिला हो उसके प्राणों में भी सुगबुगाहट शुरू हो जाती है। झरने को बहते देख कर सागर की तरफ जो सरोवर सदा अपने में बंद रहा हो उसके भीतर भी एक व्याकुलता उठती है, एक विरह-वेदना उठती है, एक पुकार उठती है कि चलूं, बढ़ूं, कि मैं भी खोजूं। खोजूं उसे जिसे पाकर समग्र हो जाऊं। खोजूं उसे जिसे पाकर विराट हो जाऊं। ये थोड़े से कदम जो दूलनदास के साथ लेने हैं, बहुत सम्हल-सम्हल कर लेना। ये पूजन के क्षण हैं। और अगर जिन्होंने जाना है उनके पास बैठ कर भी जानना न घटे, जिन्होंने पाया है उनके पास बैठ कर भी पाने की प्रबल पुकार न उठे, प्यास न जगे--तो बड़े अभागे हो। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है। सत्य की तरफ जाने का सत्संग के अतिरिक्त और कोई द्वार ही नहीं है।
मेरे जीवन का विष अमृत
तुम न करोगे कौन करेगा!
मैं लोहा हूं त्याज्य तिरस्कृत
ओ, पारस क्या परस न दोगे
कौतूहल अंधा हो जाए
तो भी क्या तुम दरस न दोगे मेरे अंतर मन का कल्मष
तुम न हरोगे कौन हरेगा!
चुभते शूल पगों में मेरे किंतु निकलती आह तुम्हारी दुख मेरा पर हृदय तुम्हारा तन मेरा पर छांह तुम्हारी मेरे आंसू अपनी पलकों
तुम न भरोगे कौन भरेगा!
मेरे जलते मस्तक पर यूं
चू पड़ते हैं अश्रु तुम्हारे रेगिस्तानी प्यास कि जैसे गंगाजल से अधर पखारे
मेरे मरुस्थल पर करुणा-घन तुम न झरोगे कौन झरेगा!
संघर्षों से टूट गिरूं मैं उसके पहले बांह चाहिए
जीवन की दोपहरी में अब
प्रिय आंचल की छांह चाहिए मेरा बोझ अपने कंधों
तुम न धरोगे कौन धरेगा!
दुख ने काफी धोया लेकिन
मन अब भी है कुछ-कुछ मैला
फन काढ़े रहता है मुझमें
अभी अहम का नाग विषैला
मेरी कुंठा को विवेक से
तुम न वरोगे कौन वरेगा!
सदगुरु संस्पर्श है अज्ञात का। सदगुरु साक्षात है अज्ञात का। दृश्य
है अदृश्य के लिए। परिचित है अपरिचित का। दूर-दूर की ध्वनि है लेकिन तुम्हारे कानों के पास, तुम्हारे हृदय के पास गूंजती हुई। लेकिन तुम्हारे विरोध में कोई मुत्ति संभव नहीं है, तुम्हारा सहयोग चाहिए।

दूलनदास तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले सकते हैं, लेकिन तुम ही दोगे तो; स्वेच्छा से दोगे तो! सत्य थोपे नहीं जाते, आरोपित नहीं किए जाते, आमंत्रित किए जाते हैं। सत्य का स्वागत करना होता है बंदनवार बांध कर, दीये जला कर, आरती सजा कर। आरती सजा कर सुनना इन वचनों को। ये बड़े प्रीति- रस पगे हैं। बंदनवार बांध कर, हृदय के द्वार खोल कर, पूजा का थाल सजा कर इन अमृत-वचनों को अतिथि की भांति अपने अंतर्गृह में ले जाना। ये बीज बनेंगे, इनसे बड़े वृक्ष होंगे, इनसे तुम्हारी पृथ्वी और आकाश के बीच सेतु बनेगा। कहते हैं दूलन--
जग में जै दिन है जिंदगानी
ज्यादा देर की जिंदगी नहीं है जग में, थोड़े से दिन की है; बहुत थोड़े दिन की है। अंगुलियों पर गिने जाएं इतनी छोटी है जिंदगी। और अगर यह छोटी सी जिंदगी भी कैसे व्यर्थ के कामों में व्यतीत हो जाती है!
अगर आदमी साठ साल जिंदा रहे तो बीस साल तो सोने में ही बीत जाते हैं। बचे बीस साल, रोटी-रोजी कमाने में--दुकान से घर, घर से दुकान। बचे बीस साल! अदभुत आदमी है! इसलिए दूलनदास कहते हैं, "दुनिया है हैरानी।" कोई ताश खेल रहा है, कोई फिल्म देख रहा है, कोई होटल में बैठकर गपशप मार रहा है। और पूछो कि क्या कर रहे हो तो लोग कहते हैं, समय काट रहे हैं। इतनी छोटी जिंदगी, समय इतना बहुमूल्य कि जो क्षण एक बार गया, गया; फिर लौटता नहीं, उसे भी काट रहे हो?
जब तुम कहते हो समय काट रहे हैं, तो तुम क्या सोचते हो, जानते हो? तुम
यह कहते हो, जिंदगी काट रहे हैं। जब तुम कहते हो समय काट रहे हैं तब तुमने याद किया? तुमने परमात्मा की शिकायत की। तुमने यह कहा कि क्या जिंदगी दे दी मुझे! यह क्या व्यर्थ का समय दे दिया, काटे नहीं कटता! जब तुम कहते हो, समय काट रहा हूं, तब तुम धन्यवाद नहीं दे रहे परमात्मा को, शिकायत कर रहे हो। इतना अपूर्व जीवन मिले, धन्यवाद तो दूर, हमारे हृदय शिकायतों से भरे हैं। जहां एक-एक क्षण अमृत की वर्षा हो सकती है और जहां एक-एक क्षण अनाहत के नाद में बीत सकता है--वहां समय काट रहे हो!
जग में जै दिन है जिंदगानी
थोड़े से दिन की तो जिंदगी है! चार दिन की तो जिंदगी है! ऐसे तो बह जाती
है जैसे पानी की लहर। फिर भी होश नहीं आता। मौत रोज-रोज द्वार पर दस्तक देती है, उसकी दस्तक रोज-रोज तीव्र होती जाती है; फिर भी होश नहीं आता।
जग में जै दिन है जिंदगानी
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी
एक ही उपयोग हो सकता है इस जीवन का कि यह महाजीवन से जुड़ा दे।
फिर से दोहरा दूं: इस जीवन का एक ही सदुपयोग है कि यह महाजीवन से जुड़ा दे। समय का एक ही सदुपयोग है कि जो समयातीत है, कालातीत है उससे संबंध बन जाए। क्षण हमें उससे मिला दे जो शाश्वत है तो हमने उपयोग कर लिया, तो हमने अवसर को निचोड़ लिया पूरा-पूरा; तो परमात्मा के सामने हम अपराधी न होंगे; तो परमात्मा के सामने हम सिर उठा कर खड़े हो सकेंगे कि तूने जो महा अवसर दिया था, हमने व्यर्थ न जाने दिया। हमने मिट्टी में फूल उगा लिए और हमने पानी की धार पर शाश्वत रेखाएं खींच दीं। और हमने कूड़े-करकट को हीरों में रूपांतरित कर लिया और हमने मर्त्य देह में अमृत का स्वाद ले लिया। जब तक ऐसा न हो जाए तब तक जानना परमात्मा के सामने सिर तुम्हारा ग्लानि से झुका रहेगा, अपराध में दबा रहेगा। तुम आंख उठा न सकोगे। तुम आंख चार कर न सकोगे। कैसे यह हो सकता है कि मरणधर्मा देह में अमृत का स्वाद आ जाए? जिसको आ गया हो स्वाद उसके साथ संग-साथ जोड़ लो, उससे मैत्री बना लो। उसी मैत्री का नाम शिष्यत्व है।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी
जो प्रकाशित हो उठा हो, जिसके भीतर जल उठी हो ज्योति उसके चरणों में झुक जाओ। क्योंकि झुके बिना तुम्हारी झोली न भरेगी। नदी की धार बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो और अगर झुक कर अंजुली न बनाओगे तो तुम्हारी अंजुली में जल न भरेगा और तुम्हारा कंठ प्यासा का प्यासा रह जाएगा। झुको! नदी से जल हाथ में भरना होता है तो झुकना होता है। अंजुली बनाओ, कंठ तक ले जाओ जल को।

नदी तुम्हारे कंठ तक नहीं जा सकती। सदगुरु तुम्हारे सामने मौजूद हो सकता है मगर झुकना तुम्हें होगा, अंजुली तुम्हें बनानी होगी, पीना तुम्हें होगा।
जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से: पियो मुझे, पचाओ मुझे, बनने दो मुझे रक्त-मांस-मज्जा। ठीक कहा है। गुरु को पीना होगा। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, अमृत की धार है। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, प्रकाश का अवतरण है। गुरु कोई देह तो नहीं है। देह तो आवरण है, देह के भीतर छिपा है कोई, उससे संबंध जोड़ो। उससे झुकोगे तो ही संबंध जुड़ता है। क्यों झुकने से संबंध जुड़ता है? झुकने की कला है। झुकने का अर्थ है, मैं अपना मैं-भाव छोड़ता हूं। जब तक तुम कहते हो कि मैं मैं तब तक अकड़ होती है।
कल ही एक सज्जन ने पत्र लिखा कि बड़े दूर से आया हूं। मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं। मैं स्वयं गुरु हूं। मेरे शिष्य भी हैं। आपके दर्शन करना चाहता हूं। मैंने पुछवाया कि जब तुम्हें अपने दर्शन हो गए तो तुम इतने दूर नाहक क्यों परेशान हुए हो? दो में से कुछ एक बात तय कर लोः या तो तुमने स्वयं को जान लिया, तब बातचीत की कोई अर्थवत्ता नहीं है। जान ही लिया, बात खत्म हो गई। स्वागत तुम्हारा! धन्यभागी हो तुम! या तो तय कर लो कि तुमने अपने को जान लिया है। तो फिर इतने दूर आने का कोई प्रयोजन न था। और या अगर मिलना है तो फिर तय कर लो कि अभी जानना नहीं हुआ है।
लोग जानना भी चाहते हैं और झुकना भी नहीं चाहते। अहंकार को बचाकर लोग सत्य को जान लेना चाहते हैं। यह न तो कभी हुआ है, न कभी हो सकेगा। अहंकार ही तो बाधा है। गुरु के चरणों में झुकने से थोड़े ही सत्य मिलता है। चरणों में झुकना तो केवल बहाना है। अहंकार को गिराने का बहाना है। अगर तुम बिना चरणों में झुके अहंकार गिरा सकते हो तो काम हो जाएगा। असली सवाल अहंकार के गिरने का है। इसलिए यह भ्रांति मत लेना कि चरण छूने से सत्य मिलता है। चरण छूने से क्या सत्य मिलेगा! लेकिन अहंकार के गिरने से सत्य मिलता है। चरण छूना अहंकार को गिराने का केवल एक उपयोग, एक प्रयोग, एक विधि, एक माध्यम, एक निमित्त।
जैसे ही तुम अपने अहंकार को छोड़ते हो, क्या होता है? अहंकार का अर्थ होता है, मैं अस्तित्व से भिन्न हूं और अहंकार छोड़ने का अर्थ होता है, मैं अस्तित्व से एक हूं। बस, भिन्नता में भ्रांति है, एकता में सत्य है। भिन्नता में द्वैत है, एकता में अद्वैत है। जैसे ही यह भाव गया कि मैं भिन्न हूं, वैसे ही सारा जगत तुम्हारा है, सारा अस्तित्व तुम्हारा है। तत्वमसि! तब फिर तुम वही हो जो परमात्मा है। फिर जरा भी भेद नहीं। भेद कभी था भी नहीं। तुमने ही भ्रांति बना ली थी तो भेद हो गया था। तुमने ही एक लक्ष्मण-रेखा खींच रखी थी अपने चारों तरफ और मान लिया था कि इसके बाहर नहीं जा सकता हूं। बस, मानने की बात थी, ख्याल रखना। लक्ष्मण-रेखाएं किसी को रोक नहीं सकतीं। बस, मानने की बात है। और अगर मान लो तो रोक लेती हैं। गुरजिएफ ने लिखा है कि कजाकिस्तान में वह बड़ा हैरान हुआ। वह एक ऐसे कबीले के करीब आया, जिस कबीले के छोटे-छोटे बच्चों को यह लक्ष्मणरेखा की बात बड़े बचपन से सिखा दी जाती है। फिर यह जिंदगी-भर काम करती है। कजाकिस्तान गरीब इलाका है। स्त्रियों को काम करने जाना पड़ता है। छोटे- छोटे बच्चे, उनको किसके सहारे छोड़ जाओ? तो एक रास्ता उन्होंने निकाला है सदियों से। छोटे बच्चे के चारों तरफ खड़िया से एक लकीर खींच देते हैं और उस बच्चे से कह देते हैं, इसके बाहर नहीं जाना है; इसके बाहर तू जा नहीं सकता। कोई जाने का उपाय ही नहीं है। छोटे बच्चे और बच्चों को भी देखते हैं अपनी- अपनी खड़िया के घेरे के भीतर बैठे। कोई बाहर नहीं निकलता। धीरे-धीरे यह आत्म-सम्मोहन इतना गहरा हो जाता है कि गुरजिएफ ने लिखा है, सत्तर साल के आदमी के चारों तरफ खड़िया की लकीर खींच दो और कह दो कि तुम इसके बाहर नहीं जा सकते हो; वह बाहर नहीं जा सकता।
खड़िया की लकीर उसे बाहर जाने से कैसे रोक सकती है? तुम्हें नहीं रोक सकती, मगर उसे रोकती है। उसके मन में एक भ्रांति बैठ गई है। भ्रांति सघन हो गई है। बार-बार पुनरुक्त करने से सम्मोहित हो गया है वह। गुरजिएफ ने बहुत कोशिश की कि उसे खींच कर बाहर निकाल ले लेकिन खींच कर भी न निकाल सका। वह

जैसे ही खड़िया के पास आए, जैसे कोई अदृश्य दीवाल उसको रोक ले। निकलना भी चाहे तो निकल नहीं सकता।
ऐसे मनुष्य के मन के सम्मोहन हैं। और तुम्हारा अहंकार खड़िया की खींची हुई लकीर है। खड़िया की लकीर तो कुछ होती है, तुम्हारा अहंकार उतना भी नहीं है। अहंकार सिर्फ एक मानी हुई भ्रांति है जो बचपन से हमें समझायी गई है कि तुम हो; तुम अलग हो; कि तुम भिन्न हो; कि तुम्हें कुछ दुनिया में करके दिखाना है; कि तुम्हें नाम छोड़ जाना है; कि इतिहास में तुम्हें अपने चिह्न छोड़ जाने हैं, ऐसे ही मत मर जाना, कि तुम कुलीन घर में पैदा हुए हो, अपने बापदादों का नाम रोशन करना है। हजार-हजार ढंग से हमने हर बच्चे को यह सिखाया है कि तू भिन्न है और तुझे अपनी भिन्नता का हस्ताक्षर इस पृथ्वी पर सदा के लिए छोड़ जाना है। यह लक्ष्मण-रेखा गहरी हो गई है। इस लक्ष्मणरेखा को मिटाने के लिए कुछ उपाय खोजने जरूरी हैं।
गुरु के चरणों में सिर रखना बहुत उपायों में एक उपाय है और बहुत कारगर उपाय है। क्योंकि मंदिर की मूर्ति के सामने भी तुम सिर रख सकते हो लेकिन कारगर नहीं होगा। क्योंकि मंदिर पत्थर की मूर्ति है, उसके सामने झुकने में तुम्हारे अहंकार को चोट नहीं लगती। जब तुम अपने ही जैसे मांस-मज्जा के बने हुए मनुष्य के सामने झुकते हो तब चोट लगती है। पत्थर के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। आकाश में बैठे परमात्मा के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण, राम, बुद्ध, अतीत में हुए सत्पुरुषों के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुम्हारे सामने जो मौजूद हो, तुम्हारे जैसा हो, भूख लगती हो, प्यास लगती हो, सर्दी-धूप लगती हो, बीमार होता हो, बूढ़ा होता हो, ठीक तुम जैसा हो, उसके सामने झुकने में बड़ी अड़चन होती है। अहंकार कहता है इसके सामने क्यों झुकूं? यह तो मेरे जैसा ही है। मुझमें-इसमें भेद क्या है? अहंकार बचाव करता है। इसलिए जीवित सदगुरु के सामने जो झुक गया उसका अहंकार तत्क्षण गिर जाता है। मगर यह मत सोचना कि सिर्फ झुकने से गिर जाता है। झुकना औपचारिक भी हो सकता है--जैसा इस देश में है।
इस देश में झुकना औपचारिक हो गया है। लोग झुक जाते हैं, झुकने का कोई ख्याल ही नहीं आता। झुकते रहे हैं। जो आया उसके सामने झुकते रहे हैं। झुकना एक शिष्टाचार हो गया है। जैसे पश्चिम में लोग हाथ मिलाते हैं, ऐसे यहां लोग पैर पड़ लेते हैं। जैसे नमस्कार करते हैं ऐसा पैर पड़ लेते हैं।
नमस्कार भी औपचारिक हो गई है; होनी तो नहीं थी, जिन्होंने खोजी थी, बड़े विचार से खोजी थी।
तुम देखते हो, हमारे देश में हम नमस्कार करते हैं, वह बड़ी भिन्न है। पश्चिम में लोग कहते हैं, शुभ प्रभात, कि शुभ रजनी। हम ऐसा नहीं कहते। हम कहते हैं, जय राम! हम सुबह और सांझ की बात नहीं करते, हम राम की बात करते हैं। हम कहते हैं, राम की जय हो। जब तुम हाथ जोड़ कर किसी व्यक्ति से कहते हो राम की जय हो, तो तुम यह क्या कह रहे हो? जिन्होंने खोजा था उन्होंने बड़ी बारीक बात खोज दी थी। उन्होंने यह कहा है कि दूसरे को देखकर राम की याद करना क्योंकि दूसरा राम ही है। और दूसरे में राम दिखे तो अपने में भी राम दिखेगा। और जब दूसरे को देखो तो राम का ही स्मरण करना, राम की ही जय बोलना क्योंकि जय तो उसी की है और किसी की भी नहीं। जय तो समग्र की है, पूर्ण की है; अंश की नहीं है, अंशी की है; खंड की नहीं है, अखंड की है। तो राम की जय बोलना। राम की जय में तुम्हारी भी जय है, दूसरे की भी जय है। राम की जय में सारे अस्तित्व की जय है।
यह भी झुकने की एक तरकीब थी, मगर औपचारिक हो गई। अब हम राम की तो जय बोल लेते हैं, न राम की याद आती है, न दूसरे में राम दिखाई पड़ता है, न अपने में राम दिखाई पड़ता है। क्रियाकांड हो गया। अब तुम जाकर किसी के पैर भी छू लोगे तो भी शायद कुछ न हो। सिर तो झुक जाए, भीतर का अहंकार अकड़ा ही खड़ा रहे। भीतर का अहंकार झुके तो तुम्हारे जीवन में एक चिनगारी पड़ती है। चिनगारी जो तुम्हें जला देगी, भस्मीभूत कर देगी और तुम्हें नया रूप देगी। और तुम्हारी राख से, एक नये मनुष्य का जन्म होगा, एक नई चेतना का।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी

और मनुष्य का मन हजार तरह से टालता है। बड़ा आलसी है, बड़ा प्रमादी है। बहाने खोजता है कि आज तो संभव नहीं, कल झुकूंगा। आज तो और भी दूसरे काम हैं लेकिन कल निश्चित समय निकालूंगा, कल करूंगा प्रार्थना। आज थोड़े और काम निपटा लूं, कल पूजा का क्षण आ जाएगा। ऐसे तुम टालते हो कल पर और कल कभी आता नहीं है। कल कभी आ ही नहीं सकता। तुम चाहते भी नहीं कि कल आए। कल तो सिर्फ बहाना था टालने का। आज बचे, इतना ही क्या कम!
तुम परमात्मा से बच रहे हो। कितने जन्मों से बचते आ रहे हो! कब तक और बचना है? कब तक ऐसे ही खाली-खाली बांस की पोंगरी रहोगे, बांस के टुकड़े रहोगे? कब तक यह गागर खाली रहेगी जो अमृत से भरने को बनी है, जिसमें जल की एक बूंद भी नहीं है, अमृत की बूंद तो बहुत दूर। और भर सकती है अभी और यहीं और इसी क्षण, मगर तुम कहते हो, कल! तुम टाले चले जाते हो।
या देही का कौन भरोसा...
टाल रहे हो बिना इस बात को समझे कि इस देह का कोई भरोसा नहीं है। यह एक क्षण भी टिकेगी या नहीं? कल सुबह होगी या नहीं? जो समझते हैं वे हर रात परमात्मा को धन्यवाद देकर सोते हैं कि आज का दिन तूने दिया, धन्यवाद! अब कल सुबह उठूं या न उठूं, इसलिए आखिरी नमस्कार। जब सुबह उठते हैं तो जो समझदार हैं वे फिर परमात्मा को धन्यवाद देते हैं कि चमत्कार! कि मैं तो सोचता था कि आखिरी नमस्कार हो गया, फिर आज उठ आया हूं, फिर तूने सूरज दिखाया, फिर पक्षियों के गीत सुनाई पड़ रहे हैं, धन्यवाद! इस आखिरी दिन के लिए फिर धन्यवाद! सुबह भी आखिरी दिन है, सांझ भी आखिरी दिन है, ऐसा ही समझदार आदमी जीता है; यही उसकी बंदगी है। मूढ़ की तो न आखिरी रात होती है न आखिरी दिन होता है; वह तो मरते-मरते तक योजनाएं बनाता रहता है, आखिरी क्षण तक मरते- मरते हिसाब लगाता रहता है। मौत द्वार पर आ जाती है, फिर भी उसे दिखाई नहीं पड़ती। ऐसा हमारा अंधापन है।
या देही का कौन भरोसा, उभसा भाठा पानी
जैसे ज्वार-भाटा उठता है सागर में--उठा और गया, आया और गया, लहर आई और बीती, ऐसी यह जिंदगी है ज्वार-भाटे की तरह। इस देह का क्या भरोसा कर रहे हो? इस देह की क्षमता तुम सोचते हो? अठानवे डिग्री गर्मी है तो ठीक जिंदा हो। जरा चार-छह डिग्री गिर जाए, बस चार-छह डिग्री गर्मी नीचे गिर जाए कि ठंडे हो गए, कि जरा दस डिग्री ऊपर चढ़ जाए कि वाष्पीभूत हो गए। तो तुम्हारी जिंदगी का घेरा कितना हुआ? यह कोई दस-पंद्रह डिग्री का घेरा है। इतनी सी तुम्हारी सीमा है। एक बूंद जहर की, और सब समाप्त हो जाता है। इतनी हमारी क्षमता है। इतनी हमारी पात्रता है।
हिरोशिमा पर पहला अणुबम गिरा, पांच मिनिट के भीतर एक लाख व्यक्ति राख
हो गए। हमारे जैसे ही लोग थे। सब तरह की योजनाओं में लगे होंगे। कोई फिल्म की टिकट खरीद कर लाया होगा और आज रात फिल्म देखनी थी। और कोई सर्कस जाना चाहता होगा। और किसी के घर बैंड-बाजे बज रहे होंगे और शहनाई बज रही होगी, विवाह हो रहा था। और किसी के घर बेटा पैदा हुआ था और उत्सव मनाया जा रहा था। और किसी का प्रियजन घर आया था और उसने दीपावली मनाई थी। और सब कुछ हो रहा होगा जैसा सारे नगरों में होता है। दूल्हे सज रहे होंगे, दुल्हनें सज रही होंगी, बच्चे कल के स्कूल की तैयारी कर रहे होंगे। सब वैसे ही चल रहा होगा जैसे सारी दुनिया में चल रहा है। और बस पांच मिनट में सब ठंडा हो गया, सब राख हो गया! सब सपने ऐसे तिरोहित हो गए जैसे कभी थे ही नहीं। खोजने से एक आदमी न मिलता, एक चेहरा पहचान में न आता। सब लाशें ही लाशें हो गईं।
ऐसी क्षणभंगुर जिंदगी पर कैसे भरोसा कर रहे हो? अभी हम सब बैठे हैं और
एक क्षण में सब समाप्त हो सकता है। पता भी नहीं चलेगा कब समाप्त हो गया। सूरज ठंडा हो जाए--एक न एक दिन ठंडा होगा; जिस दिन ठंडा हो जाएगा उसी दिन पृथ्वी ठंडी हो जाएगी। फूल जहां के तहां कुम्हला जाएंगे। श्वास जो भीतर गई, बाहर न आएगी; जो बाहर गई, भीतर न आएगी। ऐसे क्षणभंगुर जीवन पर कितना भरोसा कर रखा है हमने!
और फिर सूरज ठंडा हो या न हो, एक-एक व्यक्ति का सूरज तो ठंडा होता ही है। रोज कोई मरता है गांव में, रोज कोई अर्थी उठती है, फिर भी तुम्हें याद नहीं आता, एक लहर और मिट गई! ऐसी ही एक लहर तुम भी हो।

या देही का कौन भरोसा, उभसा भाठा पानी
उपजत मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरूर गुमानी
देर तो लगती नहीं--न उपजने में, न मिटने में। फिर भी कैसी मगरूरता है! फिर भी कैसा अहंकार है, कैसा गुमान है!
कुल मिलाकर यही जिंदगी में हुआ
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं
दर्ज करते रहे हम जमा ही जमा
किंतु नामे न डाले कभी भूल कर
आज बैठे किया उम्र-भर का गणित
लाख जोड़ा-घटाया, नतीजा सिफर हाथ खाली हुए और आसन छिना
छोड़ उठना पड़ा जिंदगी का जुआ
एक अंधे सफर पर निकलना पड़ा
जब शुरू हो गया सांस का सिलसिला अनवरत चल रहे हैं चरण राह पर कम न होता मगर बीच का फासला लौटना भी असंभव कहां जाइए
इस तरफ खाइयां, उस तरफां है कुआं प्यार ने जब हमारे हृदय को कभी
घाव ही था हरा जिस जगह भी छुआ
आज तक एक मोती नहीं ढल सका
जब चुआ आंख से गर्म आंसू चुआ
श्राप ही श्राप देती रही है खुशी
दर्द भी दे न पाया हमें तो दुआ
जरा जिंदगी का हिसाब तो करके देखो! क्या हाथ लगा है? जरा गणित ठीक से बैठाओ तो।
कुल मिला कर यही जिंदगी में हुआ
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं
जरा हाथ खोलो, जरा गौर से देखो--खाली थे, खाली हैं।
दर्ज करते रहे हम जमा ही जमा
किंतु नामे न डाले कभी भूल कर
आज बैठे किया उम्र भर का गणित
लाख जोड़ा-घटाया, नतीजा सिफर
हाथ क्या लगता है? शून्य हाथ लगता है। और कितने उछले-कूदे, कितना शोरगुल मचाया, कितने लड़े-झगड़े!
बुद्ध एक सांझ एक नदी के पास से गुजरे; खड़े हो गए। बच्चे नदी की रेत में किले बना रहे थे, महल बना रहे थे, घर-गूले बना रहे थे। और बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहाः जरा गौर से देखो। यही तुम भी करते रहे हो जिंदगी भर। रेत के मकान, रेत के महल! इधर बने, इधर मिटे। और बुद्ध ने कहाः सुनो, दिन में बहुत बार ये बच्चे एक-दूसरे से लड़े भी क्योंकि किसी से किसी के महल को धक्का लग गया। किसी का पैर किसी के महल पर पड़ गया और महल गिर गया। इन्होंने एक-दूसरे को मारा-पीटा भी, एक-दूसरे को गाली-गलौज भी दी। और अब सांझ आ गई है और सूरज ढल गया है और इनके घरों से आवाज आ रही है कि बच्चे अब लौट आओ, खाने का समय हुआ। अब ये बच्चे लौट चले। दिन भर जिन मकानों के लिए लड़े थे, उन्हीं पर खुद ही उछल-कूद कर, उनको गिरा कर, मिटा कर नाचते-गाते घर वापस जा रहे हैं।
बुद्ध ने कहा, ऐसी जिंदगी है। मौत आती है, सूरज ढल जाता है, पुकार आती
है कि अब लौट चलो। सब पड़ा रह जाता है यहीं। वे ही घर जिनके लिए हम खूब लड़े, वे ही महल जिनके लिए हम मरने और मारने को उतारू थे। हाथ में हम ले क्या जाते हैं? कुछ भी नहीं ले जाते। बड़ी मजे की, बड़ी मजाक की तो बात है।
ठीक ही कहते हैं दूलनः "दुनिया है हैरानी।" बच्चे खाली हाथ आते हैं, बूढ़े भी खाली हाथ जाते हैं। सिर्फ एक फर्क होता हैः बच्चे जब आते हैं तो मुट्ठी बंद होती है, बूढ़े जब जाते हैं तो मुट्ठी खुली होती है। दोनों होते

खाली हाथ हैं, मगर बच्चे को थोड़े भ्रम होते हैं तो मुट्ठी बांधे रखता है। सोचता है, शायद हीरे-जवाहरात हैं। बच्चा ही है, अभी समझ कहां! मुट्ठी कस कर बांधे रखता है, जैसे बड़ी संपदा छिपी हो। फर्क इतना ही पड़ता है मरते वक्त, हाथ भी खुल जाता है, जीवन भर के भ्रम भी टूट जाते हैं। बच्चे तो आशा लेकर आते हैं, बूढ़े बिल्कुल हताश जाते हैं। बच्चे तो बड़े सपने लेकर आते हैं, बूढ़ों के हाथ में सपनों की धूल भी नहीं रह जाती।
हाथ खाली हुए और आसन छिना
छोड़ उठना पड़ा जिंदगी का जुआ
एक अंधे सफर पर निकलना पड़ा
जब शुरू हो गया सांस का सिलसिला
अनवरत चल रहे हैं चरण राह पर
कम न होता मगर बीच का फासला
चलते तो बहुत हो मगर पहुंचते भी हो कहीं कि नहीं, यह कब सोचोगे? वह क्षितिज उतना का उतना दूर। जनम-जनम हो गए चलते और क्षितिज उतना का उतना दूर। लगता है यह रहा, यह रहा; अब पहुंचे, तब पहुंचे--पहुंचते कभी भी नहीं। फासला उतना का उतना है।
लौटना भी असंभव कहां जाइए
इस तरफ खाइयां, उस तरफां है कुआं
बड़ी मौत है, बड़ी मुश्किल है। लौटने की कोई जगह नहीं है, लौटो कहां? जो समय गया, गया। पीछे लौटा नहीं जा सकता। और आगे चलते रहो, चलते रहो, पहुंचना होता नहीं। ऐसी इस व्यर्थ की जिंदगी को... और कितना गरूर और कितना अहंकार और कितनी अकड़! आदमी निश्चित ही पागल होना चाहिए, अन्यथा गरूर नहीं हो सकता, अकड़ नहीं हो सकती, अहंकार नहीं हो सकता। आदमी निश्चित ही अंधा होना चाहिए। प्यार ने जब हमारे हृदय को कभी
घाव ही था हरा जिस जगह भी छुआ
आज तक एक मोती नहीं ढल सका
जब चुआ आंख से गर्म आंसू चुआ
जरा अपनी आंखें देखो, सिर्फ गर्म-गर्म आंसू ही तो टपकते रहे। कभी कोई मोती बना? कवियों की कविताओं में मत उलझ जाना। वे सिर्फ सपने हैं, आशाएं हैं, आकांक्षाएं हैं। उनमें सत्य की झलक नहीं है। उनमें तथ्य का वर्णन नहीं। उनमें मनुष्य की वासनाओं को सजाया गया है। गौर से देखोगे तो आंख से कोई मोती नहीं गिरते, बस गर्म आंसू चूते हैं--दुख के, विषाद के, विफलता के, संताप के, पराजय के।
श्राप ही श्राप देती रही है खुशी
दर्द भी दे न पाया हमें तो दुआ
कितनी खुशियां खोजीं, और हर खुशी के पीछे दुख छिपा पाया। कितने फूल खोजे, और हर फूल कांटा बन कर आया। कितनी रोशनियां दूर चमकती दिखाई पड़ीं, और जब पास पहुंचे तो अंधेरे के सिवाय हाथ कुछ भी न लगा। दूर से जो पूर्णिमा थी, पास आकर अमावस हो गई। दूर से बड़ा सुंदर था सब, पास आकर सब कुरूप हो गया। दूर से बड़ी सुवास थी, बास जैसे-जैसे पास आई, सुवास तो न रही, गहन से गहन दुर्गंध हो गई। इस जिंदगी के प्रति पुनर्विचार जरूरी है। एक प्रश्न-चिह्न उठाओ इस जिंदगी के प्रति।
उपजत मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरूर गुमानी
यह तो है करता ही कुदरत, नाम तू ले पहिचानी
और मजा यह है कि अहंकार की दौड़ में हम सब कर्ता हो गए हैं--यह कर लूं, वह
कर लूं। हमारे किए क्या होता है! हमारे हाथ में करने की सामर्थ्य क्या है! न जन्म हमारा, न मौत हमारी, न जीवन हमारा। हम ही नहीं हैं तो हमारा क्या होगा?
अगर पत्तों से भी पूछो और वे उत्तर दे सकते तो वे यही कहते कि मैं बढ़ रहा हूं। देखो, कैसा हरा हो गया हूं! कैसा फैल गया हूं! ऐसा पत्ता देखा कभी पहले? पत्ता भी अकड़ कर कहता कि जरा गौर से देखो, अद्वितीय हूं, बेजोड़ हूं। मुझ जैसा पत्ता कभी नहीं हुआ। हुए होंगे पत्ते मगर मुझसे क्या मुकाबला है! और मेरे जैसा पत्ता फिर कभी होगा भी नहीं। अगर नदी की धार से भी पूछते और

वह उत्तर दे सकती तो वह यह नहीं कहती कि मैं उतार पर हूं इसलिए बही जा रही हूं। वह यही कहती कि मैं यात्रा कर रही हूं। मैं सागर की यात्रा पर जा रही हूं।

मनुष्य को छोड़ कर, चूंकि प्रकृति कोई उत्तर नहीं देती इसलिए तुम्हें पता नहीं चलता, अन्यथा कंकड़-कंकड़ यह कहता कि मैं विशिष्ट हूं; और पत्ता-पत्ता यह कहता कि मैं कर्ता हूं। सिर्फ मनुष्य चूंकि उत्तर दे सकता है, चूंकि बोध परमात्मा ने उसे भेंट की है, चैतन्य की भेंट दी है, बजाय इसके कि उस चैतन्य से कुछ लाभ उठाए, भयंकर हानि में पड़ जाता है; बजाय उस चेतना से यह देखे कि मैं साक्षी हूं, कर्ता बन जाता है।

चेतना के दो परिणाम हो सकते हैंः या तो चेतना भ्रांत हो, भूल से भर जाए तो कर्ता हो जाती है। कर्ता हो जाए तो तुम नरक में पड़ गए। कभी पड़ोगे ऐसा नहीं, पड़ गए अभी। दुख ही तुम्हारे जीवन की कथा होगी। व्यथा ही तुम्हारी कथा होगी। और या चैतन्य साक्षी बन जाए तो तुम बुद्ध हो गए; तो यहीं मोक्ष, यहीं निर्माण। है यह पद निरबाना!

ये दो संभावनाएं हैं चैतन्य की। और अधिक लोग कर्ता बन गए हैं। ऐसी-ऐसी बातों में भी तुम कर्ता का भाव ले लेते हो जिनमें कर्ता की कल्पना भी करना संभव नहीं है। लोग कहते हैं, मैं श्वास ले रहा हूं। तुम श्वास ले रहे हो? श्वास आ रही है, जा रही है; उसमें भी कर्ता बन जाते हो। कहते हो, मैं ले रहा हूं। जैसे कि तुम चाहो कि न लो तो श्वास रुक जाए। जरा रोक कर देखना। क्षण दो क्षण भ्रांति रहेगी, फिर पसीना-पसीना हो जाओगे। फिर पता चलेगा कि श्वास तो आना चाहती है। तुम्हारे वश के बाहर है, आएगी। और अगर श्वास तुम लेते हो तो फिर मरोगे कैसे? मौत आ जाएगी और तुम श्वास लेते चले जाओगे तो मौत को लौट जाना पड़ेगा। श्वास भी हम कहां लेते हैं! श्वास जैसी अनिवार्यता भी हमारा कृत्य नहीं है। और अच्छा है कि हमारा कृत्य नहीं है, नहीं तो रात सोते, सुबह जगते नहीं। क्योंकि नींद में भूल-भाल गए, घड़ी दो घड़ी न ली श्वास!

मैं एक सज्जन को जानता हूं जो रात सोने में डरते हैं। प्रोफेसर हैं एक विश्वविद्यालय में। उनकी पत्नी मेरे पास उन्हें लेकर आई थीं। बड़े विचारशील आदमी हैं, जरा जरूरत से ज्यादा ही विचारशील हैं। उनको यह विचार बहुत सताता है कि अगर मान लो रात सोए और श्वास न चली तो? तो नींद से डरते हैं कि नहीं उठे अगर फिर, तो फिर क्या होगा? घबड़ाए रहते हैं। दिन में सोते हैं, रात में नहीं सोते, ताकि पत्नी-बच्चे देखते रहें कि श्वास चल रही है!

मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि विक्षिप्ति हैं ये। मगर यह हालत सभी की हो जाती अगर श्वास तुम्हारा कृत्य होती। कभी भूल-भाल गए, किसी से झगड़ा हो गया और भूल गए श्वास लेना, क्रोध में आ गए और भूल गए श्वास लेना, तो वहीं ठंडे हो जाते। श्वास चलती चली जाती है। बेहोश भी पड़े तो भी श्वास चलती है। वह जो शराब पीकर नाली में गिर पड़ा है उसकी भी चल रही है, बड़े मजे से चल रही है।

एक महिला के पास मुझे ले जाया गया था। वह नौ महीने से बेहोश है, कोमा में पड़ी है; मगर श्वास चल रही है। नौ महीने से उसे होश नहीं है। नौ महीने से उसे पता ही नहीं है कि वह जिंदा भी है कि मर गई, मगर श्वास चल रही है। श्वास जैसा कृत्य भी, जो तुम्हारा नहीं है, बिल्कुल तुम्हारा नहीं है, उसे भी तुम अपना बना लेते हो। कर्ताभाव को छोड़ो, साक्षीभाव को जगाओ और तुम्हारे हाथ कुंजी लग जाएगी। फिर मंदिर का द्वार खुलने में देर नहीं लगेगी।

यह तो है करता की कुदरत--यह सारा खेल उसका है। कर्ता है तो परमात्मा है। हम अगर हैं तो साक्षी हैं, दर्शक हैं।

नाम तू ले पहिचानी--अपना नाम छोड़ो। अगर नाम ही किसी का लेना है तो उसका लो जिसकी सारी कुदरत। उस असली कर्ता का नाम लो।

सुन विराट, तू लाख कहे पर
मुझको है मालूम कि निश्चित
तुझसे गीत नहीं छूटेगा
सच पूछो तू लिखता कब है
तुझसे लिखा लिया जाता है
तेरी पलकों के आंसू में

मुझको डुबा लिया जाता है लिखने वाला दर्द भीतरी
उसका तेरा साथ बाबरे
साथ चिता के ही टूटेगा
स्वर पर चुप्पी की सांकल दे कितना भी शब्दों से बचना तेरे जाने या अनजाने
तुझसे हो जाएगी रचना
तू परहेज करे पर तेरे
भीतर जो रस का सोता है
उसे फूटना है, फूटेगा
तू निषेध कैसे कर पाए
तेरे बस की बात नहीं है
तू माध्यम है किसी और का
शायद तुझको ज्ञात नहीं है देने वाले ने दे रक्खी
चंदन पर चिनगारी तुझको
आग रहेगी, धुआं उठेगा
सुन विराट, तू लाख कहे पर
मुझको है मालूम कि निश्चित
तुझसे गीत नहीं छूटेगा
जो सच कवि हुए हैं, ऋषि हुए हैं उन्होंने ऐसा ही कहाः हमने गाया नहीं, हमसे गाया गया। जो सच्चे नर्तक हुए हैं उन्होंने ऐसा ही कहाः हम नाचे नहीं, परमात्मा हमसे नाचा। हम बोले नहीं, वही बोला।
बौद्धों में कहा जाता है कि बुद्ध ने एक शब्द भी नहीं बोला। अब इससे
भी कोई झूठी और बात होगी? बयालीस वर्ष तक बुद्ध सुबह-सांझ बोलते ही रहे, सतत बोलते रहे, और बौद्ध ग्रंथ कहते हैं कि बुद्ध ने एक शब्द नहीं बोला। फिर भी यह बात झूठ नहीं है, यह बात सच है। बुद्ध बयालीस वर्ष बोले यह भी सच है। और बुद्ध ने एक शब्द भी नहीं बोला यह भी सच है। परमात्मा बोला।
वेद ऋषियों ने नहीं रचे इसलिए तो हम वेद को अपौरुषेय कहते हैं।
पुरुषों ने नहीं बनाया उन्हें, परमात्मा ने गाया। वेद के ऋषि तो माध्यम हो गए। जैसे तुम कलम से लिखते हो एक प्रेमपाती, तुम लिखते हो, कलम नहीं लिखती। कलम तो केवल माध्यम होती है।
सच पूछो तू लिखता कब है
तुझसे लिखा लिया जाता है
तेरी पलकों के आंसू में
मुझको डुबा लिया जाता है
लिखने वाला दर्द भीतरी
उसका तेरा साथ बाबरे
साथ चिता के ही टूटेगा
स्वर पर चुप्पी की सांकल दे
कितना भी शब्दों से बचना
तेरे जाने या अनजाने
तुझसे हो जाएगी रचना
जो हो रहा है, हो रहा है; तुम कर्ता नहीं हो।
तेरे जाने या अनजाने
तुझसे हो जाएगी रचना
तू परहेज करे पर तेरे
भीतर जो रस का सोता है
उसे फूटना है, फूटेगा
हमारे भीतर अनंत बह रहा है। वही श्वास ले रहा है, वही हमारे रक्त में प्रवाहित है, वही हमारे हृदय की धड़कन में है, वही हमारे कण-कण में है।
तू परहेज करे पर तेरे

भीतर जो रस का सोता है
उसे फूटना है, फूटेगा
तू निषेध कैसे कर पाए
तेरे बस की बात नहीं है
तू माध्यम है किसी और का
शायद तुझको ज्ञात नहीं है
देने वाले ने दे रक्खी
चंदन पर चिनगारी तुझको
आग रहेगी, धुआं उठेगा
मनुष्य अपने को मालिक समझ लेता है, वहीं भूल हो जाती है। मनुष्य अपने
को पृथक समझ लेता है, वहीं भूल हो जाती है। यह अस्तित्व एक है। यहां मैं और तू का कोई भेद नहीं है। यहां सब जुड़ा है, संयुक्त है। इस संयुक्त की प्रतीति का नाम ही ब्रह्मानुभूति है--अहं ब्रह्मास्मि। सब एक है, इस अनुभव का नाम ही समाधि है। और जिसने ऐसा न जाना वह दुख में जीएगा।
यह तो है करता की कुदरत, नाम तू ले पहिचानी
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी
और ऐसा अपूर्व अवसर है आज, कि भज ले, कि याद कर ले। असली नाम की याद कर ले। कर्ता को पहचान ले। सब माध्यमों के भीतर जो छिपा है उसको पकड़ ले। सब तस्वीरों में जिसकी तस्वीर है और सब गीतों में जिसका गीत है और सब रंगों में जिसका रंग है, उससे पहचान कर ले।
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी
कल का तो कुछ पता नहीं है, कल पर मत टाल। आज इस स्वर्ण अवसर को चूकना उचित नहीं है।
काहु के हाथ साथ कछु नाहीं।
हम न तो कुछ लाए हैं न कुछ ले जाएंगे। दुनिया है हैरानी। मगर कैसी हैरानी की बात है! न कुछ लाते न कुछ ले जाते, मगर कितना शोरगुल मचाते हैं! कितनी छीना-झपटी, कितना मेरा-तेरा, कितनी आपा-धापी! कैसे पकड़-पकड़ कर लोग बैठे हैं कि यह मेरा है; कि दूर रहना, इसे छू मत लेना, यह मेरा है। हम नहीं थे तब भी यह था, हम नहीं होंगे तब भी यह होगा। हमारे होने न होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता।
जिसे यह याद आ जाता है कि मेरे हाथ खाली हैं और यहां कुछ भी उपाय करूं
तो भी हाथ भरेंगे नहीं उसके जीवन में एक नई खोज शुरू होती है। फिर किसे खोजूं जिससे मैं भर जाऊं, जिससे मेरा शून्य पूर्ण हो जाए, जिससे मेरी यह गागर सागर हो जाए?
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी
भज लो, जग लो, पहचान लो।
महका एकांत गंध भर गई कपूरी
घट आए योजन सब सिमट गई दूरी
बांध कर विदेह स्पर्श
कौन हंस लाए
चुप्पी हो उठी चहक
सरगम अंकुराए
प्राणों की परतों से निकली कस्तूरी मीठे हो आए क्षण अप्रिय अमचूरी
कामना गुलाबी है
प्रणय-पुष्प पीले
हरी हुई इच्छाएं
संवेदन नीले
स्वप्न जाफरानी हैं, स्मृतियां अंगूरी आकर्षण नारंगी, साधें सिंदूरी
मन सुख के आंसू भी
पोंछ रहा ऐसे
देखे ना कोई हों

चोरी के जैसे
कहने दो आंसू को सुखद कथा पूरी छोड़ो मत सपनों की अल्पना अधूरी संदेहों की चीलें
सुख पर मंडराती
डरी-डरी मुस्कानें
अधूरों पर आतीं
पुलकन के पल आएं रोज क्या जरूरी
थिरक इसी क्षण उठ कर चेतना मयूरी
कल का क्या भरोसा! पुलकन के पल आएं रोज क्या जरूरी। यह घड़ी कल फिर आएगी ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। यह सुबह फिर होगी ऐसी कोई अपरिहार्यता नहीं है।
पुलकन के पल आएं रोज क्या जरूरी
थिरक इसी क्षण उठ कर चेतना मयूरी
नाचने दो चैतन्य के मयूर को अभी, यहीं, इसी क्षण!
महका एकांत गंध भर गई कपूरी
घट आए योजन सब सिमट गई दूरी
इसी क्षण मिट सकती है दूरी। इसी क्षण भर सकता है जो रिक्त हमारे भीतर कभी नहीं भरा। हमारी झोली अभी फूलों से लद सकती है, पर एक महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति को लेना पड़ता है--और नहीं टालूंगा, अब और नहीं टालूंगा। स्थगित न करूंगा। इस क्षण को पीऊंगा, इस क्षण को निचोडूंगा क्योंकि यही क्षण सत्य है। अतीत जा चुका, अब नहीं है। भविष्य आया नहीं, अभी नहीं है। वर्तमान के क्षण के अतिरिक्त और कोई परमात्मा का द्वार नहीं है।
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी
काहु के हाथ साथ कछु नाहीं, दुनिया है हैरानी
दूलनदास बिस्वास भजन करू, यहि है नाम निसानी
इस क्षण में डुबकी मार लो--श्रद्धा की डुबकी, आस्था की डुबकी, प्रीति की, भरोसे की। भजन श्रद्धा का रंग है। संदेह से पैदा होते प्रश्न। संदेह से पैदा होता है दर्शनशास्त्र। श्रद्धा से पैदा होता है भजन। श्रद्धा से पैदा होता है नृत्य। श्रद्धा से पैदा होता है धर्म। श्रद्धा का अर्थ होता है कि हम जिस विराट से आए हैं, हम उसके हैं और हमें उसी में वापस लौट जाना है। श्रद्धा का अर्थ होता है, जिसने हमें जन्माया है वह हमारा मित्र है, शत्रु नहीं। इसलिए अविश्वास क्या, संदेह क्या! जैसे छोटा बच्चा अपनी मां पर संदेह तो नहीं करता, कर ही नहीं सकता। असंभव है। नौ महीने जिसके गर्भ से आया है, जिसके साथ एक रहा है, उस पर कैसे अविश्वास कर सकता है?
यह सारा अस्तित्व हमारा गर्भ है। हम इसमें से ही आए हैं, इसी में वापिस लौट जाएंगे। जैसे सागर की लहर उठती है सागर में, नाचती सागर में, लीन होती सागर में। सागर की लहर और सागर पर अविश्वास! तो तो फिर हम नाहक अविश्वास में सड़ेंगे, गलेंगे, कष्ट पाएंगे।
संदेह जिनके मन को बहुत गहराई में पकड़ लेता है उनके जीवन से स्वर्ग सदा के लिए विदा हो जाता है। संदेह और स्वर्ग का कोई मिलन नहीं है। श्रद्धा का अभिव्यक्त रूप है भजन। जरूरी नहीं कि तुम कैसा भजन करो-- हिंदू का हो कि मुसलमान का कि ईसाई का; जरूरी नहीं कि मंदिर में करो कि मस्जिद में कि गुरुद्वारे में। जरूरी केवल इतना है कि तुम्हारे हृदय की श्रद्धा से आए। फिर गुरुद्वारा हो तो चलेगा, मस्जिद हो, चलेगा; मंदिर हो, चलेगा। न हो मंदिर, न हो गुरुद्वारा तो चलेगा। फिर जहां बैठ कर तुम्हारे हृदय से उठा हुआ गीत जन्मेगा, जागेगा वहीं मंदिर, वहीं गुरुद्वारा।
जोगी चेत नगर में रहो रे
दूलनदास कहते हैं, चेतना के दो उपयोग हो सकते हैंः या तो कर्ता बन जाओ
तो चूक गए; या चैतन्य साक्षी बन जाओ तो राह पर आ गए। जोगी चेत नगर में रहो रे! साक्षी बनो। साक्षी के नगर में रहो। जो साक्षी बन गया, सुख को उपलब्ध हो गया। साक्षी के पीछे सुख ऐसे आता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया आती है।

दुख का मकान है यह आंसू निवास करते रहता है सुख कहां पर यह आस-पास पूछो हमने सुना निकट ही आया है रहने सुख भी परिचय नहीं हुआ है देखा न कभी मुख भी तुम ढूंढ ही रहे हो, मिल जाए तो बताना तुम भेंट लो अगर तो हमसे उसे मिलाना फिलहाल अंधेरे में ठोकर न लगे तुमको कंदील तो जला लो लेकर प्रकाश पूछो
पहले नहीं हो तुम ही आने को, और आए
जो खोजने को निकले अब तक न लौट पाए
सुख की तलाश ही में वे खुद को खो चुके हैं कुछ कहकहों की खातिर वे कितना रो चुके हैं मानो अगर तो कह दूं छोटा रहस्य तुमको
हंसकर नहीं मिलेगा होकर उदास पूछो
गुम हो गया है खोजी यह खोज भी अजब है
खुद पूछता पता भी आया है सुख गजब है
आंसू का जो कि आंगन, मुसकान का सहन है
पीड़ा हंसी-खुशी की आखिर बड़ी बहन है
कस्तूरी-मृग तुम्हीं हो सुख-दुख तुम्हारे भीतर
अपना पता स्वयं तुम खुद से ही काश पूछो!
हम पूछते फिर रहे हैं--कहां है सुख, कहां है स्वर्ग, कहां है आनंद और मिलता नहीं है। "कस्तूरी कुंडल बसै।" और हम कस्तूरे हैं, कस्तूरी-मृग हैं। हमारे ही नाभि में कस्तूरी का वास है। हमारे भीतर से गंध उठ रही है और गंध हमें दीवाना किए दे रही है। और हम भागते हैं पागलों की तरह। यहां खोजते, वहां खोजते। और जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारा स्वभाव है। लेकिन स्वभाव को तो केवल वे ही जान सकते हैं जो सचेत हो जाएं, जो होश से भर जाएं; जिनके भीतर ध्यान का दीया जले। कर्ता में जो पड़ा उसका ध्यान का दीया बुझ जाता है। कर्ता में जो उलझा उसके भीतर अंधेरा ही अंधेरा छा जाता है। अहंकार अंधकार है।
और जो चेता, जिसने कहा मैं कर्ता नहीं हूं, कर्ता तो परमात्मा है, मैं
तो सिर्फ द्रष्टा हूं, देख रहा हूं उसकी लीला, देखता हूं, उसका खेल, देखता हूं उसका रास, बस मात्र साक्षी हूं। ऐसा बोध होते ही सुख का सागर भीतर उमड़ उठता है--उमड़ ही रहा था, सिर्फ हम उससे अपरिचित थे।
जोगी चेत नगर में रहो रे
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे
और अगर तुम्हें चैतन्य का थोड़ा सा भी सिलसिला आ जाए, श्रृंखला लग जाए, थोड़ी-सी भी रसधार चैतन्य की जग जाए तो तुम चकित हो जाओगे, चैतन्य के साथ ही साथ प्रेम का रंग भी जगता है। चैतन्य, ध्यान और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहले हैं। एक तरफ प्रेम, दूसरी तरफ ध्यान। अगर ध्यान जगे तो प्रेम अपने आप जगता है, अगर प्रेम जगे तो ध्यान अपने आप जगता है। ये दो ही मार्ग हैं। अगर ध्यान से चलोगे तो ध्यान तो मिलेगा ही, प्रेम पुरस्कार होगा। अगर प्रेम से चलोगे, भक्ति से, तो भक्ति तो मिलेगी ही, प्रेम तो मिलेगा ही, ध्यान पुरस्कार होगा। दोनों साथ ही घटते हैं। चलो एक से, मिलते दोनों हैं। क्योंकि सिक्के को दो हिस्सों में विभाजित नहीं किया जा सकता। प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे
अब मन की माला फेरो। बाहर की मालाएं बहुत फेर चुके। और मन की माला क्या है? यह जगत उत्सव है, प्रभु के प्रेम की लीला है। यह रास है अगर परमात्मा कृष्ण है तो यह सारा अस्तित्व उसके चारों तरफ गोपी बन कर नाच रहा है। यह अखंड रास चल रहा है। यहां प्रेम की वर्षा हो रही है। यहां प्रेम की रंग गुलाल उड़ाई जा रही है। यहां प्रेम के रस मदिरा को ढाला जा रहा है, पीया जा रहा है। यह मधुशाला है।
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदिरिया, मन तसबीह गहो रे

लेकिन तुम अगर बाहर की मालाओं में उलझे रहे, क्रियाकांडों में, तुम्हें पता ही न चलेगा कि तुम कौन थे, कैसी संपदा लेकर आए थे! भिखमंगे होकर मरे और सम्राट थे। तुम्हें भी वही मिला है जो बुद्ध को। मुझे भी वही मिला है जो तुम्हें। सबके पास वही है लेकिन हम कैसे उसका उपयोग करते हैं! कोई तलवार से किसी की गर्दन काट सकता है और कोई तलवार से किसी की कटती गर्दन को बचा सकता है। समझदार के हाथ में जहर भी अमृत हो जाता है, नासमझ के हाथ में अमृत भी जहर हो जाता है।
पहली भेंट तुम्हें देता हूं
केवल एक बकुल का फूल
मान रखो तो यह चंपा है
नहीं रखो तो यही बबूल
उपहारों की निर्धनता से
तुम मन की भावना न नापो
निज विवेक से करो मंत्रणा निर्णय के क्षण में मत कांपो परिचित करवाता हूं तुमसे प्रथम दर्द का किसलय-शूल स्वीकारो तो सोन-छड़ी है
अगर नहीं तो यही त्रिशूल
एक भावना भर का अंतर
सिर्फ प्यार में और घृणा में प्याले की दीवार सिर्फ है
बीच तृप्ति में और, तृष्णा में
सौंप रहा हूं तुम्हें सपन की
चुटकी भर गंधायित धूल
स्वीकारो तो यह चंदन है
अगर नहीं तो सभी फिजूल
सब तुम पर निर्भर है। जरा सी कीमिया, जरा सी कला चाहिए तो धूल चंदन हो जाती है, नहीं तो चंदन धूल हो जाता है। तो शूल फूल हो जाते हैं, नहीं तो फूल शूल हो जाते हैं। और फासला बहुत बड़ा नहीं है।
चेतना की दो क्षमताएं हैं--या तो कर्ता बन जाए या साक्षी। कर्ता बनने
की विधि है कि जो भी तुम्हारे आस-पास हो, हरेक से अपने मैं को जोड़ देना। श्वास चले तो कहना, मैं श्वास लेता हूं। प्रेम हो तो कहना, मैं प्रेम करता हूं। सफलता मिले तो कहना मेरी सफलता और तुम चूकते चले जाओगे। तादात्म्य कर्ता के साथ, और सीढ़ी से तुम नीचे गिरने लगोगे।
तोड़ दो तादात्म्य। श्वास चले तो कहना, मैं देखता हूं कि श्वास चलती है। मैं साक्षी हूं कि श्वास चलती है। मैं चलाने वाला नहीं हूं। चलती है तो देखता हूं, नहीं चलेगी तो देखूंगा। मैं साक्षी हूं कि प्रेम हो गया; करने वाला मैं नहीं हूं। मैं साक्षी हूं कि जवान हूं, मैं साक्षी हूं कि बूढ़ा हो गया। मैं साक्षी हूं कि बीमार मैं साक्षी हूं कि स्वस्थ। मैं साक्षी हूं कि सफलता आई। मैं साक्षी हूं कि विफलता आई। तादात्म्य को तोड़ते चलो। किसी से तादात्म्य मत जोड़ो। हर घड़ी एक स्मरण को सघन करो कि मैं द्रष्टा, कि मैं बस द्रष्टा। मैं सब देखता हूं भूख लगे तो यह मत कहना कि मैं भूखा हूं, इतना ही कहना कि शरीर भूखा है, मैं भूख का साक्षी हूं। प्यास लगे तो कहना मैं प्यास का साक्षी हूं। और तुम चकित हो जाओगे, बस इतनी छोटी सी कुंजी--और सारे ताले खुल जाते हैं।
जोगी चेत नगर में रहो रे
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे
अंतर लाओ नामहि की धुनि, करम भरम सब धो रे
धो डालो सब कर्ता का भाव। और कर्ता के भाव के साथ ही कर्म के साथ ही भ्रम भी धो जाते हैं।
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रकट कहो रे
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे

यह छोटी सी नाव है, यह सागर के पार ले जा सकती है। सूरत साधि गहो सतमारग। ध्यान को सम्हाल लो। सूरत का अर्थ होता हैः ध्यान, सुरति, स्मृति।
इस बात की ठीक-ठीक स्मृति कि मैं कौन हूं? मैं साक्षी हूं।
सूरत साधि गहो सतमारग--और फिर अपने आप तुम जहां भी चलोगे वह सतमार्ग है।
अंतर लाओ नामहि की धुनि--और जैसे ही तुमने कर्ता भाव छोड़ा फिर परमात्मा की ही धुन बजती है। भीतर वही है वही करने वाला है। सब कुछ वही करने वाला है। अच्छा उसका, बुरा उसका; जीवन उसका, मृत्यु उसकी। फिर तो उसके हाथ से मिली विफलता में भी आनंद है क्योंकि हाथ तो उसके हैं। फिर फूल दे तो सौभाग्य और कांटे दे तो सौभाग्य। और जिसको ऐसा दिखाई पड़ने लगे कि कांटे में भी सौभाग्य है, क्या उसके लिए कांटे-कांटे रह जाएंगे? उसके लिए कांटे फूल हो गए। जिसको शिकायत ही न रही उसके लिए तो सभी कुछ धन्यवाद है। उसके जीवन का एक ही भाव रह जाता हैः कृतज्ञता, अहोभाव! उठता है, बैठता है, चलता है लेकिन उसकी अर्चना जारी रहती है। उसके अंतर में नाद बजता रहता है, उसकी ही धुन बजती रहती है।
सब काहे भूलहु हो भाई
और ऐसी सरल-सी बात है लेकिन फिर भी तुम सब भाई कैसे भूल गए!
सब काहे भूलहु हो भाई, तू तो सतगुरु सबद समइले हो
फिर भूल गए सब तो भूल जाने दो, कम से कम तुम तो सदगुरु के शब्दों में डूब जाओ। यह सोच कर मत बैठे रहना कि जब सभी भूल गए हैं तो मैं कैसे जागूं? जब इतने लोग भूल गए हैं तो मेरी क्या औकात, कि मेरी क्या सामर्थ्य! जब सभी भूल गए हैं तो मैं भी कैसे जाग सकता हूं? ऐसे बहाने मत खोजना
सब काहे भूलहु हो भाई, तू तो सतगुरु सबद समइले हो
दूलनदास कहते हैं, चिंता मत करना कि सब भूल गए हैं इसलिए मैं क्या करूं? तुम जागना चाहो तो जाग सकते हो। सब किए रहें आंख बंद, तुम आंख खोलना चाहो तो खोल सकते हो। तुम्हारा निर्णय ही निर्णायक है।
ना प्रभु मिलिहै जोग जाप तें...
ख्याल रखना, सभी संतों ने इस बात पर जोर दिया है।
ना प्रभु मिलिहै जोग जाय तें, ना पथरा के पूजे
ना प्रभु मिलिहै पउआं पखारे, ना काया के भूंजे
न तो शरीर को जलाने से मिलेंगे प्रभु, न कोड़े मारने से, न कांटों पर लेटने से, न धूप में पड़े रहने से, न शरीर को गलाने से, न सताने से। परमात्मा कोई विक्षिप्त तो नहीं है कि तुम्हारे शरीर को दुख तुम दो और वह प्रसन्न हो; कि तुम तपती आग जैसी तपती रेत में तड़फो मछली की तरह और परमात्मा प्रसन्न हो! अगर परमात्मा कुछ ऐसा हो तो विक्षिप्त परमात्मा है, पागल है। लेकिन तुम्हारे तपस्वी यही सोच रहे हैं कि जितना हम अपने को सताएंगे उतना परमात्मा प्रसन्न होगा। यह तो बात बड़ी मूढ़ता की है। यह तो ऐसी मूढ़ता की है कि बच्चा सोचे कि जितना मैं अपने को सताऊंगा उतना मेरी मां प्रसन्न होगी; अगर मैं सारे शरीर में कांटे चुभा लूं और मुंह में भाला भोंक लूं, शरीर को लहूलुहान कर लूं, घावों से भर दूं तो मां बड़ी प्रसन्न होगी। लेकिन तुम्हारे तथाकथित त्यागी-तपस्वियों की यही तर्कसरणी है। इस तर्कसरणी से परमात्मा प्रसन्न नहीं होता। इस तर्कसरणी से केवल तुम्हारे तथाकथित त्यागी-तपस्वियों का अहंकार तृप्त होता है।
ना प्रभु मिलिहै जोग जाप तें, ना पथरा के पूजे
ना प्रभु मिलिहै पउआं पखारे, ना काया के भूंजे
दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी
बहुत सीधी-साफ बात कहते दूलनदास। इतना ही कर लो कि प्रेम हो हृदय में, दया हो, करुणा हो, सदभाव हो।
धर्म का अर्थ होता है, जो स्वभाव है उस स्वाभाविक ढंग से जीयो। प्यास लगे तो पानी पीना स्वभाव है। ज्यादा पानी पी जाना विभाव है। प्यासे पड़ा रहना विभाव है। भूख लगे तो सम्यक भोजन स्वीकार कर लेना स्वभाव है। अति भोजन करना अस्वाभाविक है, उपवासे रहना अस्वाभाविक है। स्वभाव में जो थिर हो जाता है वह परमात्मा का प्रिय हो जाता है। स्वभाव संतुलन है।

स्वाभाविक बनो। सारे संतों ने, जिन्होंने जाना है उन्होंने इतना ही कहा है स्वभाव में थिर हो जाओ। अति न करो, अति वर्जित है।
दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी
और बड़ी अदभुत बात कह रहे हैं। कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है--जंगल पर्वत, पहाड़। घर छोड़ कर भाग जाने की भी जरूरत नहीं है। घर में रहहु उदासीः घर में ही रहो जैसे हो वैसे ही। पति हो तो पति, पत्नी हो तो पत्नी, दुकानदार हो तो दुकानदार--जैसे हो वैसे ही रहो। बस इतनी बात साध लेना कि जगत से आशा मत रखना।
उदासी का अर्थ होता है, जगत से आशा मत रखना। जगत कुछ देने वाला नहीं है। खाली हाथ आए, खाली हाथ जाना है। उद्आस। आशा छोड़ दो जगत से। जिसने जगत से आशा छोड़ दी उसकी परमात्मा से आशा जुड़ जाती है। जिसकी जगत से जुड़ी उसकी परमात्मा से टूट जाती है।
और एक बात और याद दिला दूं, उदास शब्द का बड़ा गलत अर्थ हो गया है। हम उदास उन लोगों को कहते हैं जिनके चेहरे लटके हुए हैं, मुर्दों की तरह बैठे हुए हैं, उनको हम कहते हैं कि उदास। उदास का यह अर्थ नहीं है। यह गलत अर्थ है। उदास का इतना ही अर्थ है जिसकी जगत में आशा नहीं है। जिसने समझ लिया कि यहां कुछ मिलने को नहीं है। रेत से लाख निचोड़ो तेल, निचुड़ेगा नहीं; ऐसा जिसने समझ लिया। अब यह कोई चेहरा लंबा करके और कालिख पोत कर और आंसू टपकाता हुआ रोएगा थोड़े ही। रोने की क्या जरूरत है? बात समझ में आ गई कि रेत से तेल नहीं निकलता है। इसमें रोना क्या, उदास क्या होना! हमारे अर्थों में उदास क्या होना! लंबा चेहरा क्या बनाना! लेकिन तुमने सदियों-सदियों में उदास का यही अर्थ कर लिया है। मुर्दों को तुम उदास कहते हो। जो बड़ा गंभीर चेहरा बनाए बैठे हुए हैं, जिनकी जिंदगी एक रुदन है, मरघट जैसी है; जैसे लाश के पास बैठे हों, जिनके चेहरे पर हमेशा मातम छाया हुआ है, ऐसे लोगों को तुम उदास कहते हो। यह गलत अर्थ है।
उदासी का अर्थ होता है, संसार व्यर्थ है, यह बात समझ में आ गई। परमात्मा सार्थक है। जिसको यह समझ में आ गया कि संसार व्यर्थ है वह तो आनंदित हो उठेगा, उदास नहीं। क्योंकि सत्य का आधा काम तो पूरा हो गया। और जिसको यह समझ में आ गया कि परमात्मा में ही असली आशा है, उसी के साथ फूल खिलेंगे; उसी के साथ रस बहेगा। उसके जीवन में तो मंगल ही मंगल छा जाएगा। उसके जीवन में तो गीत और गान होंगे। उसका जीवन तो महोत्सव होगा, उदासी कहां? वह तो नाचेगा। "पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे।" उसके जीवन में तो बड़ी उत्फुल्लता होगी, उदासी से ठीक विपरीत अवस्था होगी। अगर कोई सच्चे अर्थों में उदास है तो उसके जीवन में "प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया"--ऐसी घटना घटेगी। वह तो प्रेम की, रस की, रंग की चादर को ओढ़ कर नाचेगा। उसके हाथ में तो इकतारा होगा। और यह बातें वह बातें ही नहीं करेगा, वह आनंद की बातें ही नहीं करेगा, बरसेगा।
घटा घिरी है तो बरसे भी
सिर्फ गरजने से क्या होगा
खड़ी प्रतीक्षा पलकें खोले
प्यास पुकार रही है पानी
केवल आश्वासन ही दोगे
तृप्ति नहीं दोगे क्या दानी हो न समर्पित तो साधों के सजने धजने से क्या होगा
चारदिवारी या पहरे हों
यौवन ने बंधन कब माना
एक अनोखा सुख देता है
चोरी से वर्जित फल खाना
रूप और तारुण्य मिलेंगे
लाख बरजने से क्या होगा
म्हावर मेहंदी, सेंदुर बेंदी दुल्हन काशृंगार हो गया

वर आया, तोरण भी मारा
क्या पूरा संस्कार हो गया? सातों फेरे हों केवल
शहनाई बजने से क्या होगा यदि न यथार्थ वरण कर पाए
रह जाए कल्पना कुंआरी
शब्द न देंगे अर्थ काव्य में
अगर नहीं अनुभूति उतारी
यदि न गहें आकार सत्य का
स्वप्न सिरजने से क्या होगा
वह तो नाचेगा। वह तो मृदंग बजा कर नाचेगा। जो असली अर्थों में उदास है उसी को तो मैं संन्यासी कह रहा हूं। जिसको दूलनदास ने कहा, "घर में रहहु उदासी", उसी को मैं संन्यासी कह रहा हूं। न कहीं जाना, न भागना, बस घर में ही जाग जाना।
जोगी चेत नगर में रहो रे
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे
और यह कुल बात की ही बात नहीं है
म्हावर मेहंदी, सेंदुर बेंदी
दुलहन काशृंगार हो गया
वर आया, तोरण भी मारा
क्या पूरा संस्कार हो गया
सातों फेरे हों केवल
शहनाई बजने से क्या होगा!
सातों फेरे पड़ेंगे, शहनाई भी बजेगी। यह भांवर पड़ेगी। यह आनंद के साथ भांवर है। इसलिए जो उदासी है, सच्चा उदासी है, वह तुम्हारे अर्थों में उदास तो होता ही नहीं। जो सच्चा उदासी है उसके जीवन में ही आनंद की शहनाई बजती है। उसके जीवन में ही महोत्सव पर ताल पड़ता है।

दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी
आनकै जिव आपन करि जानहु, तब मिलि हैं अविनासी
और जब तुम्हें समझ में आने लगेगा कि जो मैं हूं वही दूसरा। जो मुझमें
है वही दूसरे में। जो हिंदू में है वही मुसलमान में। जो ईसाई में वही सिक्ख में। जो बौद्ध में वही जैन में। जो हिंदू में वही पारसी में। जिस दिन ऐसा दिखाई पड़ेगा--जो मनुष्य में वही पशु में। जिस दिन ऐसा अनुभव आएगा कि जो चैतन्य में वही पदार्थ में, उस दिन तुम समझना कि तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा; खुद अविनाशी तुम्हें खोजता आ जाएगा।
आनकै जिव आपन करि जानहु, तन मिलिहैं अविनासी
पढ़ि पढ़ि के पंडित सब थाके, मुलना पढ़ै कुराना
लोग किताबों में उलझे हैं, जीवन का महोत्सव चल रहा है, सम्मिलित नहीं होते। परमात्मा ताल दे रहा है और तुम्हारे पैरों में नृत्य नहीं आता। परमात्मा बांसुरी बजा रहा है, तुम्हें सुनाई ही नहीं पड़ता, तुम अपनी किताबों में उलझे हो!
पढ़ि पढ़ि के पंडित सब थाके, मुलना पढ़ै कुराना
कोई कुरान पढ़ रहा है, कोई पुराण पढ़ रहा है। आंखें गड़ी हैं शब्दों में
और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। जिस प्यारे को तुम समझना चाह रहे हो उसने तुम्हें सब तरफ से घेरा है, तुम उसके आलिंगन में हो। जरा जागो!
जोगी चेत नगर में रहो रे
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे
अंतर लाओ नामहि की धुनि, करम-भरम सब धो रे
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रकट कहो रे
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे
पकड़ लो किसी गुरु को, जैसे दूलन ने पकड़ लिया जगजीवन को। जगजीवन उनके गुरु थे। उनकी नाव में सवार हो गए। सम्हाल ली स्मृति। साध ली सुरति। भर

लिए प्राण उसकी धुन से। चैतन्य को मुक्त कर लिया कर्ता-भाव से और साक्षी बना लिया। ओढ़ ली प्रेम की चदरिया। घर में ही बैठे-बैठे संन्यासी हो गए। न कुछ छोड़ा, न कुछ त्यागा, और सब छूट गया और सब त्याग गया। लेकिन कुछ लोग हैं जो किताबें ही पढ़ने में लगे हैं, जिनकी पूरी जिंदगी तोतों की तरह शब्दों को कंठस्थ करने में बीत जाती है।
भस्म रमाइ जोगिया भूले, उनहूं मरम न जाना
कोई हैं कि भस्म को रमा रहे हैं। तुमने जिंदगी को क्या समझा है? कुछ तो देखो, क्या-क्या मूढ़ताएं चल रही हैं! कोई राख को ही लपेट कर बैठा है और सोच रहा है परमात्मा मिल जाएंगे। काश, राख लपेटने से परमात्मा मिलते तो गधे- घोड़े बहुत लोट-लोट कर राख लपेट रहे हैं। सभी पहुंच गए होते, सभी सिद्धपुरुष हो गए होते। क्या होगा राख लपेटने से? ढंग-ढंग के क्रियाकांड लोगों ने ईजाद कर लिए हैं बिना सोचे-समझे।
जोग जाग तहियां से छाड़ल, छाड़ल तिरथ नहाना
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निरबाना
दूलनदास कहते हैं, मैंने तो उस दिन परमात्मा को देखा जिस दिन मैंने ये
सब व्यर्थ की बकवासें छोड़ दीं, यह जाप-ताप छोड़ा, यह पत्थर की पूजा छोड़ी, यह पांव का पखारना, यह काया का भूंजना, यह सब छोड़-छाड़ दिया। ये सारे शास्त्र, आगम-निगम, ये सब छोड़े। जोग जाग तहियां से छाड़ल। जिस दिन से मैंने ये जोग जाग छोड़े, छाड़ल तिरथ नहाना--उसी दिन से जिंदगी में बंदगी घटी। उसी दिन से मैं बंदा हुआ। उसी दिन से प्रार्थना उमगी। उसी दिन से हृदय के असली भाव पनपे।
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निरबाना
और तब से यह गीत बह रहा है, बहता ही चला जाता है। रुकता नहीं। रोके- रोके नहीं रुकता। तब से दूलनदास की जिंदगी। एक अहर्निश गीत हो गई है। अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं
गीत संस्कार दे कवि के
अहम को ओम करता है
गला कर वक्ष पत्थर का
गीत ही मोम करता है
दर्द के साथ में हो लो, गीत प्रारंभ करता हूं दिया है आरती का वह
छंद की गंध कर्पूरी
अश्रु की पांडुलिपि में है
वेदना की कथा पूरी
भीतरी द्वार तो खोलो, गीत प्रारंभ करता हूं गीत सौंदर्य है शाश्वत
सत्य की आत्मा है वह
वही शिव-तत्त्व रचना का
सृजन-परमात्मा है वह
बुद्धि को भाव में घोलो, गीत प्रारंभ करता हूं सहजतम सूत्र दर्शन का
प्यार के श्लोक जैसा है
देवता के प्रभा मंडल
प्रखर आलोक जैसा है
शब्द को अर्थ से तोलो, गीत प्रारंभ करता हूं
इसी में भक्ति तुलसी की
इसी में नैन सूरा के
कबीरा का यही करघा
यही खड़ताल मीरां के
प्राण के बोल ही बोलो, गीत प्रारंभ करता हूं। क्रियाकांड छोड़ो! औपचारिकताएं छोड़ो। हृदय में गुनगुनाओ। इसी में भक्ति तुलसी की
इसी में नैन सूरा के

कबीरा का यही करघा
यही खड़ताल मीरां के
प्राण के बोल ही बोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।
परमात्मा को बाहर नहीं खोजना है। न वह किसी मंदिर में है, न किसी मस्जिद में; न काबा, न कैलाश; न कुरान, न पुराण। किन्हीं विधि-विधानों में वह नहीं है। अगर वह है तो तुम्हारे अंतस की अर्चना में, तुम्हारी भावना में, तुम्हारे प्राणों की प्रीति में, तुम्हारी श्रद्धा में। उतना हो सके तो अभी गीत प्रारंभ हो जाए।
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निरबाना।
अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं। आंसुओं से मिलेगा वह क्योंकि आंसुओं से ही आंख निर्मल होगी। आंख ही नहीं बाहर की, भीतर की आंख भी निर्मल होगी। अश्रुओं से मिलेगा वह क्योंकि हृदय निखरेगा। गंगा में नहाने से नहीं निखरता हृदय। शरीर की धूल निखर जाती होगी मगर फिर जम जाएगी। हृदय की धूल तो आंसुओं से निखरती है। आंसू हैं आकाश की असली गंगा। कथा है, एक गंगा तो उतर आई पृथ्वी पर और एक है स्वर्ग में। आंसू हैं स्वर्ग की गंगा।
अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं
दर्द के साथ में हो लो, गीत प्रारंभ करता हूं
जरा उसके प्यास की पीड़ा, उसके विरह की पीड़ा को जगाओ। तुम्हारे थोथे आयोजन नहीं, तुम्हारे ऊपरी-ऊपरी क्रियाकांड, यज्ञ-हवन नहीं। भीतर की पीड़ा, भीतर की प्यास, भीतर की पुकार!
अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं
दर्द के साथ में हो लो, गीत प्रारंभ करता हूं
भीतरी द्वार तो खोलो, गीत प्रारंभ करता हूं
बुद्धि को भाव में घोलो, गीत प्रारंभ करता हूं
शब्द को अर्थ से तोलो, गीत प्रारंभ करता हूं
इसी में भक्ति तुलसी की
इसी में नैन सूरा के
कबीरा का यही करघा
यही खड़ताल मीरां के
प्राण के बोल ही बोलो, गीत प्रारंभ करता हूं

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
दूसरा प्रवचन

विस्मय है द्वार प्रभु का

पहला प्रश्नः भगवान! जब भी आकाश की तरफ देखता हूं तो करोड़ों तारों को देख कर चकित हो जाता हूं। और ऐसा घंटों तक होता है। सोचता हूं ये करोड़ों तारे, जो हमारे सूरज से बड़े हैं, यह सब कैसे हुआ, किसलिए हुआ? क्या ब्रह्मांड में हम अकेले पृथ्वीवासी हैं? कृपया समझाएं।

शामून अली! विस्मय जब जागे तब भूल कर भी उसे प्रश्न की सूली पर मत चढ़ाना। जब आश्चर्य-विमुग्ध हो मन तब चिंता को पास भी न फटकने देना। चिंता जहर है। और विस्मय मरा कि धर्म की मृत्यु हो जाती है और चिंता, विस्मय की हत्या है।
जब चित्त विस्मय-विभोर हो, आंखें आंसुओं से भर जाएं, शरीर रोमांचित हो उठे, हृदय गदगद हो, नाचने का मन हो तो नाचना हजारों-लाखों-करोड़ों तारों के नीचे! प्रश्न बनाने की बजाय नाचना ज्यादा सार्थक है। प्रेमी का हृदय हो पास, गुफ्तगू करनी हो तारों से, तो दो बात कर लेना, एक गीत गा देना, एक प्रार्थना कर लेना। आकाश की अपूर्व अनुभूति के समक्ष सिर झुका देना, कि भूमि पर पड़ जाना, साष्टांग दंडवत कर लेना; पर प्रश्न मत बनाना। मत पूछना, क्यों! जैसे ही पूछा क्यों, चूक हो गई। बड़ी चूक हो गई! फिर तीर निशाने पर कभी न लगेगा।
जैसे ही हम पूछते हैं क्यों, जो विस्मय हृदय को आंदोलित कर देता, वह हृदय तक नहीं पहुंच पाएगा अब। अटक जाएगा क्यों के जाल में, मस्तिष्क में उलझ जाएगा। "क्यों" का कांटा उसे मस्तिष्क में अटका लेगा। फिर चिंतन चलेगा, विचार चलेगा, दर्शनशास्त्र का जन्म होगा; मगर धर्म की अनुभूति नहीं होगी। और अनुभूति से ही सत्य के द्वार खुलते हैं। चिंतन-विचार सत्य के द्वार खोलने में असमर्थ हैं। चिंतन-विचार की कुंजियां सत्य के द्वार पर पड़े ताले के समक्ष बिल्कुल नपुंसक हैं। सोचोगे भी तो क्या सोचोगे? जिसे नहीं जानते हो उसे सोचोगे तो कैसे सोचोगे? सोचना तो जुगाली की प्रक्रिया है।
भैंस को देखा, घास चर लेती है, फिर बैठ जाती है, फिर उसे वापस निकाल-निकाल कर जुगाली करती है। जो चर लिया है उसी की जुगाली हो सकती है। जो नहीं चरा है उसकी जुगाली नहीं हो सकती। विचार जुगाली है। किताबों में पढ़ लिया, लोगों से सुन लिया; फिर उसी को बैठ कर जुगाली करने लगे।
विचार कभी मौलिक नहीं होता और सत्य सदा मौलिक है। इसलिए विचार और सत्य के रास्ते कभी एक-दूसरे को काटते नहीं। जो विचार में पड़ा, सत्य से चूक जाता है। जिसे सत्य में जाना हो उसे विचार से सावधान होना होगा। विचार को तो देखते ही कि सिर उठा रहा है, सावधान हो जाना, सजग हो जाना। विस्मय प्रीतिकर है, विचार घातक है।
यह तो उचित है शामून अली, कि तुम्हें करोड़ों तारों को देखकर एक विस्मय जगता है, हठात तुम अवाक रह जाते हो, तुम्हारी आंखें ठगी रह जाती हैं, कि क्षण भर को जैसे हृदय न धड़कता हो, कि जैसे श्वास अवरुद्ध हो जाती हो! यह तो शुभ है। लेकिन जैसे ही तुमने पूछा क्यों, यह सब किसलिए हुआ, किसने किया, क्या है इसके पीछे कारण--कि तुम चूके, कि तुम रिपटे, कि तुम गिरे सीढ़ी से, कि धर्म से तुम्हारा साथ छूटा। अब तुम्हारा चिंतन दर्शन का होगा। और दर्शन का चिंतन अनिवार्य रूप से विज्ञान के चिंतन में परिणत हो जाता है।
इसलिए जहां-जहां दार्शनिक चिंतन ने जड़ें जमा लीं वहां-वहां धर्म नष्ट
हो गया, विज्ञान पैदा हुआ। पश्चिम में यही हुआ। लोगों ने पूछा--क्यों, किसलिए, कारण क्या है, मूल कारण कहां है? कारण की खोज जल्दी ही विज्ञान बन जाती है। और विज्ञान का अर्थ है थोथे में, छिछले में, उथले में जीवन व्यतीत होने लगता है।
जीवन की गहराइयां प्रश्नों में बांधे नहीं बंधतीं। और जितना गहरा सागर हो उतना ही मुट्ठी में नहीं आता। करोड़-करोड़ तारे, इनसे बरसती हुई

अमृत ज्योति... प्रश्न मत उठाओ, गीत गाओ! और गीत तुम गा सको तो तुम्हारे भीतर से, तुम्हारे ही अंतस से, बिना प्रश्न पूछे, उत्तर का आविर्भाव हो जाएगा। और उत्तर भी ऐसा उत्तर नहीं कि जिसे तुम उत्तर कह सको--उत्तर भी ऐसा उत्तर कि जिसमें तुम गीले हो जाओगे, भीग जाओगे, जो तुम्हें रूपांतरित कर जायेगा; जो केवल बौद्धिकता नहीं होगा, बल्कि तुम्हारी अंतरात्मा बनेगा। तुम पूछते होः "क्या हम ब्रह्मांड में अकेले पृथ्वीवासी हैं?"
जान कर भी क्या होगा? अगर अनंत-अनंत पृथ्वियों पर भी लोग हों तो क्या होगा? पड़ोसी से तो प्रेम नहीं हो पा रहा है। शामून अली! मुसलमान हिंदू को प्रेम नहीं कर पा रहा है, जैन मुसलमान को प्रेम नहीं कर पा रहा है। भारतीय चीनी को प्रेम नहीं कर पा रहा है। पड़ोसी से प्रेम नहीं हो पा रहा है। दूर तारों पर अगर लोग बसे भी होंगे तो क्या करोगे? अभी पड़ोसी से तो संबंध नहीं जुड़े हमारे। अभी पति तो पत्नी से प्रेम नहीं कर पा रहा है, पत्नी तो पति से प्रेम नहीं कर पा रही है। अभी तो प्रेम के नाम पर न मालूम कितने ढंग की राजनीतियां चल रही हैं! अभी तो प्रेम के नाम पर एक-दूसरे पर कब्जे की कोशिश की जा रही है। अभी तो भाई भाई का दुश्मन है, अभी तो आदमी आदमी की हत्या के पीछे संलग्न है। अभी तो इस पृथ्वी से युद्ध अंत नहीं हुए, घृणा अंत नहीं हुई। अभी इस पृथ्वी पर भाईचारा, प्रेम, अभी मैत्री का सूरज यहां नहीं उगा। अगर होंगे भी दूर कहीं चांद-तारों के पास किन्हीं ग्रह-उपग्रहों पर लोग तो क्या करोगे? मान लो कि हैं, फिर? या मान लो कि नहीं हैं... ।
इस तरह के परिकाल्पनिक प्रश्नों में उलझ कर समय व्यय न करो। क्योंकि यही समय यही ऊर्जा प्रार्थना बन सकती है। क्यों बना है अस्तित्व, इसका कभी कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि जो भी उत्तर दिए जाएंगे उन्हीं उत्तरों पर यह प्रश्न पुनः पूछा जा सकता है। कोई कहे ईश्वर ने बनाया है तो पूछा जा सकता है, क्यों? और कोई कहे ईश्वर ने अपनी मौज से बनाया है तो पूछा जा सकता है, इसके बनाने के पहले उसे मौज न थी? दुखी था? कोई कहे कि लीला कर रहा है, तो अकेला ही है, लीला किसके सामने हो रही है? तो क्या कोई छोटा बच्चा है जो भटक गया है--जो रात के अंधेरे में अपने को ही ढाढस बंधाने को सीटी बजा रहा है?
ईश्वर ने जगत क्यों बनाया? यह प्रश्न वैसे का वैसा ही रहेगा। और अगर कोई उत्तर भी मिल जाए तो सवाल उठेगा, ईश्वर क्यों है? ईश्वर को किसने बनाया? क्या प्रयोजन होंगे? इन प्रश्नों का कोई अंत न होगा। एक प्रश्न और हजार प्रश्नों को अपने साथ ले आता है।
धार्मिक व्यक्ति को यह बात बहुत गहराई से समझ लेनी चाहिए कि प्रश्न गिरेंगे तो प्रार्थना जन्मेगी। अगर प्रश्न बने रहे तो प्रार्थना कभी जग नहीं सकती।
चला जा रहा हूं!
न इस राह का आदि मैं जानता हूं,
न इस राह का अंत मैं मानता हूं,
दिशा पंथ की एक पहचानता हूं
नहीं जानता छल रहा पंथ को मैं
स्वयं पंथ से या छला जा रहा हूं। चला जा रहा हूं!
नहीं है मुझे ध्यान जीवन मरण का नहीं ज्ञान है तप्त कण और तन का मुझे एक ही ज्ञान है बस जलन का! नहीं ज्ञात, मरु जल रहा आज मुझमें स्वयं या कि मरु में जला जा रहा हूं चला जा रहा हूं
नहीं ज्ञात तट पर कि मझधार हूं मैं निराधार हूं कि साधार हूं मैं
यही लग रहा बस, निराकार हूं मैं नहीं जानता, ढल रहा शून्य मुझ में स्वयं शून्य में या ढला जा रहा हूं!

चला जा रहा हूं!
न ही कुछ ज्ञात है, न ही कुछ कभी ज्ञात होगा। यहीं तो धर्म और विज्ञान
की मौलिक भिन्नता है। विज्ञान कहता है, अस्तित्व दो हिस्सों में तोड़ा जा सकता है--ज्ञात और अज्ञात। जो कल अज्ञात था, आज ज्ञात हो गया है। और जो आज अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा। विज्ञान कहता है, बस दो ही कोटियां पर्याप्त हैं--ज्ञात और अज्ञात। और अंततः एक ही कोटि बचेगी--ज्ञात की; सभी अज्ञात धीरे-धीरे ज्ञात हो जाएगा।
अगर यह सच है, अगर विज्ञान की धारणा उचित है, सम्यक है, तो जल्दी ही एक दिन आएगा, विस्मय पैदा नहीं होगा। अज्ञात ही कुछ न होगा तो विस्मय कैसे पैदा होगा? जल्दी ही वह दुर्भाग्य की घड़ी आ जाएगी कि आश्चर्य का जन्म न होगा। और उस दिन आश्चर्य न होगा उस दिन आदमी आत्मघात कर लेगा, एक क्षण जी न सकेगा। जीवन व्यर्थ हो जाएगा। अर्थ ही आश्चर्य के कारण है। अर्थ ही अज्ञात के कारण है। अर्थ ही रहस्य के कारण है।
धर्म अस्तित्व को तीन खंडों में बांटता है--ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय।
जो अज्ञात है, ज्ञात बन जाएगा। जो ज्ञात बन गया है, वह भी कभी अज्ञात था। लेकिन एक और कोटि है, अज्ञेय, जो न कभी ज्ञात हुई और न कभी ज्ञात होगी-- जिसका स्वभाव ही अज्ञेय है; जो अनजानी है, अनजानी रहेगी। अनजानापन संयोगिक नहीं है, अनजानापन उसकी नियति है। जैसे हम जान लेंगे कि गुलाब का फूल किन चीजों से बना है--मिट्टी, पानी, हवा, सूरज... । निश्चित जान लेंगे। जो अज्ञात है, ज्ञात हो जाएगा। लेकिन सूरज की किरणों को पहचान लेंगे पृथ्वी की मिट्टी को पहचान लेंगे, हवा को पहचान लेंगे, जल को पहचान लेंगे। लेकिन कुछ और भी है गुलाब के फूल में, सौंदर्य, वह अज्ञेय है और अज्ञेय ही रहेगा। वह न सूरज से बना है, न पृथ्वी से, न हवा से, न पानी से। उस पर पकड़ नहीं बैठती; वह हाथ से छिटक-छिटक जाता है। वह पारे जैसा है; जितना पकड़ो उतना बिखर-बिखर जाता है।
सौंदर्य अज्ञात है और अज्ञात रहेगा। हम जान लेंगे कि मनुष्य के भीतर कामवासना के पैदा होने के क्या कारण हैं। करीब-करीब जानने की बात शुरू हो गई। स्त्री-पुरुष के हारमोन हम पहचान लेंगे। उनके भीतर आकर्षण है, वह पहचान लेंगे। वह आकर्षण भी चुंबकीय है, वह पहचान लेंगे। लेकिन फिर भी प्रेम की कहानी अज्ञात है और अज्ञात ही रहेगी। अज्ञेय है; उसके ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं है।
हारमोन को समझ लेने से प्रेम को नहीं समझा जा सकेगा। प्रेम कुछ है, जिस पर हमारी पकड़ नहीं बैठती; जो अपरिहार्य रूप से हमारे ज्ञान की परिधि में नहीं आता; जितना हम उसके पीछे दौड़ते हैं उतना हमसे दूर होता जाता है। प्रेम, सौंदर्य, सत्य, ध्यान, परमात्मा, निर्वाण, ये सब अज्ञेय हैं और अज्ञेय रहेंगे। और जब तुम्हारे भीतर प्रकृति के किसी संस्पर्श में रहस्य की लहर उठे तो जल्दी से उसे प्रश्न मत बना लेना, अन्यथा आ गए थे मंदिर के द्वार के पास और भटक गए; उठने-उठने को था घूंघट और चूक गए!
मैं कब से ढूंढ रहा हूं
अपने प्रकाश की रेखा!
तम के तट पर अंकित है
निःसीम नियति का लेखा
देने वाले को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं;
पर पल भर सुख भी देखा
फिर पल भर दुख भी देखा;
किस का आलोक गगन से
रवि शशि उड्डगन बिखराते? किस अंधकार को लेकर
काले बादल घिर आते?
उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं;
पर देखा है चित्रों को

बन-बन कर मिट-मिट जाते!
फिर उठना, फिर गिर पड़ना,
आशा है, वहीं निराशा;
क्या आदि-अंत संसृति का
अभिलाषा ही अभिलाषा?
अज्ञात देश से आना
अज्ञात देश को जाना
अज्ञात! अरे क्या इतनी ही है हम सब की परिभाषा?
पल-भर परिचित वन-उपवन
परिचित है जग का प्रति कन, फिर पल में वहीं अपरिचित
हम-तुम, सुख-सुषमा, जीवन।
है क्या रहस्य बनने में?
है कौन सत्य मिटने में?
मेरे प्रकाश दिखला दो
मेरा भूला अपनापन!
उठते हैं प्रश्न। उठना स्वाभाविक है। लेकिन अगर सजग रहो तो प्रश्नों
के जाल से बच सकते हो। चित्रों को देखो, रस-मग्न हो देखो। वह जो दान दे रहा है, जिसके हाथों से न मालूम कितना प्रसाद तुम्हारी झोली में पड़ रहा है, उस प्रसाद को देखो। उस प्रसाद के लिए अनुग्रह मानो। मगर याद रखो--
देने वाले को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं;
उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं;
पर देखा है चित्रों को
बन-बन कर मिट-मिट जाते!
बदलियां उठती हैं, बिखर जाती हैं। चांद-तारे बनते हैं और समाप्त हो जाते हैं। लोग आते हैं और विदा हो जाते हैं। अज्ञात है आगमन, अज्ञात है होना, अज्ञात है जाना। लहर क्यों उठती, क्यों होती, क्यों विदा हो जाती--सब अपरिचित है। और सुंदर है कि अपरिचित है। और शुभ है कि अपरिचित ही रहे। क्योंकि इसी अपरिचय के बीच तो प्रार्थना का आविर्भाव होता है। इस रहस्य को नहीं समझ पाते, इसलिए तो सिर झुकाने की आकांक्षा जगती है। यह रहस्य बेबूझ रह जाता है, इसलिए तो आंखें आनंद से गीली हो उठती हैं।
यह पक्षियों की चहचहाहट, यह वृक्षों का चुपचाप खड़ा ध्यानमग्न रूप, ये सूरज की किरणें, यह आकाश से गिरती शीतलता--यह सब छूता है, अनुभव में आता है; मगर नहीं, कोई सिद्धांत से समझा नहीं पाता। सब सिद्धांत छोटे पड़ जाते हैं। सब शब्द ओछे पड़ जाते हैं। यही तो संभव बनाता है कि मंदिर उठें, मस्जिद उठें, कि गीता जगे कि कुरान गायी जाए। इसी रहस्य के आघात में तो हमारा हृदय-कमल खिलता है।
शामून अली! विस्मय को तो भरो, विस्मय में तो जगो। आंखें विस्फारित रह जाएं, टकटकी बंध जाए। मगर प्रश्न न उठाओ, क्योंकि सभी प्रश्न व्यर्थ के उत्तरों में ले जाएंगे। और आदमी जब थक जाता है प्रश्न पूछ-पूछ कर, तो किन्हीं भी उत्तरों को मान लेता है। मानना पड़ता है, न मानो तो बेचैनी होती है, प्रश्न सताता है। इसलिए फिर लोग कोई भी उत्तर मान लेते हैं। फिर किसी ने कुरान मान ली, किसी ने वेद, किसी ने गीता, किसी ने धम्मपद। फिर किसी ने कोई उत्तर मान लिया। क्योंकि कब तक प्रश्न पूछे चले जाओ? प्रश्न का कांटा चुभता है, घाव बनता है, तो फिर कोई उत्तर मान लो। हालांकि तुम्हारे सब उत्तर माने हुए हैं और जरा ही उत्तरों को उलटोगे-पलटोगे तो पाओगे कि प्रश्न उनके नीचे जिंदा हैं जैसे कि राख के नीचे अंगार जिंदा होता है। तुम्हारे उत्तर राख की तरह हैं; हर उत्तर के पीछे अंगार जिंदा है, तुम्हारा प्रश्न जिंदा है। प्रश्न मरते ही नहीं। हां, लेकिन प्रश्नों का अतिक्रमण जरूर होता है। उसी अतिक्रमण को मैं धर्म कहता हूं। प्रश्न का

अतिक्रमण, यही धर्म का सार-सूत्र है। प्रश्न उठे, उठने दो; मगर तुम उसके जाल में न पड़ो, तुम सरक जाओ, तुम बच कर अपना दामन बचा कर निकल जाओ। काश, तुम यह कर सको तो नमाज पैदा होगी शामून अली! तो पहली बार तुम पाओगे, अज्ञात, अनंत अज्ञात के समक्ष तुम्हारा सिर झुक गया है! उसकी चौखट पर तुमने अपना सिर रख दिया है। और अपूर्व है शांति फिर, अपूर्व है आनंद फिर!
उत्तर को लेकर क्या करोगे, आनंद मांगो! उत्तर को लेकर क्या करोगे, कोई स्कूल में परीक्षाएं नहीं देनी हैं; जीवन मांगो! उत्तर लेकर क्या करोगे, अनुभूति मांगो! अनुभूति, जो तुम्हें नहला दे! अनुभूति, जो तुम्हें निखार दे! अनुभूति, जो तुम्हें नया जन्म दे दे!
यह हो सकता है। इसलिए मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे रहा हूं यहां; इतना ही समझा रहा हूं कि प्रश्नों से बचने की कला सीखो। मेरे उत्तर तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। मेरे उत्तर तुम्हारे भीतर और और नये-नये विस्मय को जगा देने की चेष्टा है; और-और नये-नये रहस्यों को उमगा देने का उपाय हैं। मैं तुम्हारे हृदय को ऐसे रहस्य से भर देना चाहता हूं कि तुम्हें लगने लगेः मुझे कुछ भी आता नहीं है, कि मैं अज्ञानी हूं। जिस दिन तुम ऐसा जान लोगे कि मैं अज्ञानी हूं, निपट अज्ञानी, उस दिन ज्ञान का आकाश तुम पर टूट पड़ेगा! होगी बहुत वर्षा फूलों की! जैसे बुद्ध पर हुई, जैसे सुकरात पर हुई, जैसे महावीर पर हुई। तुम भी उसके अधिकारी हो। प्रत्येक उसका अधिकारी है।

दूसरा प्रश्नः प्रभु! तुम्हें रिझाऊं कैसे?
मीरा जैसा नृत्य न आया
कोयल जैसा कंठ न पाया
जम्बू जैसा ध्यान न ध्याया
तेरी महिमा इस जड़ वाणी से
समझाऊं कैसे
प्रभु, तुम्हें रिझाऊं कैसे?

अनेकांत! रिझाने की बात ही नहीं है, परमात्मा तुम पर रीझा ही हुआ है। न रीझा होता तो तुम होते ही नहीं। रीझा है इसलिए तुम हो। तुम्हें बनाया, इसी में उसने घोषणा कर दी है कि तुम पर रीझा है।
जब कोई बांसुरीवादक गीत गाता है तो गाता ही इसीलिए है कि उस गीत पर रीझा है। नहीं तो क्यों उठाएं बांसुरी, क्यों बजाएं बांसुरी। और जब कोई नर्तक पैर में घुंघरू बांध कर नाच उठता है तो साफ है कि रीझा है इस नृत्य को बिना नाचे नहीं रह सकता। परमात्मा तुम्हें नाच रहा है परमात्मा तुम्हें गा रहा है अनेकांत रीझाने का कोई सवाल नहीं है, परमात्मा तुम पर रीझा हुआ है। काश, तुम इस सत्य को समझ पाओ तो तुम्हारे जीवन से इसी क्षण अंधकार टूट जाए! जिस पर परमात्मा रीझा हुआ हो, उसे क्या चाहिए? परमात्मा ने जिसकी आंखों में काजल दिया हो और परमात्मा ने जिसके ओंठों को रंग दिया हो और परमात्मा ने जिसके अंग-अंग गढ़े हों, उसे और क्या चाहिए? जिसके रोएं- रोएं पर परमात्मा का हस्ताक्षर है, उसे और क्या चाहिए? यह सारा जगत उसके रीझे होने की खबर दे रहा है।
अगर परमात्मा रीझा न हो अस्तित्व पर तो अस्तित्व कभी का समाप्त हो जाए। फिर श्वास कौन ले? फिर नये पत्ते क्यों फूटें? फिर नये बच्चे क्यों पैदा हों? फिर नए तारे क्यों जन्में? तुम यह चिंता छोड़ो कि परमात्मा को कैसे रिझाएं।
और इसलिए भी कहता हूं कि यह चिंता छोड़ो कि परमात्मा को किन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण नहीं रिझाया जाता। तुम क्या सोचते हो, मीरा इस देश की सबसे बड़ी नर्तकी थी, इसलिए रीझा पाई परमात्मा को? जो नृत्य-शास्त्र को जानते हैं उनसे पूछो। वे कहेंगेः बहुत नर्तकियां थीं, मीरा कोई बड़ी नर्तकी है? शायद ठीक-ठीक नाचना आता भी न होगा। ऐसे दीवानों को कहीं ठीक-ठीक नाचना आता है? ऐसे दीवाने कि उनके पैर ठीक-ठीक पड़ रहे हैं, इसका होश कौन रखेगा? तबले की थाप के साथ संगति बैठ रही कि नहीं, मीरा को इसका होश

होगा? --जो कहती है, "लोकलाज खोई", सब लोकलाज खोकर जो नाची! जिसे अपने वस्त्रों का भी होश नहीं रहता था, उसे छंद, संगीत, मात्रा, ताल, लय इनका स्मरण रहता होगा?
नहीं; मीरा कोई बहुत बड़ी नर्तकी नहीं थी। नर्तकियां तो बहुत रही होंगी। राजाओं के जमाने थे, रजवाड़ों के दिन थे, हर दरबार में नर्तकियां थीं, बड़ी-बड़ी नर्तकियां थीं। सारे देश में नाचनेवालों का एक अलग जगत था। संगीत की एक प्रतिष्ठा थी। क्या तुम सोचते हो मीरा के पास बड़ा मधुर कंठ था इसलिए परमात्मा को रीझा लिया? इन भूलों में मत पड़ना। परमात्मा रीझता है न तो मीरा के नृत्य के कारण, न गीत के कारण। परमात्मा तो रीझा ही हुआ है। इस सत्य को मीरा ने समझ लिया कि परमात्मा रीझा ही हुआ है; इस सत्य को समझने के कारण नाची, जी-भर कर नाची, आह्लादित हो कर नाची। कंठ फूट पड़ा हजार-हजार गीतों में। यह गीत अनगढ़ है। यह नृत्य भी अनगढ़ है। लेकिन यह भाव कि परमात्मा ने मुझे इस योग्य समझा कि बनाए, धन्यवाद के लिए पर्याप्त है। मीरा धन्यवाद देने को नाची। मीरा का नृत्य उसके अनुग्रह से पैदा हो रहा है। और अगर परमात्मा से उसका संबंध जुड़ गया तो किसी गुण, विशिष्टता के कारण नहीं, किसी प्रतिभा के कारण नहीं, वरन केवल भाव की स्वच्छता के कारण। कबीर का जुड़ गया, इसलिए नहीं कि कबीर कोई बड़े महाकवि हैं। जुड़ गया संबंध-- कविता के कारण नहीं। जुड़ गया संबंध--भाव के कारण।
इस बात को खूब हृदय में संभाल कर रख लोः तुम किसी गुण के कारण परमात्मा के करीब न पहुंच सकोगे। गुण के कारण पहुंचने की आकांक्षा तो अहंकार की ही आकांक्षा है--कि मैं कुछ गुणी हूं, प्रतिभावान हूं, कि देखो मुझे नोबल प्राइज मिला, अब परमात्मा मुझ पर रीझना चाहिए! तुमने सुना किसी नोबल-प्राइज पानेवाले पर परमात्मा रीझा है, ऐसा तुमने सुना? रीझा कबीर पर। रीझा रैदास पर, फरीद पर। रीझा मंसूर पर, नानक पर। रीझा अलमस्तों पर। ये कोई बहुत बड़े-बड़े विद्वान नहीं थे, न बड़े शास्त्रज्ञ थे। कबीर ने तो कहा ही हैः "मसी कागद छुओ नहीं!" कभी छुआ ही नहीं कागज, स्याही हाथ में नहीं लगाई। अगर परमात्मा पूछता कि कितने शास्त्र जानते हो, कितने वेदों के ज्ञाता हो, तो कबीर क्या करते? वेद तो उनके पास थे ही नहीं। वेद की जगह, परमात्मा भी थोड़ा चौंकता, हाथ में लट्ठ लिए खड़े पाते उनको! क्योंकि कबीर ने कहा है--"कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ!" लट्ठ लिए हाथ में खड़ा हूं और तो कुछ है नहीं।... "घर जो बारे आपना चलै हमारे साथ!" हो घर जला देने की इच्छा तो आ जाओ, हमारे साथ हो लो।
फक्कड़ों पर रीझा परमात्मा। फक्कड़पन चाहिए। भाव कि स्वच्छता, निर्मलता चाहिए। श्रद्धा चाहिए। किसी और गुण का स्वभाव नहीं है कि पी-एच. डी. हो कि डी. लिट. हो कि विश्वविद्यालय की डिग्री हो कि महावीर-चक्र मिला हो कि पद्मश्री कि भारत-रत्न, कुछ इस तरह की बातें हों। इन सब बातों से परमात्मा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। परमात्मा तो इन पत्तों पर रीझा है, फूलों पर रीझा है, तितलियों पर रीझा है, पत्थरों पर रीझा है। तुम पर न रीझेगा? परमात्मा तो रीझा ही हुआ है। तुम जरा हिम्मत जुटाओ। तुम.जरा आंख खोलो। तुम.जरा हिम्मत बांधो, साहस बांधो--इस बात को देखने का कि परमात्मा तुम पर रीझा हुआ है और तत्क्षण जोड़ हो जाएगा।
अनेकांत! मत पूछो--
"प्रभु! तुझे रिझाऊं कैसे
मीरा जैसा नृत्य न आया... "
अच्छा ही है, नहीं तो एक नकली मीरा होती और। और अनेकांत जंचते भी नहीं नकली मीरा की हालत में। जरा गड़बड़ ही मालूम होती।
"... कोयल जैसा कंठ न पाया... "
बड़ी कृपा है! आदमी होकर और कोयल जैसा कंठ होता तो अड़चन में पड़ते, जहां जाते वहीं अड़चन में पड़ते। कोयल का कंठ कोयल को ही ठीक है।
"... जम्बू जैसा ध्यान न ध्याया... "
"... तेरी महिमा इस जड़ वाणी से समझाऊं कैसे... "
तुम्हारा भाव समझ में आ रहा है। वाणी जड़ है और उस चैतन्य को नहीं समझा पाती। मगर वाणी ही तो नहीं है, मौन भी तो है तुम्हारे पास है! तुम मौन को

गुनगुनाने दो, तुम मौन के नाद को उठने दो। और अगर तुमने मीरा का सोचा तो नकल हो जाएगी। महावीर का सोचा तो नकल हो जाएगी। मुहम्मद की सोची तो नकल हो जाएगी।
और इस दुनिया में नकल से बड़ी अड़चन हो गई है, सारे नकली लोग भरे हुए हैं। सारे जैन मुनि हैं, वे महावीर होने की कोशिश कर रहे हैं। अगर महावीर हो भी गए तो भी परमात्मा के द्वार पर इन्हें प्रवेश नहीं मिलेगा, क्योंकि एक महावीर काफी है। इतनी भीड़ क्या करेंगे महावीरों की लेकर? और ये सब नकली होंगे और ये सब थोथे होंगे, ऊपर-ऊपर होंगे। क्योंकि असली तो कभी भी किसी दूसरे की नकल नहीं होता।
परमात्मा ने तुम्हें इतना गौरव दिया है, इतनी गरिमा दी है; तुम्हें एक आत्मा दी है--और तुम अनुकरण करोगे! आत्मा का अर्थ क्या होता है आत्मा का अर्थ होता हैः जिसका अनुकरण नहीं किया जा सकता। वह विशिष्ट रूप से तुम्हारी है और बस तुम्हारी है; और किसी की न कभी थी और किसी की कभी होगी भी नहीं। तुम अद्वितीय हो, यही तो तुम्हारी आत्मा है। अगर तुम महावीर जैसे चलने लगे, उठने लगे, बैठने लगे तो सब थोथा हो जाएगा, सब झूठा हो जाएगा। और झूठ तो औपचारिक रहता है।
कुछ दिन पहले तीन जैन साध्वियां यहां सुनने आयीं। अब जैन साध्वियां
तो पिच्छी लेकर चलती हैं। ऊन की बनी होती है पिच्छी। जहां बैठें वहां पहले झाड़-बुहार लें। ऊन की बनाते हैं ताकि चींटी को भी चोट न लगे। कोई चींटी इत्यादि चलती हो तो झाड़-बुहार लें। दरवाजे पर द्वारपालों ने कहा कि यह सामान यहीं छोड़ दो, सामान भीतर नहीं ले जाना है। पर जैन साध्वी बिना पिच्छी के तो कहीं जा ही नहीं सकती। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। आना भी है और बिना पिच्छी के जैन साध्वी को चलना भी नहीं चाहिए, वह नियम के प्रतिकूल है। और जाना भी है और पिच्छी छोड़ी भी नहीं जा सकती, तो फिर... तो कानूनी मन रास्ता निकाल लेता है। तो इन जैन साध्वियों ने तरकीब निकाल लीः पिच्छी की डंडी अपने साथ रख ली, सिर्फ डंडी! पिच्छी वहीं छोड़ दी, लेकिन डंडा निकाल कर अपनी बगल में रख लिया। चलो आधा-आधा सही, फिफ्टी-फिफ्टी!
जहां नकल होती है वहां समझौते हो जाते हैं, क्योंकि अंतरात्मा में तो कोई बात होती नहीं। पिच्छी से कुछ प्रयोजन तो है नहीं; जबरदस्ती है, थोप दी है ऊपर। लेकिन डर भी है कि कहीं पता न चल जाए श्रावकों को, कहीं जैन गृहस्थों को पता न चल जाए कि पिच्छी छोड़ी! तो कम से कम कहने को रहेगा कानूनी, कि पिच्छी छोड़ी थी! मगर डंडा हाथ में रखा था! आधा तो साथ में था ही। चलो आधा दंड कम हो, इतना ही बहुत है!
जब भी लोग नकल करेंगे, औपचारिक होंगे, तो समझौते हो जाएंगे। क्योंकि औपचारिकता कभी भी आंतरिक नहीं हो सकती, उसकी गहराई नहीं हो सकती।
मैं एक घर में मेहमान था, सांझ हो गई, अंधेरा हो गया है। जैन परिवार, अंधेरा हो जाए तो भोजन नहीं करना चाहिए। लेकिन भूख भी लगी है, जिनके घर मैं ठहरा हूं, उनको। वे मुझसे बोलेः जल्दी चलिए, जल्दी चलिए! बाहर चलें, कमरे के बाहर चलें! वहां बाहर भोजन कर लेंगे।
मैंने कहाः बाहर और भीतर से क्या फर्क पड़ेगा, समय तो वही है! चाहे कमरे
के भीतर बैठ कर भोजन करें चाहे बाहर... ।
उन्होंने कहाः बाहर थोड़ी रोशनी है। ज्यादा नहीं है, मगर थोड़ी है। सूरज तो डूब गया है, मगर थोड़ी सी रोशनी बाहर है। समय वही है बाहर और भीतर, लेकिन बाहर थोड़ी रोशनी है। इतनी ही मन को सांत्वना रहेगी कि बिल्कुल अंधेरा नहीं हो गया था।
तो मैंने कहा कि बिजली जला कर यहां रोशनी क्यों नहीं कर लेते, ज्यादा रोशनी हो जाती!
उन्होंने कहाः लेकिन बिजली, बिजली का तो शास्त्रों में कोई विधान नहीं है।
हो भी नहीं सकता, मैंने कहा। क्योंकि महावीर के वक्त में बिजली थी भी नहीं। होती तो शायद विधान किया होता, क्योंकि महावीर का कुल प्रयोजन इतना था कि रात के अंधेरे में तुम भोजन करोगे, कोई कीड़ा-मकोड़ा गिर जाए, कोई मच्छर गिर जाए, कोई हिंसा हो जाए! अगर बिजली होती, तब तो बड़ी सरलता से यह

रोका जा सकता था। फिर रोशनी सूरज की हो कि बिजली की, कोई फर्क नहीं पड़ता है। रोशनी तो एक ही है। रोशनी का स्वभाव एक है। मगर जो लोग लकीर के फकीर होकर चलते हैं, उनको अड़चनें आ जाती हैं। समय बदल जाता है, पुरानी लकीरें रह जाती हैं, वे उन्हीं को पीटते रहते हैं, वे हमेशा समय के पीछे मालूम पड़ते हैं। उनकी हालत बड़ी पिटी-पिटाई हो जाती है। वे मुर्दों की भांति होते हैं। मैं तुमसे कहता भी नहीं कि तुम मीरा जैसे होओ। मीरा सुंदर थी, जैसी थी भली थी, प्यारी थी। मगर तुम्हें अनेकांत, अनेकांत होना है, मीरा नहीं। न तुम्हें कोयल जैसा कंठ चाहिए, न जरूरत है। और कभी-कभी खतरे हो जाते हैं। क्योंकि जब भी तुम किसी चीज को ऊपर से आरोपित कर लोगे तो एक बात तो निश्चित है, उसके भीतर भाव की सलिल-धारा न रहेगी, भाव की अंतर्धारा न रहेगी। यह भी हो सकता है कि मीरा का गीत कोई मीरा से भी बेहतर ढंग से गा दे, लेकिन तो भी परमात्मा का प्यारा नहीं हो जाएगा।
सोनचिड़ी आंगन में बोल गई है
शकुन शुभ हुआ है कि आएंगे कंत
पीड़ा प्रतीक्षा की पाएगी अंत
नीम में मधुर मिसरी घोल गई है
कौंध गए सुखद सब बीते दिन-रैन
सुख की पुलक में ही भर आए नैन स्मृतियों की परत-परत खोल गई है छोड़ उड़ी कचनार शेवंती फूल प्रिया के प्रदेश की गंधायित धूल
ओस-बिंदु पाटल पर रोल गई है
घायल-सी सांसें और उलझे केश
देने को नयन में आंसू ही शेष
निर्धन के कोष सब टटोल गई है
सोनचिड़ी आंगन में बोल गई है
तुम्हारे पास जो हो, तुम्हारा अपना जो, आंसू सही, नहीं कि मीरा के गीत चाहिए और मीरा का कंठ, नहीं कि कोयल का कंठ चाहिए, नहीं कि बुद्ध जैसा ध्यान, कि चैतन्य जैसा नर्तन--नहीं, जो तुम्हारे पास हो, जो तुम्हारा अपना... दो आंसू भी अगर भाव से तुम गिरा सको परमात्मा के लिए, तो सब हो जाएगा। सोनचिड़ी आंगन में बोल गई है! आ जाएगी खबर कि प्रिया आती, कि प्रेमी आता, कि प्रीतम आते।
शकुन शुभ हुआ कि आएंगे कंत
पीड़ा प्रतीक्षा की पाएगी अंत
नीम में मधुर मिसरी घोल गई है
बस दो आंसू तुम्हारे अपने हों। मगर अपने हों, इसे भूलना ही मत। तो नीम में भी मिश्री घुल सकती है। अपने हों। जो भी तुम्हारा अपना है, वही तुम चढ़ा सकते हो। अपने को ही अर्पण किया जा सकता है।
कौंध गए सुखद सब बीते दिन-रैन
सुख की पुलक में ही भर आए नैन
स्मृतियों की परत-परत खोल गई है
नीम में मधुर मिसरी घोल गई है
छोड़ उड़ी कचनार शेवंती फूल
प्रिया के प्रदेश की गंधायित धूल ओस-बिंदु पाटल पर रोल गई है
नीम में मधुर मिसरी घोल गई है
घायल-सी सांसें और उलझे केश
देने को नयन में आंसू ही शेष
निर्धन के कोष सब टटोल गई है
सोनचिड़ी आंगन में बोल गई है।
फिकर न करो कि कंठ कोयल का नहीं है। फिकर न करो कि नृत्य मीरा का नहीं है। फिकर न करो कि ध्यान बुद्ध का नहीं है। तुम्हारा कुछ भी हो, जो भी हो, अच्छा-बुरा, सुंदर-कुरूप, मूल्यवान-मूल्यहीन, तुम्हारा हो, प्रामाणिक रूप

से तुम्हारा हो--बस उसी को परमात्मा के चरणों में रख देना। और तुम्हारी भेंट निश्चित ही स्वीकार हो जाएगी। तुम स्वीकार हो ही, सिर्फ तुम्हें पता नहीं है।

तीसरा प्रश्नः ओशो
बुझे दिन में दीया जलता नहीं, हम क्या करें?
तुम्हीं कह दो कि अब ऐ जाने-वफा, हम क्या करें?

कृष्णतीर्थ! दिल का दीया तो कभी बुझता ही नहीं। राख कितनी ही जम जाए, जरा कुरेदोगे और अंगार मिल जाएगी। दिल का दीया तो कभी बुझता ही नहीं, यह शाश्वत सत्य है। बुझ सकता नहीं, क्योंकि यह दीया साधारण दीया नहीं है--बिन बाती बिन तेल! न तो इसकी कोई बाती है और न कोई तेल है। तेल होता, बुझ जाता, तेल चुक जाता तो बुझ जाता। बाती होती तो बुझ जाता। बाती चुक जाती तो बुझ जाता। और जो बिन बाती बिन तेल जल रहा है तुम्हारे भीतर, वहां तक हवाओं के कोई कंप भी नहीं पहुंचते। वहां न आंधियां पहुंचती हैं, न बवंडर पहुंचते हैं। तुम्हारे अंतस्तल के केंद्र पर कोई भी तरंग नहीं पहुंचती; वहां सब निस्तरंग है।
और जो यह दिल का दीया है, यही तो तुम्हारे जीवन का दूसरा नाम है। यह बुझ जाता कृष्णतीर्थ, तो पूछता कौन? वह बुझ जाता तो तुम यहां होते कैसे? दिल का दीया न कभी बुझा है, न कभी बुझता है। लेकिन मैं तुम्हारे प्रश्न का अर्थ समझता हूं। कई बार लगता है कि बुझा-बुझा हो गया। बारबार लगता है कि कोई चमक नहीं है, कोई लपट नहीं है। बार-बार लगता है कि कोई अर्थ नहीं है, अभिप्राय नहीं है। क्यों जिए जा रहा हूं? कोई उत्साह नहीं है। बार-बार लगता है कि न तो कहीं कोई प्रेम की किरण है, न कोई प्रार्थना की किरण है। यह मेरा कैसा दिल का दीया है, इसमें कोई रस-स्रोत तो बहते ही नहीं! न फूल खिलते हैं, न गंध उठती है। यह कैसा मेरा दिल का दीया है? अगर यही जिंदगी है तो फिर मौत क्या बुरी है। अगर यों ही ठोकरें खाते रहना है, रोज सुबह उठना और रोज सांझ सो जाना और यों ही व्यर्थ भटकाव में भटकते रहना, अगर यही जिंदगी है और फिर एक दिन मर जाना है, तो आज ही मर जाने में बुराई क्या है?
मैं तुम्हारा प्रश्न समझा। तुम यह कह रहे हो कि जीवन में कोई अर्थ क्यों नहीं है। तुम यह कह रहे हो कि जीवन में कोई अभिप्राय क्यों नहीं है। जीवन एक दुर्घटना जैसा क्यों मालूम होता है? जीवन एक उत्सव क्यों नहीं है? मैं नाच क्यों नहीं रहा हूं? मैं गीत क्यों नहीं गा रहा हूं? मेरे भीतर अहोभाव क्यों नहीं है? मैं तुम्हारा प्रश्न समझा। तुम्हारा प्रश्न यही है। यही तुम्हारा अभिप्राय।
"बुझे दिल में दीया जलता नहीं, हम क्या करें?
तुम्हीं कह दो, कि अब ऐ जाने-वफा हम क्या करें?"
तुम्हारे किए से कुछ होगा भी नहीं। शायद तुम जो कर रहे हो, उसी के कारण तुम्हारी पहचान नहीं हो पा रही है दिल के दिए से। तुम्हारा कर्ताभाव ही तुम्हें चैतन्य से अपरिचित रख रहा है। या तो तुम कर्ता हो सकते हो या साक्षी। कल दूलनदास के वचन समझे न! तुम दो में से एक ही हो सकते हो--या तो साक्षी या कर्ता। अगर कर्ता हुए, साक्षी भूल जाएगा; अगर साक्षी हुए, कर्ता भूल जाएगा।
तुमने बच्चों की किताबों में कभी यह तस्वीर देखी? एक बूढ़ी स्त्री की तस्वीर होती है बच्चों की किताबों में। और उसी तस्वीर में एक जवान स्त्री भी छुपी होती है। उन्हीं लकीरों में! लेकिन एक बड़े मजे की बात है उस तस्वीर के संबंध मेंः अगर तुम्हें बूढ़ी स्त्री दिखाई पड़े तो जवान स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। फिर तुम लाख कोशिश करो, जब तक बूढ़ी दिखाई पड़ती रहेगी जवान स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि वे ही लकीरें जो बूढ़ी स्त्री की तस्वीर को बनाती हैं, उन्हीं लकीरों के द्वारा जवान स्त्री बनेगी। और वे लकीरें अभी बूढ़ी को बनाने में उलझी हैं तो जवान को बनाने के लिए मुक्त नहीं हैं। अगर तुम गौर से देखते ही रहो, देखते ही रहो तो एक घड़ी ऐसी आएगी कि बूढ़ी स्त्री खो जाएगी और जवान दिखाई पड़ेगी। वह भी एक भीतरी नियम से होता है।

हमारी आंख ज्यादा देर एक चीज पर स्थिर नहीं रह सकती; बदलाहट चाहती हैं। हम जिस चीज पर थिर हो जाते हैं उबने लगते हैं। बदलना चाहते हैं तो अगर तुम बूढ़ी स्त्री को देखते रहे, एक तो बूढ़ी स्त्री और फिर देखते ही रहे देखते ही रहे, थोड़ी देर में घबड़ा जाओगे, बेचैन हो जाओगे। तुम्हारी आंखें इधर-उधर हटना चाहेंगी, भागना चाहेंगी, बचना चाहेंगी। उसी बचने में अचानक जवान स्त्री प्रकट हो जाएगी। और तब तुम चकित होओगे कि जब जवान स्त्री दिखाई पड़ेगी तो फिर बूढ़ी दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि अब वे ही लकीरें जवान को बनाने लगीं।
पश्चिम में एक पूरा मनोविज्ञान इसी आधारशिला पर खड़ा हुआ है-- गेस्टाल्ट मनोविज्ञान। यह जो स्त्री है बूढ़ी, यह एक गेस्टाल्ट है, एक ढांचा--उन्हीं लकीरों का। और वह जो जवान स्त्री है वह दूसरा ढांचा--उन्हीं लकीरों का। दूसरा गेस्टाल्ट। मगर एक साथ दो गेस्टाल्ट नहीं देखे जा सकते। एक साथ तो केवल एक ही गेस्टाल्ट, एक ही ढांचा देखा जा सकता है।
ठीक ऐसी ही अवस्था भीतर है। एक ढांचा है कर्ता का और एक ढांचा है साक्षी का। अगर कर्ता में जुड़ गए तो साक्षी नहीं दिखाई पड़ेगा। और साक्षी दिखाई पड़े तो ही दीया दिल का जलता हुआ मालूम पड़े। साक्षी चैतन्य ही तो ज्योति है अंतर की। कर्ता ही तो अंधेरा है। कर्ता ही तो धुआं है। तुम कर्ता में खो गए हो जैसे सभी लोग कर्ता में खो गए हैं।
लेकिन फिर भी तुम पूछ रहे हो... "तुम्हीं कह दो कि अब ऐ जाने-वफा हम क्या करें?" और अभी भी तुम पूछते हो कि क्या करें! वह करने वाला अभी भी पूछ रहा है कि और क्या करूं। लेकिन जब तक तुम कुछ करोगे, साक्षी न हो सकोगे। इसलिए ज्ञानी कहते हैंः कुछ करो न, साक्षी हो जाओ। थोड़ी देर को न करने में बैठ जाओ। उस न करने का ही पारिभाषिक नाम ध्यान है। एक घड़ी भर चौबीस घंटों में बस आंख बंद करके रह जाओ, कुछ न करो। करो ही मत! कृत्य से सारा संबंध ही तोड़ लो। विचार भी नहीं, वासना भी नहीं, कृत्य भी नहीं, करने की कोई छाया ही नहीं--बस हूं! सिर्फ रह जाओ।
शुरू-शुरू में अड़चन होगी, क्योंकि जन्मों-जन्मों की आदत है कर्ता होने की, कुछ न कुछ लोग करते ही रहते हैं। खाली नहीं बैठ सकते। अगर कोई करने योग्य काम न हो तो गैर-करने योग्य काम करने लगते हैं, मगर करते हैं। अगर छुट्टी का दिन हो, जिसके लिए छह दिन से राह देखते थे दफ्तर में बैठे कि छुट्टी आ रही है, रविवार आ रहा है, रविवार आ रहा है और जब रविवार आता है तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं, अब क्या करें! पत्नियां डरती हैं पतियों से रविवार को, क्योंकि घड़ी जो बिल्कुल ठीक चल रही थी उसे खोल कर बैठ गए--ठीक करने के लिए, जो ठीक चल ही रही थी। कि कार को खोल कर बैठ गए, जो कि ठीक चल ही रही थी! कि कैंची उठा कर बगीचे में झाड़ों को काटने लगे। कुछ न कुछ करेंगे। बिना किए नहीं रह सकते। करने की ऐसी पागल आदत हो गई है!
इसलिए तुम जब नये-नये ध्यान करने बैठोगे तो पुरानी आदत लौट-लौट कर हमला बोलेगी। फिकर मत करना! तीन से छह महीने तक हमले होते हैं। तीन से छह महीने तक अगर तुमने इतनी हिम्मत रखी कि हमले बरदाश्त कर लिए और तुम रोज बैठते ही गए; तुमने कहा कोई हर्जा नहीं, कुछ न मिला तो कोई हर्जा नहीं, खोया भी क्या; कुछ करते भी तो क्या कर लेते, कर-कर के भी क्या पा लिया है--छह महीने अगर तुमने यह तय रखा कि एक घंटा बैठे ही रहेंगे, कुछ फिकर न करेंगे, जो हो, हो, तो तुम एक दिन पाओगे अचानक एक नई सुगंध उठने लगी तुम्हारे भीतर। ऐसी सुगंध, जिससे तुम परिचित नहीं हो। तुम्हारे नासापुट भरने लगे एक अपूर्व सुवास से! सब फूल फीके होने लगेंगे। और तुम्हारे भीतर एक किरण जगने लगेगी, जिसके सामने सूरज छोटे पड़ जाते हैं, और तुम्हारे भीतर एक शांति का आकाश फैलने लगेगा, जिसके सामने यह बड़ा आकाश भी एक छोटा-सा आंगन है।

और जिस दिन यह अपूर्व क्रांति तुम्हारे भीतर उतरनी शुरू होती है, उस दिन तुम्हें पहली बार पता चलता हैः तुम कौन हो! तुम बुद्ध हो, महावीर हो, कृष्ण हो, क्राइस्ट हो! उस दिन तुम्हें पता चलता है कि तुम कितनी बड़ी संपदा के मालिक थे और नाहक ही भिक्षापात्र लिए भीख मांगते फिरते थे। कर्ता को जाने दो।

और कर्ता में हमारा बड़ा रस है, क्योंकि कर्ता में ही हमारे अहंकार की सारी जड़ें हैं। मैं कर्ता हूं तो मैं हूं। और अगर मैं कर्ता नहीं हूं तो मैं भी गया। इसलिए लोग बढ़ा-चढ़ा कर अपनी बातें करते हैं। थोड़ा सा कर लेंगे और बहुत बढ़ा कर बताएंगे। जरा सा टीला चढ़ जाएंगे और कहेंगे एवरेस्ट चढ़ गए। छोटे और बड़ो में कुछ भेद नहीं है।
एक छोटे बच्चे ने भीतर आकर घबड़ा कर अपनी मां को कहाः मां! एक सिंह चला
आ रहा है और एकदम दहाड़ कर मेरे पीछे दौड़ा। उसकी मां ने कहा कि भरे बाजार में, एम. जी. रोड पर कहां का सिंह! तू झूठ बोलना बंद कर! अतिशयोक्ति करना बंद कर। तुझसे करोड़ बार कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत कर!
करोड़ बार! कुछ बहुत भेद नहीं है छोटों और बड़ों में। अभी बच्चे की इतनी उम्र भी नहीं है कि करोड़ बार कहा हो, कि उसने करोड़ बार अतिशयोक्ति की हो। "करोड़ बार कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत कर, मगर तू मानता ही नहीं। जा ऊपर अपने कमरे में बैठ कर भगवान से प्रार्थना कर और क्षमा मांग कि अब झूठ नहीं बोलूंगा, अतिशयोक्ति नहीं करूंगा।"
लड़का ऊपर गया। थोड़ी देर बाद वापस नीचे आया। मां ने कहाः तूने प्रार्थना की, क्षमा मांगी?
उसने कहाः हां, मैंने प्रार्थना की, क्षमा भी मांगी। लेकिन परमात्मा बोलाः तू फिकर मत कर, जब मैंने पहली दफा देखा उसे तो मैंने भी यही समझा कि सिंह आ रहा है, हालांकि है कुत्ता। मगर तूने ही धोखा खाया ऐसा नहीं है, मैं भी धोखा खा गया।
यह जो बच्चा कुत्ते को देख कर सिंह की घोषणा कर रहा है, इससे तुम भिन्न समझते हो बूढ़ों की घोषणाएं? बस यही अतिशयोक्ति चलती है। क्यों इतनी अतिशयोक्ति चलती है? किसी तरह हम अपने अहंकार को बढ़ा कर के बताना चाहते हैं। बच्चा यह कह रहा है कि सिंह मेरे पीछे पड़ गया, मेरा बाल नहीं बिगाड़ पाया। तुम भी यही कह रहे हो। जरा अपनी घोषणाओं को देखना, अपने वक्तव्यों को देखना। छोटी-छोटी बातों को कितना बढ़ा रहे हो! और पीछे कुल खेल एक है कि इस तरह अहंकार भरता है। मैं कुछ खास हूं, ऐसे प्रतीति होती है।
जरूरत नहीं है यह प्रतीति की। तुम खास हो ही! इसकी घोषणा करना बिल्कुल
ही व्यर्थ है। और तुम्हीं खास नहीं हो, यहां प्रत्येक व्यक्ति खास है। परमात्मा खास लोग ही बनाता है, गैर-खास बनाता ही नहीं।
तोड़ दो मन! अहं तोड़ दो
मत शिखर पर अकेले रहो
मुक्त मैदान में भी बहो
अंध क्षण में कभी ली हुई
दंभ की हर कसम तोड़ दो
गीत लिक्खे न सूरजमुखी
चेतना हो दुखी की दुखी
काव्य लिखना जरूरी नहीं-- कुंठिता हो कलम तोड़ दो
जिंदगी बंध गई झील सी
एक बीमार कंदील सी
आदमी के हितों के लिए
निर्दयी सब नियम तोड़ दो
श्रेष्ठतम सृष्टि की सर्जना व्यर्थ उस प्यार की वर्जना स्वस्थ संशोधनों के लिए
रूढ़ियों की रसम तोड़ दो
स्वप्न वह जो कि पैदल चले
धूल जलती हुई मुख मले
सिर्फ रेशम नहीं जिंदगी
इंद्रधनुषी वहम तोड़ दो
एक ही वहम है इस जगत में--सारे वहमों का स्रोत--एक ही इंद्रधनुषी वहम हैः अहंकार का!

तोड़ दो मन! अहं तोड़ दो
दंभ की हर कसम तोड़ दो
और फिर तुम पाओगेः दीया न तो कभी बुझा था, न बुझ सकता है। जरा अहंकार
का परदा हटे और दीया जल रहा है!
एक झेन फकीर हुआ, बोकोजू। सर्द रात है और एक अतिथि बोकोजू के घर मेहमान हुआ है। अंगीठी जल रही है, लेकिन धीरे-धीरे अंगीठी बुझने लगी। राख जम गई। सर्दी बढ़ने लगी। बोकोजू ने उस अतिथि भिक्षु से कहाः भिक्षु, जरा अंगीठी में देखो, कोई अंगार बची या नहीं? बोकोजू के रास्तों का उस अजनबी भिक्षु को कुछ पता न था। बोकोजू बाहर की अंगीठी की बात ही नहीं कह रहा था। बोकोजू तो भीतर की अंगीठी की बात कर रहा था। वह यह कह रहा था कि जरा भाई, भीतर देख, कुछ अंगार बची या नहीं कि सब राख ही राख हो गया? बड़ी देर से इस अतिथि को देख रहा था। देख रहा होगा परत पर परत, राख पर राख जमी है। लेकिन स्वभावतः उस अतिथि ने समझा कि अंगीठी की बात हो रही है, तो उसने पास में पड़ी एक लकड़ी का टुकड़ा उठाया और अंगीठी में घुमाया और फिर कहा कि नहीं, कोई अंगार नहीं है, राख ही राख है।
बोकोजू हंसने लगा। उसने कहा कि नहीं-नहीं, अंगार है। अंगार कभी बुझती
ही नहीं। अब तो बात और भी जटिल हो गई। उस अतिथि ने कहाः अंगार कभी बुझती नहीं, आप क्या बात कर रहे हैं! बोकोजू उठा, लकड़ी के टुकड़े को फिर उसने उठाया, अंगीठी में फिर घुमाया, खूब खोजा और एक छोटा सा अंगार राख में कहीं दबा पड़ा रह गया होगा, उसे बाहर लाया। पूंका और कहा देखो। बाहर तक का अंगार अभी नहीं बुझा है तो भीतर का तो कैसे बुझेगा? राख कितनी ही हो, ढेर लग जाएं राख के, पहाड़ लग जाएं राख के, अंबार हों राख के; मगर भीतर की अंगार न बुझती है, न बुझ सकती है। भीतर की अंगार शाश्वत जीवन की अंगार है।.जरा अहंकार को हटाओ; बस इसी की राख है।
कृष्णतीर्थ, कुछ और नहीं करना है। न करना सीखना है। साक्षीभाव सीखना है। तुम जरूर ऊब रहे होओगे जिंदगी से क्योंकि बिना इस भीतर की साक्षी चेतना के जिंदगी निश्चित ही ऊब हो जाती है, बड़ी ऊब हो जाती है। सब बासा- बासा लगता है। बेस्वाद! जैसे बहुत दिन बुखार के बाद भोजन लगता है, ऐसी जिंदगी लगती है और यह बुखार बहुत दिन पुराना है, जन्मों-जन्मों पुराना है। ऊब सुबह की, घुटन दोपहर और उदासी शाम की
कई दिनों से यही दशा है
क्या मर्जी है राम की
सिर्फ औपचारिकता भर है
रस ही कहां रहा रिश्तों में
एक उम्र जीने की खातिर
रह-रह कर मरना किश्तों में
यह कितना तीखा मजाक जिंदगी बराए नाम की कई दिनों से यही दशा है
क्या मर्जी है राम की
तन के सुख की स्पर्धाओं में
मन जैसे बीमार पड़ा हो
आमुख के पहले ही जैसे
लिखना उपसंहार पड़ा हो
यह कैसा प्रारंभ कि चर्चा होती पूर्ण विराम की कई दिनों से यही दशा है
क्या मर्जी है राम की
चिंता वह तेजाब कि जिसमें
यह अस्तित्व घुला जाता है
पढ़ना हमें समर्पण लेकिन
अंतिम पृष्ठ खुला जाता है
यह कैसा स्वागत है जिसमें ध्वनि आखिरी प्रणाम की कई दिनों से यही दशा है
क्या मर्जी है राम की

कृष्णतीर्थ! जितना चिंतनशील-विचारशील व्यक्ति हो उतनी ही ज्यादा ऊब
का अनुभव होता है। सिर्फ भैंसें ऊबती नहीं। सिर्फ गधे अर्थहीनता का अनुभव नहीं करते। मनुष्यों में भी केवल वे ही लोग जो बहुत अंधों की तरह जीते हैं, मूर्च्छित, जो अभी पशु-जगत से मुक्त नहीं हुए हैं, उनके जीवन भर में ऊब नहीं होती। उनके जीवन में बड़ी दौड़-धाप देखोगे तुम, बड़ी गरमा-गरमी। उनके जीवन में बड़ा उत्तेजन देखोगे तुम। चले जा रहे हैं दिल्ली की तरफ! उनके जीवन में एक गंतव्य हैः दिल्ली पहुंचना है! किसी को राष्ट्रपति बनना है, किसी को प्रधानमंत्री बनना है, किसी को कुछ और बनना है।
तुमने एक मजा देखा है, राजनीतिज्ञों को तुम ऊबा हुआ नहीं देखोगे। बड़े उत्फुल्ल मालूम होते हैं। ऊबने लायक बुद्धि भी तो चाहिए। ऊबने लायक सोच-विचार भी तो चाहिए! कोई धन की दौड़ में है, ऊबता नहीं; कोई पद की दौड़ में है, ऊबता नहीं। लेकिन जो लोग थोड़ा भी सोचेंगे जीवन के संबंध में, थोड़ा विराम लेकर आंख डालेंगे भीतर, उन्हें ऊब स्वाभाविक मालूम होगी। लगेगाः प्रयोजन क्या है? ठीक, राष्टपति भी हो गए तो फिर क्या है?
सिकंदर ने डायोजनीज से पूछा था कि तू इतना आनंदित क्यों है, तेरे पास कुछ भी तो नहीं! और डायोजनोज ने कहाः मैं तुझसे पूछता हूं कि तू इतना दुखी क्यों है, तेरे पास सब कुछ तो है! सिकंदर ने कहाः मैं दुखी हूं क्योंकि अभी सारे जगत का सम्राट नहीं हो पाया हूं। होकर रहूंगा।
डायोजनीज ने कहाः समझ लो कि हो गए, फिर क्या करोगे? यह एक बड़ा अदभुत प्रश्न हैः समझ लो कि हो गए, फिर क्या करोगे? सिकंदर एक क्षण को ठिठका रह गया, जवाब न दे सका। यह किसी ने पूछा ही नहीं था उसे कभी कि हो गए समझ लो, फिर क्या करोगे? किसी ने पूछा नहीं था। उत्तर भी उसके पास तैयार नहीं था। इसलिए एक क्षण ठिठका। फिर उसने कहाः फिर क्या करूंगा, फिर जैसे तुम आराम कर रहे हो, ऐसे मैं भी आराम करूंगा।
तो डायोजनीज ने कहाः अभी आराम करने में क्या अड़चन आ रही है? मैं कर ही रहा हूं, तुम भी करो। फिर क्यों यह आपाधापी?
मगर सिकंदर ने कहाः नहीं, यह अभी नहीं हो सकता। अभी तो अभियान पर निकला हूं। यह तो दुनिया में करके दिखाना है।
जिनको दुनिया में कुछ करके दिखाना है, उनको तुम ऊबे हुए न पाओगे। उनमें तुम एक तरह की सतत तीव्रता पाओगे। उनके पैर हमेशा तत्पर हैं दौड़ने को। वे प्रतियोगी हैं। उनके जीवन में तुम हमेशा एक तरह की भ्रांति पाओगे, जो उनके रस को बनाए रखती है। लेकिन जो थोड़ा सोच-विचारशील है... डायोजनीज जैसा जो पूछेगा कि समझो कि पा लिया दुनिया का राज्य फिर क्या करूंगा, उसके जीवन में ऊब आएगी, उदासी आएगी, अर्थहीनता आएगी।
इसलिए पश्चिम में बहुत जोर से अर्थहीनता आ रही है; पूरब में नहीं, क्योंकि पूरब अभी भी इतनी दीनता में पड़ा है कि अभी हम किसी तरह जिंदा रह लें, यही बहुत है। हमें इतनी सुविधा नहीं है कि बैठ कर हम विचार करें कि जिंदगी का अर्थ क्या है। रोटी ही पास नहीं, कपड़ा पास नहीं, छप्पर पास नहीं। रोटी हो, कपड़ा हो, छप्पर हो, तो फिर आदमी बैठ कर विचार करे कि जीवन का अर्थ क्या? पहले तो रोटी चाहिए। जब तक रोटी नहीं मिलती तब तक जीवन का अर्थ, है भी कुछ या नहीं है कुछ, ये प्रश्न नहीं उठते हैं। पश्चिम में ये प्रश्न बड़े जोर से उठ रहे हैं, क्योंकि रोटी का सवाल हल हो गया है। मकान का सवाल हल हो गया है, काम का सवाल हल हो गया है, अब? अब जिंदगी का प्रयोजन क्या है? कृष्णतीर्थ, ऐसे यह अच्छा लक्षण है कि तुम्हारे मन में सवाल उठा।
ऊब सुबह की घुटन दोपहर और उदासी शाम की
कई दिनों से यही दशा है
क्या म.र्जी है राम की
सिर्फ औपचारिकता भर है
रस ही कहां रहा रिश्तों में
एक उम्र जीने की खातिर
रह-रह कर मरना किश्तों में
यह कितना तीखा मजाक जिंदगी बराए नाम की कई दिनों से यही दशा है

क्या म.र्जी है राम की
मगर इस ऊब से दो परिणाम हो सकते हैं। एक--आत्मघात, कि आदमी को लगे कि जिंदगी इतनी व्यर्थ है कि जिएं ही क्यों मर ही क्यों न जाएं? दोस्तोवस्की के एक उपन्यास ब्रदर्स कर्माजोव का एक पात्र ईश्वर से कहता हैः लो यह अपनी टिकट, वापस लो, मैं जिंदा नहीं रहना चाहता। यह तुम्हारी जिंदगी व्यर्थ है। सम्हालो! न तो मैं अनुगृहीत हूं, न अनुग्रह का कोई कारण देखता हूं। सिर्फ मुझे बाहर हो जाने दो। बड़ी कृपा होगी, मुझे जिंदगी से बाहर हो जाने दो। सार्त्र, कामू, पश्चिम के और आधुनिक विचारक एक ही चिंतना से भरे हुए हैं कि जिंदगी ऊब है, इससे छुटकारा कैसे हो? पश्चिम में आत्मघात करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जाती है।
तो एक तो उपाय है कि समाप्त कर लो अपने को, जिंदगी बेकार है, सार क्या दौड़े रहना? और एक दूसरा उपाय है कि आत्मक्रांति कर लो। यह जिंदगी बेकार है। यह कर्ता के होने की जिंदगी बेकार है। कर्ता के केंद्र पर बनी जिंदगी बेकार है। एक और जिंदगी है, जो साक्षी के केंद्र पर बनती है। बुद्धों के जीवन, उस जिंदगी में यात्रा करो।
मेरी दृष्टि में आत्मघात की घड़ी और संन्यास की घड़ी एक साथ उपस्थित होती हैं; एक ही घड़ी के दो पहलू हैं। जब जिंदगी इतनी व्यर्थ मालूम होती है कि या तो इसे खत्म करो या इसे बदलो, दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं छूटता, तभी मनुष्य के जीवन में कुछ घटता है। बुद्ध को भी एक दिन लगा था कि सब व्यर्थ है, लेकिन उन्होंने आत्मघात नहीं किया।
पूरब इस सत्य को सदियों से जानता रहा है कि जीने का एक और ढंग भी है, जो सार्थक होता है, जो सुगंधपूर्ण होता है, जो रोशनी से भरा होता है। यही एक ढंग, जिसे हम जानते हैं, एकमात्र ढंग नहीं है; एक और भी जिंदगी के जीने का ढंग है। कर्ता की भांति, एक; साक्षी की भांति, एक। कर्ता की भांति जो जिएगा, वह आज नहीं कल ऊब का अनुभव करेगा। अगर उसमें थोड़ी बुद्धि होगी तो जरूर ऊब का अनुभव करेगा। अगर बुद्धि बिल्कुल नहीं होगी तो ऊब का अनुभव नहीं करेगा। मगर वह और भी बदतर दशा है। बुद्धि का इतना न होना कि जिंदगी में ऊब का अनुभव ही न हो, बड़ी बुरी दशा है। वह तो मनुष्य से नीचे की दशा है। मनुष्य तो वही, जो मनन करे। मनन से ही मनुष्य शब्द बना है। सोचे- विचारे, विमर्श करे। और जब विमर्श करोगे तो यह सवाल उठेगा कि क्या सार है, क्यों जीयूं? एक श्वास और क्यों लूं; अगर इसी तरह जीना है जैसा आज तक जिए हैं, तो फिर क्यों जीएं, कल क्यों जीएं? फिर तो यह जीना सिर्फ कायरता होगी। आमतौर से तुम सोचते हो कि जो लोग आत्महत्या कर लेते हैं वे कायर हैं; लेकिन आत्महत्या के पक्षपाती लोगों का कहना कुछ और है। वे कहते हैंः जो आत्महत्या नहीं करते, वे कायर हैं! मरने से डरते हैं, इसलिए चले जाते हैं। मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, इसलिए जीए चले जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक बार आत्महत्या का इंतजाम किया। समझदार आदमी! सोचा-विचारा बहुत। देखा, जिंदगी में कोई अर्थ नहीं। सयाना आदमी है तो सब इंतजाम किए। एक चूक जाए तो दूसरा न चूके। तो साथ में एक पिस्तौल ले ली, रस्सी ले ली, घासलेट के तेल का एक पीपा ले लिया, माचिस ले ली, सब लेकर पहुंचा नदी के किनारे। चढ़ गया एक टीले पर, एक झाड़ से रस्सी बांधी--फांसी लगाने के लिए। फांसी लगा ली, तेल उंड़ेल लिया, आग लगा ली, गोली चला दी। और जब दूसरे दिन मुझे मिला तो मैंने कहा कि नसरुद्दीन, क्या हुआ? उसने अपना सिर ठोंक लिया, उसने कहाः भाग्य की खराबी! इतने इंतजाम किए और सब बेकार गए। मैंने कहाः पूरा जरा विस्तार से कहो। तो उसने कहा कि जब रस्सी बांधी
और गले में फांसी लगाई, तेल डाला, तब तक ऐसा लगता था सब ठीक चल रहा है। फिर जो मैंने गोली मारी, मारी तो सिर में थी, सिर में न लगी, रस्सी में लगी। रस्सी कट गई। नदी में गिरा सो आग बुझ गई। और फिर अगर मुझे तैरना न आता होता तो कल जिंदगी से गए थे। वह तो तैरना आता था, यह कहो, कि अपने घर भलीभांति वापिस आ गए।
जो लोग आत्मघात के पक्षपाती हैं... ऐसे दार्शनिक हैं जो आत्मघात के पक्षपाती हैं, उनका कहना है कि लोग कायरता के कारण जी रहे हैं। उनकी बात में भी थोड़ा बल तो है; क्योंकि जहां कोई अर्थ न हो, जहां सब व्यर्थ हो, वहां

क्यों आदमी जीता है? मैं भी उनसे राजी हूं, लेकिन सिर्फ आधी दूर तक--कि लोग कायरता के कारण ही चुपचाप जिंदगी को घसीटे जाते हैं कोल्हू के बैल की भांति। मगर मैं उनकी दूसरी बात से राजी नहीं हूं कि लोगों को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। उससे तो कुछ भी न होगा। इधर आत्महत्या होगी उधर दूसरे गर्भ में जन्म हो जाएगा। फिर वही यात्रा शुरू हो जाएगी। यह तो कोई बचने का उपाय नहीं।
जिंदगी की इस व्यर्थ दौड़-धाप से बचने का हमने और भी अदभुत उपाय खोजा है--कि फिर न जन्म होता और न फिर मृत्यु होती। उस क्रांति की प्रक्रिया का नाम ही संन्यास है, ध्यान है, धर्म है। और जो रूपांतरण करना है, वह साक्षी को जगाना है और कर्ता को भुलाना है। अभी कर्ता साक्षी की छाती पर बैठा है। कर्ता को छाती से उतर जाने दो। और कृष्णतीर्थ, तुम अचानक पाओगे, दीया जल ही रहा था। दीया कभी बुझा ही न था।
कुछ करना नहीं है; सिर्फ कर्ता से हमारी आंखें धुंधली हो गई हैं, अंधी
हो गई हैं। कर्ता की धूल हमारी आंख पर जम गई हैं; उसे झाड़ दो, और तुम्हें भीतर की ज्योति उपलब्ध हो जाएगी। उसका उपलब्ध हो जाना बिल्कुल सुनिश्चित है। आश्वासन है। उसने भी भीतर थोड़ा सा भी जाग कर साक्षी को तलाशा है उसे जीवन के परमस्रोत सदा ही मिल गए हैं।

चौथा प्रश्नः ओशो! भजन, प्रार्थना और ध्यान में क्या भेद है?

धर्मरक्षिता! ध्यान है भजन की निष्क्रिय अवस्था और भजन है ध्यान सक्रिय की अवस्था। जब भजन मौन में होता है तो ध्यान और जब ध्यान मुखर होता है तो भजन।
जैसे नील नदी मीलों तक जमीन के नीचे बहती है; जब तक जमीन के नीचे बहती
है तब तक ध्यान और जब प्रकट होकर जमीन के ऊपर बहने लगती है तब भजन।
ध्यान की अभिव्यक्ति है भजन। भाव की अभिव्यक्ति है भजन।
जैसे मां के पेट में नौ महीने तक बच्चा रहता है--छिपा, प्रच्छन्न, अदृश्य--यह ध्यान। फिर एक दिन जन्म होता है बच्चे का और किलकारी और बच्चे का पदार्पण, एक नए अतिथि का प्रवेश जगत में--वह है भजन।
ध्यान है शुद्ध आत्मा और भजन है जब आत्मा देह ले लेती है। ध्यान है निराकार; भजन है निराकार का आकार में प्रकट होना, रूप में प्रकट होना, रंग में प्रकट होना। दोनों अदभुत हैं। बीज है ध्यान, फूल है भजन। बीज में फूल छिपा पड़ा, तुम तोड़ोगे तो मिलेगा नहीं। लेकिन बीज की सार्थकता यही है कि फूल बने। और जब फूल बनेगा तो बीज खो चुका होगा। गंध उड़ेगी आकाश में। रंग उड़ेंगे आकाश में। तितलियां ईर्ष्या से भरेंगी। बीज अपने गंतव्य पर पहुंच गया।
ध्यान और भजन एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। और चूंकि दुनिया में दो तरह के लोग हैं, इसलिए इस बात की संभावना है कि कुछ लोग ध्यान से ही उपलब्ध हो जाएंगे और कुछ लोग भजन से ही उपलब्ध हो जाएंगे।
यह सारा अस्तित्व दो तरह के लोगों में बंटा हुआ है। स्त्री-पुरुष का भेद सिर्फ जैविक भेद नहीं है; स्त्री-पुरुष का भेद सारे अस्तित्व में सामस्त तलों पर है। चाहे विद्युत हो तो वहां भी ऋण और धन विद्युत है और चाहे चुंबकीय शक्ति हो, तो वहां भी ऋण और धन चुम्बकीय शक्ति है। चाहे कोई भी तल हो, हर तल पर स्त्री और पुरुष का भेद है।
पुरुष है ध्यान, स्त्री है भजन। बुद्ध शुद्धतम ध्यान के प्रतीक हैं
और मीरा शुद्धतम भजन का। ऐसा मत समझ लेना कि पुरुष भजन नहीं कर सकते, क्योंकि चैतन्य भी उसी जगह पहुंच जाते हैं जहां मीरा। लेकिन चैतन्य का स्वभाव भी मीरा जैसा है, स्त्रैण है, माधुर्य से भरा है, लावण्य से भरा है, मृदु है, कोमल है, सुकुमार है। और ऐसी स्त्रियां भी हुईं जो ध्यान से पहुंचीं; जैसे कश्मीर की लल्ला या सूफी फकीर राबिया। लेकिन इनका व्यक्तित्व बुद्ध और महावीर जैसा है--पुरुष। स्त्री जैसा तरल नहीं, सुकोमल नहीं। संकल्प प्रगाढ़ है।

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पुरुष और स्त्री का मतलब तुम जैविक अर्थो में लेना। पुरुषों में बहुत होंगे जो भजन से पहुंचेंगे; स्त्रियों में बहुत होंगी जो ध्यान से पहुंचेंगी। लेकिन ऊर्जा का भेद साफ है। भजन--अभिव्यक्ति है, अभिव्यंजना है, गुंजार है, गीत की गुनगुनाहट है, मुखरता है। ध्यान चुप्पी है, सन्नाटा है, मौन है।
और एक बात याद रखनाः जहां भजन होगा उसके पीछे छिपा ध्यान हमेशा होता है, नहीं तो भजन प्राण कहां से पाएगा? अगर मौन न होगा तो मुखरता कहां से आएगी? अगर भीतर शून्य न होगा तो शून्य की अभिव्यक्ति करने वाले गीत कहां से पैदा होंगे? बिना बीज के फूल तो नहीं होगा। बिना ध्यान के भजन भी नहीं होगा। और उससे उल्टा भी सच हैः जहां-जहां ध्यान हो वहां-वहां संभावना है भजन की। प्रकट हो या न हो यह और बात, मगर संभावना है। यह हो सकता था कि बुद्ध भी गाते। यह हो सकता था। यह हुआ नहीं, यह दूसरी बात है। या यह हुआ इतने अदृश्य ढंग से हमारी सीधी-सीधी पकड़ में नहीं आया। बुद्ध के चलने में एक लयबद्धता है। जैसा मीरां के नृत्य में है वैसा बुद्ध के चलने में है। इसको नाच नहीं कह सकते। मगर एक संगीत है। बुद्ध के उठने-बैठने में एक प्रसाद है, एक काव्य है। बुद्ध की आंख के झपने, खुलने में एक ताल है, एक संगीत है, एक सरगम है। यह प्रकट नहीं है मीरां जैसा। यह अदृश्य-अदृश्य है। यह बड़ा चुप-चुप है। इसकी कोई उदघोषणा नहीं की जा रही है। इसकी पगध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती।
मीरा तो ऐसे है जैसे छप्परों पर चढ़ कर किसी ने आवाज दी हो, पुकार दी हो, अजान दी हो। बुद्ध ऐसे हैं जैसे दो प्रेमी आस-पास बैठ कर खुस-पुस करें, किसी और को सुनाई भी न पड़े। उनको भी एक-दूसरे का सुनाई पड़ रहा है, इसका भी कोई प्रेमियों को प्रयोजन नहीं होता। मजा इसका नहीं होता कि कुछ कहा जाए; एक-दूसरे के कान के पास मुंह ले जाना ही काफी होता है। कुछ कहने को प्रेमियों के पास होता भी क्या है! अंग्रेजी में कहते हैं स्वीट नथिंग्स! कुछ कहने के होता ही नहीं--मीठा-मीठा ना-कुछ। यह सवाल नहीं है कि कुछ कहो, कि कान में कुछ कहा ही जाए। बस कान के पास ओंठ पहुंच गए, यह काफी है, वाणी प्रकट हो या न हो।
धर्मरक्षिता, तेरा प्रश्न महत्वपूर्ण है।
दर्द कुछ और हो जवान नया गीत लिखूं
और व्याकुल हो जरा प्राण नया गीत लिखूं
सिसकती सांस को पहले मिलें तो स्वर
आंसुओं को मिले.जुबान नया गीत लिखूं
सुप्त अनुभूति जगे, सिहरे संवेदन
भावना में उठे उफान नया गीत लिखूं
यह जो आवाज है कहीं हृदय टूटा
क्रौंच का वध हुआ विधान नया गीत लिखूं संशयों की यह लंबी रात तो कटे
विवेक का हो फिर विहान नया गीत लिखूं रूप यूं ही रहे कुछ बीमार उदास
काम मत खींचना कमान नया गीत लिखूं करें यथार्थ अगर कल्पना का वरण
सत्य हो स्वप्न का निदान नया गित लिखूं
मेरी रचना के संदर्भों में सदा
आदमी ही रहे प्रधान नया गीत लिखूं
एक ही श्लोक बस गीता तो दे मुझे
एक आयत तो दे कुरान नया गीत लिखूं
भजन तो एक नये गीत का स्फुरण है। और जहां भजन है वहां भगवान अभिव्यक्त है। जहां चार दीवाने बैठ कर भजन करते हैं वहां परमात्मा को खींच लाते हैं पृथ्वी पर; वहां आकाश को उतार लेते हैं जमीन पर!
एक ही श्लोक बस गीता तो दे मुझे
एक आयत तो दे कुरान नया गीत लिखूं

और एक गीता की कड़ी पैदा हो जाए तुम्हारे भीतर--अपनी, तुम्हारे प्राणों में सरजी, तुम्हारे प्राणों में जन्मी या एक आयत पैदा हो जाए तुम्हारे भीतर कुरान की, बस पर्याप्त है। उस एक कड़ी में, उस एक लड़ी में सारा जीवन धन्य हो जाएगा।
लेकिन भजन पैदा तभी हो सकता है जब ध्यान का थोड़ा अनुभव हो। बीज तो चाहिए ही चाहिए, नहीं तो फूल न हो सकेंगे। बूंद तो चाहिए ही चाहिए, नहीं तो सागर कैसे बनेगा? भाव तो चाहिए ही चाहिए, नहीं तो अभिव्यंजना कहां से होगी?
साक्षी में डूबो। अगर कोमल कवि का चित्त हुआ तो साक्षी में डुबकी लगाते ही तुम्हारे हाथ में हीरे आ जाएंगे और गीत जन्मेंगे। तुम्हारे हाथ में गीता की कड़ी आ जाएगी, कुरान की आयत आ जाएगी। अपने ही साक्षी में डूबते अगर तुम्हारे भीतर थोड़ा कोमल स्त्रैण कवि का हृदय हुआ, चित्रकार का, संगीतज्ञ का, नर्तक का--तो भजन अपने से पैदा होता है। भजन सीखने नहीं होते। साक्षी से संबंध जुड़ा कि भजन पैदा होते हैं। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, ऐसे तुम्हारे भीतर भजन लगने शुरू हो जाएंगे। और जिसके भीतर भजन लगता है उसके चारों तरफ भगवान की उपस्थिति अनुभव होने लगती है।
चांद चढ़ा
निशिगंधा द्वार महकी
बार बार महकी
कांटों का पहरा या पत्तों में बंद
कली रोक पायी न यौवन की गंध
दृष्टि ओट
परकोटे पार महकी
बार बार महकी
ज्वार चढ़े सागर में अंगों पर रूप कौन रोक पाता जब चढ़ती है धूप
अंग अंग
चंद्रिमा निखार महकी
बार बार महकी
प्यास पी पुकारेगी स्वर न करो मंद कौन नहीं रचता समर्पण के छंद लाज भरी
पिया को पुकार महकी
बार बार महकी
चांद चढ़ा
निशगंधा द्वार महकी
बार बार महकी
तुम्हारे भीतर साक्षी का भाव ऊपर उठे। चांद चढ़े जरा साक्षी का! और-- निशिगंधा द्वार महकी
बार बार महकी
परकोटे पार महकी
बार बार महकी
चंद्रिमा निखार महकी
बार बार महकी
पिया को पुकार महकी
बार बार महकी
तुम्हारे भीतर-बाहर पिया की पुकार उठने लगेगी। नहीं कि तुम इसके लिए आयोजन करोगे। यह बिना किसी आयोजन के, बिना किसी विधि-उपाय के अनायास अपने से हो जाता है। और जब भजन अपने से पैदा होता है तो उसका सौंदर्य अपरिसीम, उसकी महिमा अपूर्व। वह फिर इस लोक का नहीं होता। फिर तुम्हारे भीतर गंधर्व उसे गाते हैं। फिर तुम्हारे भीतर आकाश उसे गुनगुनाता है।
लेकिन तुम्हारे व्यक्तित्व के ढांचे पर निर्भर होगा। मीरां ने गाया, चैतन्य ने गाया, कबीर ने गाया। लेकिन ऐसे भी लोग हुए जो साक्षी में गए तो

चुप हो गए, बिल्कुल चुप हो गए, शब्द भी न टूटा, शब्द भी न फूटा, सन्नाटा ही हो गया! वह भी एक अभिव्यक्ति है--वह ध्यान की। वह बड़ी भिन्न है। उसे समझने के लिए ध्यानी चित्त चाहिए। उसे समझने के लिए शून्य की भाषा को पकड़ पाने की सामर्थ्य चाहिए।
भजन शब्द में प्रकट हो जाता है; ध्यान शून्य में प्रकट होता है। भजन बोलता है, सुन सकते हो। ध्यान बोलता नहीं, सिर्फ होता है; गुन सकते हो। लेकिन ध्यान रहे, कुछ भी अपने ऊपर ओढ़ना मत। ध्यान बने तो ध्यान, भजन बने तो भजन। चेष्टा मत करना। चेष्टा से सब कृत्रिम हो जाता है। परमात्मा जो तुमसे करवाना चाहे करने देना। तुम्हें गुलाब बनाए तो गुलाब बन जाना, कमल बनाए तो कमल बन जाना, गेंदा बनाए तो गेंदा, चंपा बनाए तो चंपा, घास का फूल बनाए तो घास का फूल। परमात्मा के हाथ में अपने को छोड़ देना। तुम अपने को बीच में लाना ही मत। तुम कह देना उससेः जो तेरी मर्जी! और अगर तुम यह कह सको जो तेरी मर्जी, तो परमात्मा औघड़दानी है।
रूठे तन की निजता ले ली, माने मन का प्यार दे दिया
रुष्ट हुए तो सांस मांग ली, रीझे तो संसार दे दिया
ऐसे कृपण कि बिना प्यार के
एक उम्र कट गई अबोली
वह औघड़दानी याचक की
छोटी पड़ जाती है झोली
बिगड़े तो हर बूंद बटोरी, विहंसे पारावार दे दिया लेने लगे इकाई ले ली, देने लगे हजार दे दिया परिचय का विस्तार जहां तक
तुमको उससे आगे माना
जितना ज्यादा जाना तुमको
मैंने उतना कम पहचाना
मौन हुए करुणा भी छीनी, बोले तोशृंगार दे दिया
रोए तो सावन भी सोखे, गाए तो मल्हार दे दिया
औसत कोई बिंदु न तुममें
जो भी हो तुम सिर्फ शिखर हो
शीतल हो तो चंद्र सरीखे
तपे अगर तो सूर्य प्रखर हो
सोए तो स्मृतियां समेट लीं, जागे जीवन-ज्वार दे दिया
हठ कर लिया कनेर न छोड़ा, दिया अगर कचनार दे दिया
सिर्फ छोड़ दो उस पर, बिल्कुल छोड़ दो उस पर! जो उसकी मर्जी! जो राम की मर्जी! और तुम चकित होओगेः भर जाएगी तुम्हारी झोली बहुत! और भर जाएगी वैसी जैसी भरनी चाहिए। किसी की शून्य से, किसी की संगीत से। किसी की शब्द से, किसी की निःशब्द से। किसी के भीतर भजनों का अंबार और किसी के भीतर ऐसा सन्नाटा कि जिसका ओर-छोर न मिले।
रूठे तन की निजता ले ली, माने मन का प्यार दे दिया
रुष्ट हुए तो सांस मांग ली, रीझे तो संसार दे दिया
बिगड़े तो हर बूंद बटोरी, विहंसे पारावार दे दिया
लेने लगे इकाई ले ली, देने लगे हजार दे दिया
मौन हुए करुणा भी छीनी, बोले तो श्रृंगार दे दिया
रोए तो सावन भी सोखे, गाए तो मल्हार दे दिया
सोए तो स्मृतियां समेट लीं, जागे तो जीवन-ज्वार दे दिया। हठ कर लिया कनेर न छोड़ा, दिया अगर कचनार दे दिया।

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
तीसरा प्रवचन

सतनमा तें लागि अंखियां

साईं, तेरे कारन नैना भए बैरागी।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न मांगी।।
निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी।
फेरत हौं माला मनौं, अंसुवनि झरि लागी।।
पलक तजि इत उक्ति तें, मन माया त्यागी।
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी।।
मदमाते रातें मनौं दाधें विरह-आगी।
मिलु प्रभु दूलनदास के, करू परमसुभागी।।

धन मोरि आज सुहागिन-घड़िया।
आज मोरे आंगन संत चलि आए, कौन करों मिहमानिया।
निहुरी-निहुरि मैं अंगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया।।
भाव कै भात, प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया।।

सतनाम तें लागी अंखियां, मन परिगै जिकिर-जंजीर हो।
सखि, नैन बरजे ना रहैं, अब ठिरे जात वोहि तीर हो।
नाम सनेही बावरे, दृग भरि भरि आवत नीर हो।।
रस-मतवाले, रस-मसे, यहि लागी लगन गंभीर हो।
सखि, इस्क पिया के आसिकां, तजि दुनिया दौलत भीर हो।।
सखि, गोपीचंदा, भरथरी, सुलताना भयो फकीर हो।
सखि, दूलन का से कहै, यह अटपटी प्रेम की पीर हो।।

जाल-समेटा करने में भी
समय लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
सिमट गईं किरणें सूरज की,
सिमटीं पंखुरियां पंकज की,
दिवस चला छिति से मुंह मोड़। तिमिर उतरता है अंबर से,
एक पुकार उठी है घर से,
खींच रहा कोई बे-डोर।
जो दुनिया जगती, वह सोती,
उस दिन की संध्या भी होती, जिस दिन का होता है भोर।
नींद अचानक भी आती है,
सुध-बुध सब हर ले जाती है, गठरी में लगता है चोर।
अभी क्षितिज पर कुछ-कुछ लाली,
जब तक रात न घिरती काली,
उठ अपना सामान बटोर।
जाल-समेटा करने में भी,
वक्त लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
जीवन जिसे हम कहते हैं, व्यर्थ की मछलियों को पकड़ने में ही गंवा दिया जाता है। जाल तो हम फेंकते हैं जरूर, पर हाथ क्या लगता है? जीवन भर की लंबी दौड़ के बाद हम उतने ही भटके हुए होते हैं जितने जन्म के समय थे। मृत्यु हमें इंच भर भी आगे नहीं पाती। मृत्यु हमें वहीं पाती है जहां हम जन्मे थे। ऐसे जीवन एक सपने जैसा बीत जाता है।

सपने की परिभाषा समझ लेना--जो हाथ में मालूम पड़े और वस्तुतः हाथ में न हो, वही सपना है। जो आज तो लगे कि मेरा है और कल मेरा न रह जाए, वही सपना है।
जो आज तो लगे कि भरता है हृदय को और कल सब रिक्त छोड़ जाए, वही सपना है। जाल-समेटा करने में भी
समय लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
समस्त बुद्धपुरुषों ने एक ही पुकार दी है, सतत एक ही पुकार दी है कि जितने जल्दी हो सके इस बात को समझ लो कि जीवन एक अवसर है। इस अवसर में कूड़ा- करकट भी इकट्ठा कर सकते हो, परमात्मा की संपदा भी पा सकते हो। जीवन एक जाल है, अगर मछली फांसनी ही हो तो समाधि की फांसना; उससे कम पर राजी मत होना। उससे जो कम पर राजी हुआ है, नासमझ है। जिसे यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि जो भी मैं कर रहा हूं, करता रहा हूं, व्यर्थ की आपाधापी है--उसके जीवन में संन्यास की किरण उतरती है।
जाल-समेटा करने में भी
समय लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
सिमट गईं किरणें सूरज की,
सिमटीं पंखुरियां पंकज की,
दिवस चला छिति से मुंह मोड़।
और सुबह हो गई तो सांझ होने में ज्यादा देर नहीं है। सुबह हो गई तो सांझ हो गई। जन्म हुआ तो मौत हो गई। मिलन हुआ तो विछोह की तैयारी हो गई। जो भी बनता है यहां, मिट जाता है।
सिमट गईं किरणें सूरज की,
सिमटीं पंखुरियां पंकज की,
दिवस चला छिति से मुंह मोड़।
जरा जागो! समय बीता चला। कमल की पंखुरियां बंद होने लगीं। सूरज पश्चिम में उतर आया; अब डूबा, तब डूबा। फिर गहन अंधेरी रात है। फिर गर्भ की गहन अंधेरी रात है। और फिर यही जन्म शुरू होगा और फिर यही दौड़। और बहुत बार यह दौड़ हो चुकी। अगर अब भी नहीं जागते तो कब जागोगे? ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है।
तिमिर उतरता है अंबर से,
एक पुकार उठी है घर से,
खींच रहा कोई बे-डोर।
जरा गौर तो करो कि तुम्हारा घर कहां है! यहां तुम घर बना रहे हो धर्मशालाओं में? ठहरे हो सरायों में, सुबह होते ही चल पड़ना पड़ेगा। मगर मान लेते हो रात भर को कि अपना घर है। दीवालें सजाते हो, बंदनवार बांधते हो, भुलाते हो अपने को। सपने को सच मान लेने की सारी चेष्टा चल रही है।
इस दुनिया में दो ही तरह के लोग है: एक वे जो सपने को सत्य मानने की चेष्टा में सारा जीवन लगा रहे हैं और एक वे जो सपने को सपने की तरह जानने की चेष्टा में संलग्न हैं। जिसने सपने को सपने की तरह जाना उसे घर की याद आने लगती है--असली घर की याद आने लगती है। जिसने सराय को सराय की तरह पहचाना वह जानता है कि पड़ाव है ठीक, मंजिल नहीं है। सुबह हुई, चल पड़ना होगा। घर की अभी तलाश करनी है।
तिमिर उतरता है अंबर से,
एक पुकार उठी है घर से,
खींच रहा कोई बे-डोर।
और बाहर की व्यर्थता दिखाई पड़ जाए तो भीतर की खींच शुरू होती है। भीतर
का आकर्षण जगता है। कोई बेबस, बिना डोर के भीतर खींचने लगता है। उस भीतर खिंचने का नाम ही संन्यास है। बाहर जीने का नाम संसार, भीतर खिंचने का नाम संन्यास। बाहर जीने का नाम स्वप्न, भीतर पहुंच जाने का नाम सत्य। स्वप्न और सत्य के बीच जो यात्रा है उसी का नाम संन्यास है।
जो दुनिया जगती, वह सोती,
उस दिन की संध्या भी होती,

जिस दिन का होता है भोर।
याद करो, याद करो, याद करो! बार-बार याद करो।
जो दुनिया जगती, वह सोती,
उस दिन की संध्या भी होती,
जिस दिन का होता है भोर।
नींद अचानक भी आती है,
सुध-बुध सब हर ले जाती है,
गठरी में लगता है चोर।
गठरी में चोर लगा ही हुआ है। लाख बचाओ, बचा न सकोगे। तुम्हारी गठरी छिनेगी ही। तुमने भी किसी और से छीनी थी, कोई और इसे छीन लेगा। यहां छीना- झपटी ही चल रही है। तुम कुछ लेकर नहीं आए, फिर गठरी के मालिक होकर बैठ गए हो। फिर तुम जाओगे और कोई और गठरी का मालिक होकर बैठ जाएगा। और इस गठरी पर सब गंवा दोगे, जिस गठरी में से एक कौड़ी भी साथ न जा सकेगी?
गठरी में समय का चोर लगा ही हुआ है। तुम लुटे ही जा रहे हो। तुम प्रतिपल लुटे जा रहे हो। जो जरा गौर से देखता है कि किस भांति लूटा जा रहा है उसकी जिंदगी में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है।
अभी क्षितिज पर कुछ-कुछ लाली,
जब तक रात न घिरती काली,
उठ अपना सामान बटोर।
जो थोड़े-बहुत दिन बचे हों... और थोड़े-बहुत दिन ही हैं। एक मित्र ने कल प्रश्न पूछा था कि आप कहते हैं कल का भरोसा नहीं और ज्योतिषशास्त्री तो मुझसे कहते हैं कि सत्तर साल जीऊंगा, तो मैं किसकी मानूं?
सत्तर साल भी जीओ तो भी क्या फर्क पड़ता है! सात दिन जिए कि सत्तर साल जीए! सात क्षण जिए कि सत्तर साल जिए, क्या फर्क पड़ता है! करोगे क्या? सात दिन में भी कचरा इकट्ठा करोगे, सत्तर साल में थोड़ा ज्यादा इकट्ठा करोगे। पूछते होः "ज्योतिषियों की मानें कि आपकी?"
मन तो तुम्हारा ज्योतिषियों की मानना चाहता है। मन ही तो ज्योतिषियों
के पास ले जाता है। मन सांत्वना चाहता है कि अभी मौत बहुत दूर है, बहुत दूर है। अभी तो जी लें। अभी तो थोड़ा रंग, अभी तो थोड़ा रस, अभी तो थोड़ा नाच लें। अभी तो थोड़े मस्त हो लें। अभी तो थोड़ा भोग लें। अभी तो जिंदगी बहुत दूर है। ज्योतिषी ने आश्वासन दे दिया कि अभी सत्तर साल जीना है, घबड़ाओ मत। मगर सत्तर साल ऐसे बीत जाएंगे जैसे पानी पर खींची लकीर मिट जाए। कितने-कितने लोग इस पृथ्वी पर रहे हैं! सत्तर साल भी जिए हैं, अस्सी साल भी जिए हैं, सौ साल भी जिए हैं, फिर उनका कोई नाम-निशान नहीं रह गया। और इस अनंत के विस्तार में सत्तर साल की क्या कीमत है? इस अंतहीन समय में सत्तर साल एक छोटा सा कण भी तो नहीं है।
और जब मैं कहता हूं कल का कोई भरोसा नहीं है तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं यह नहीं कि कल तुम मर जाओगे यह निश्चित है, मैं तुमसे यही कह रहा हूं कि कल का भरोसा करके आज की जिंदगी को टालना मत। कल जीओ तो ठीक, न जीओ तो ठीक, मगर काम ऐसा पूरा कर लेना आज कि कल अगर न भी जीओ तो पछतावा न हो।
हिरोशिमा में बम गिरा, एक लाख लोग मर गए। क्या तुम सोचते हो इन सबकी ज्योतिष के हिसाब से उम्र एक ही बराबर थी? हवाई जहाज गिरता है उसमें सात सौ लोग मर जाते हैं, क्या तुम सोचते हो इन सबकी हाथ की रेखाएं बराबर हैं, एक जैसी हैं? इन सबकी हाथ की रेखाएं भिन्न-भिन्न हैं, इनकी जन्म कुंडलियां भिन्न-भिन्न हैं। और अगर इन सात सौ लोगों ने तुम्हारे ज्योतिषियों से पूछा होता तो उन सबने यह नहीं कहा होता कि बस, तुम सबका अंत आ गया। ज्योतिषी तो तुम्हें सांत्वना देकर जीता है इसलिए ज्योतिषी तुमसे ऐसी बातें कहता है कि जिनको तुम मानना ही चाहते हो। हां, एकाध-दो ऐसी बातें भी कहता है जिन्हें तुम न मानना चाहो ताकि तुम्हें भरोसा रहे कि सिर्फ तुम्हारी खुशामद नहीं कर रहा है, ज्योतिष असली है। मगर ज्योतिषी बातें क्या करता है? भुलावे की बातें!
ज्योतिषियों की मत सुनो, बुद्धों की सुनो। बुद्ध कुछ और ही कहते हैं। बुद्ध कहते हैं तुम जिस दिन जन्मे उसी दिन मरना शुरू हो गया। अब देर-अबेर

की बात है। आज हुई सांझ कि कल हुई, क्या फर्क पड़ता है? सांझ होने वाली है।
आकाश पर लाली घिरने लगी।
अभी क्षितिज पर कुछ-कुछ लाली,
जब तक रात न घिरती काली,
उठ अपना सामान बटोर।
अभी जरा रोशनी है, आंखें जरा देखती हैं, हाथों में थोड़ा बल है, पैर थोड़े चल सकते हैं, उठ, अपना सामान बटोर। थोड़ी तैयारी कर लो उस अनंत यात्रा की। उस अनंत पथ के लिए थोड़ा पाथेय जुटा लो।
जाल-समेटा करने में भी,
वक्त लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
थोड़ा समय तो लगेगा। ध्यान करोगे, प्रार्थना करोगे, अर्चना-पूजा करोगे, थोड़ा समय तो लगेगा।
वक्त लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
मगर तुमने खूब पसारा किया है। मैं बहुत वर्षों तक जबलपुर में रहा। एक दुकान पर लगा हुआ बोर्ड मुझे हमेशा आकर्षित करता था। फिर एक दिन कोई दुकान पर था नहीं तो मैं भीतर गया। दुकान पर बोर्ड लगा थाः "बड़े पसारी।" दुकान का नाम है "बड़े पसारी।" कोई भी नहीं था, बूढ़ा बैठा था दुकानदार। बंद होने का समय था, सांझ थी। मैं भीतर गया और मैंने कहा कि पसारा बंद कब करोगे? वह बूढ़ा कुछ चौंका। उसने कहाः मतलब? मैंने कहाः तुम बड़े पसारी हो, छोटे-छोटे पसारी डूबे जा रहे हैं, तुम्हारी हालत बड़ी बुरी होगी। उसने कहा, मैं समझा नहीं, आप क्या बातें कर रहे हैं? क्या खरीदना है आपको? कहाः मैं कुछ खरीदने नहीं आया हूं। मैं तुम्हें यह कहने आया हूं कि पसारा बहुत हो गया, अब सम्हालो, सांझ आ गई। उस आदमी ने जरूर यह समझा होगा कि मैं पागल हूं। उस दिन से जब भी मैं वहां से निकलता था, वह गौर से देखता था और लोगों को दिखाता था कि यह आदमी जा रहा है।
तुम सभी बड़े पसारी हो। छोटा पसारी तो यहां कोई है ही नहीं। सभी ने बड़े जाल फेंके हैं। और पकड़ोगे क्या? मछलियां! दुर्गंध से भरी मछलियां।
एक सुबह एक मछुए ने जाल फेंका और जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा और उस मछुए ने लौट कर देखा और जीसस की वे प्यारी आंखें! और जीसस की आंखों से झरता वह अमृत! और वह मछुआ दीवाना हो गया, मदमस्त हो गया। और जीसस ने कहा, कब तक मछलियां पकड़ता रहेगा? फेंक जाल, मेरे साथ आ। मैं तुझे ऐसा जाल दूंगा कि परमात्मा भी पकड़ में आ जाए। क्या मछलियां पकड़ता है!
जाल-समेटा करने में भी,
वक्त लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
और वह मांझी वहीं जाल छोड़ कर जीसस के पीछे हो लिया। ऐसी हिम्मत जिनकी होती है वे ही लोग सत्य को पा सकते हैं।
आज के सूत्र बड़े प्यारे हैं; बड़े रसभरे, बड़े प्रेम से मदमाते! जब घर की याद आती है किसी को और जब घर की धुन बजने लगती है तो ऐसा ही रस बरसता है, ऐसी ही बरखा होती है।
साईं तेरे कारन नैना भए बैरागी।
जिसको इस संसार में व्यर्थता दिखाई पड़ी तत्क्षण उसकी आंखों में साईं दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। या तो आंखें बाहर देखती हैं या आंखें भीतर देखती हैं। जब तक बाहर देखती हैं, भीतर अंधेरा होता है। जैसे ही भीतर मुड़ती हैं, बाहर का जगत विलीन हो जाता है। साईं दिखाई पड़ता है, मालिक दिखाई पड़ता है, मालिकों का मालिक!
तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारी निजता, तुम्हारे भीतर का जला हुआ दीया!
साईं तेरे कारन नैना भए बैरागी।
और एक बार उसकी झलक मिल जाए तो आंखें उसके विराग से भर जाती हैं, उसके प्रेम से भर जाती हैं, उसके विरह से भर जाती हैं। फिर खिंचाव शुरू होता है। फिर एक अंतर-दौड़ शुरू होती है कि और, और! और डूबें, और डूबें। जब तक बिल्कुल

न डूब जाएं तब तक फिर चैन नहीं मिलता। एक आग की लपट जलती है मगर लपट बड़ी प्यारी, और आग बड़ी शीतल!
मैं हूं केवल याद तुम्हारी
बुझे दीप के धुएं सरीखी ऊपर उठती याद तुम्हारी
मिले न ऐसी मौत किसी को, कहीं न ऐसा छाए गम
बूंद-बूंद मर गई स्नेह की, टूटा किरण-किरण का दम
बची धुंएली ऐंठन तम की, राख मिलन की है केवल
डूब गए सब मन के जुगनू, है जीवन-व्यापी काजल
बीच नदी में समा गयी सुख की डोली दुर्दिन की मारी मैं हूं केवल याद तुम्हारी
बीत रही है जीवन-रजनी, खड़ा मरण-सूरज सिरहाने
एक-एक करके सब मेरे सपने भी हो गए बिराने
यह भी मुमकिन है मिट जाए तुम्हारी याद, न मैं मिट पाऊं प्रतिपल क्षीण हो रहीं बीते दिवसों की रेखाएं सारी मैं हूं केवल याद तुम्हारी
बड़ी विषैली प्यास मुझे है, लगता तुमको कभी न ध्याऊं सुधि के कोहरे की फैली इन सब चट्टानों को पी जाऊं घन-व्यापी, सागर-गर्जित जीवन का सूनापन पी डालूं,
पिऊं सृष्टि के सभी स्वरों को, सारा शुष्क पवन पी डालूं अंतर के नैकट्य देवता! मैं हूं अपनी ही लाचारी।
मैं हूं केवल याद तुम्हारी
आंख जरा भीतर मुड़े कि यह बात पल-प्रतिपल झनझनाने लगती है
मैं हूं केवल याद तुम्हारी
अंतर के नैकट्य देवता! मैं हूं अपनी ही लाचारी
मैं हूं केवल याद तुम्हारी
आंखें उस प्यारे को एक बार देख लें--जरा-सी झलक! जैसे बिजली कौंध जाए अंधेरे में ऐसी; कि हवा का एक झोंका आ जाए और ताजगी से भर जाए; कि फूलों की गंध तैरती आए और तुम्हारे नासापुटों को आनंदित कर दे। बस जरा सी एक झलक, कि क्रांति की घड़ी आ गई। कि अब तुम बाहर के रस में कभी भी न उलझ सकोगे। अब बाहर सब विरस हो जाएगा। अब बाहर सब व्यर्थ हो जाएगा, असार हो जाएगा।
साईं तेरे कारन नैना भए बैरागी
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न मांगी
फिर कुछ नहीं मांगता भक्त। फिर कुछ नहीं मांगता प्रेमी। तेरा सत दरसन चहौं--बस एक तेरा दर्शन हो जाए। कछु और न मांगी।
जब तक तुम कुछ और मांगते हो, जानना कि तुम्हारे जीवन का अभी धर्म से संस्पर्श नहीं हुआ। गए मंदिर में और कुछ मांगने लगे--धन, पद, प्रतिष्ठा, तो तुमने परमात्मा का बहुत अपमान किया। परमात्मा के सामने और धन मांगा, तो अर्थ समझे? अर्थ हुआ कि धन परमात्मा से बड़ा है। परमात्मा को साधन बना रहे हो, धन मांगने में? पद मांगा, प्रतिष्ठा मांगी, बेटा मांगा, बेटी मांगी, नौकरी मांगी, यश मांगा, तुमने परमात्मा का बड़ा अपमान किया।
तुम्हारी प्रार्थनाएं परमात्मा के अपमान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। इसलिए तुम्हारी प्रार्थनाएं न तो सुनी जातीं, न कभी पूरी होतीं। तुम्हारी प्रार्थनाओं में पंख ही नहीं हैं। तुम्हारी प्रार्थनाएं यहीं तड़फड़ा कर जमीन पर गिरती हैं, कीड़े-मकोड़ों की तरह मर जाती हैं। आकाश में उड़ने की उनकी क्षमता नहीं है। आकाश में तो वे प्रार्थनाएं उड़ती हैं जिनमें सिर्फ एक ही मांग होती है, बस एक ही मांग होती है: परमात्मा की, और कुछ भी नहीं--न पद, न धन, न प्रतिष्ठा। सब खो जाए--पद भी, धन भी, प्रतिष्ठा भी, और एक परमात्मा से मिलन हो जाए। जिस दिन कोई सिर्फ परमात्मा को मांगता है, निपट परमात्मा को मांगता है, उसी क्षण प्रार्थना पूरी हो जाती है। और जिसने परमात्मा को पा लिया उसे सब अपने-आप मिल जाता है।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है: सीक यी फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड, एण्ड आल एल्स शैल बी एडिड अनटु यू। पहले तुम प्रभु के राज्य को खोज लो और फिर शेष सब अपने से मिल जाएगा। मगर ख्याल रखना, मन की चालबाजी से सावधान रहना।

कहीं इसलिए परमात्मा को मत मांगना ताकि शेष सब मिल जाए; नहीं तो चूक गए। अगर शेष सब मिल जाए इसलिए परमात्मा को मांगा तो परमात्मा को फिर भी नहीं मांगा। फिर भी मन धोखा दे गया। फिर तुम आत्मवंचना में पड़ गए।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न मांगी
निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी
जब तुम्हारी श्वास-श्वास में, धड़कन-धड़कन में, रोएं-रोएं में एक ही रोमांच होता है, एक ही भाव सतत झरता है, तुम्हारे उठने-बैठने में बस एक ही हूक उठती है कि परमात्मा से कैसे मिलन हो! नहीं कि शब्द ऐसे बनते हैं, नहीं कि तुम बार-बार कहते हो कि परमात्मा से कैसे मिलन हो! कहने की जरूरत नहीं होती। जहां भाव है वहां शब्द व्यर्थ हैं, भाव काफी है। तुम भाव से भरे होते हो, लबालब होते हो। भाव बहता है। भाव तुम्हारे पोर-पोर में समाया होता है, रोएं-रोएं में झलकता होता है। तुम्हारी आंखों में उसकी लहरें होती हैं, तुम्हारे हाथों में उसकी तरंग होती है, तुम्हारी वाणी में, तुम्हारे मौन में, सबमें उसकी झलक होती है, उसका रंग होता है।
निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी
और ऐसे राम-राम जपने से कुछ भी नहीं होता, कि घड़ी भर बैठ गए, माला हाथ में ले ली, राम-राम जप लिया। जब तक प्रभु-स्मरण, उसकी सुरति सोते-जागते तुम्हारा अंतर्भाव न बन जाए, अंतर्धारा न बन जाए तब तक कुछ भी न होगा। इससे कम से कुछ भी न होगा।
मौलसिरी फूली, पर आंगन के पार
गंधभर मिलेगी पर
मिलेंगे न फूल
रीता रह जाएगा
कुंआरा दुकूल
उमड़े हैं आंसू, पर अंजन के पार निर्वसना इच्छाएं
मोह का कदंब
चिटख गया आईना
बिखर गए बिंब
एक रूप उभरा, पर दर्शन के पार
भांवरें न गठबंधन
पढ़े नहीं श्लोक
संबंधों का फिर भी
खिल गया अशोक
प्राण हुए बंदी, पर बंधन के पार
एक ऐसी भांवर भी पड़ती है कि भांवर पड़ती ही नहीं और भांवर पड़ जाती है।
एक ऐसा भी प्रीति का बंधन है जिसे बंधन नहीं कहा जा सकता, जो मुक्ति है। भांवरें न गठबंधन
पढ़े नहीं श्लोक
संबंधों का फिर भी
खिल गया अशोक
प्राण हुए बंदी पर बंधन के पार
एक श्लोक भी नहीं दोहराना पड़ता। न गीता न कुरान न वेद न उपनिषद न धम्मपद, एक श्लोक भी नहीं दोहराना पड़ता। प्रेमी के भीतर तो सतत धुन बजती है, इकतारा बजता है। सोते में भी बजता है। जागते में भी बजता है। उसे तो एक ही याद रमी रहती है।
भांवरें न गठबंधन
पढ़े नहीं श्लोक
संबंधों का फिर भी
खिल गया अशोक
प्राण हुए बंदी पर बंधन के पार
यह प्रभु के प्रेम का बंधन ऐसा है कि इससे बड़ी कोई मुक्ति नहीं है। यह बांधता नहीं, मुक्त करता है। प्रेम वही सत्य है जो बांधता नहीं, मुक्त

करता है। प्रेम वही प्रेम है जिसमें छिपी आती है मुक्ति, अनंत मुक्ति। प्रेम जो मोक्ष न बन जाए, जानना कुछ और है, प्रेम नहीं। जिसे हम प्रेम जानते हैं वह तो बुरी तरह बांध लेता है, जकड़ लेता है। जंजीरें ही जंजीरें फैल जाती हैं। हाथ-पैर सब बंध जाते हैं।
इस प्रेम के कारण तुम यह मत समझ लेना कि प्रेम गलत है--जैसा कि बहुत लोगों ने समझ लिया है। सदियों-सदियों से तुम्हारे तथाकथित साधु-संत यही समझा रहे हैं कि प्रेम पाप है, प्रेम मोह है, प्रेम बंधन है। उन्होंने असली प्रेम नहीं जाना। उन्होंने प्रेम के नाम से कुछ और जाना। उन्होंने परमात्मा का प्रेम नहीं जाना, नहीं तो वे ऐसी बातें न कह पाते। ऐसी बातें कैसे कह पाते? प्रेम और बंधन? प्रेम और आसक्ति? प्रेम में तो आसक्ति की छाया भी नहीं पड़ती। प्रेम के प्रकाश में बंधन के अंधकार के आने का उपाय नहीं है। जहां प्रेम है वहां परम मुक्ति है।
प्रेम मुक्ति देता है लेकिन तब प्रेम की कला सीखनी होगी; तब प्रेम को ऊंचाइयों पर ले चलना होगा; तब प्रेम को जमीन की क्षुद्रताओं से मुक्त करना होगा; तब प्रेम को पंख देने होंगे, आकाश देना होगा; तब प्रेम को प्रार्थना बनाना होगा। जब प्रेम प्रार्थना बनता है तब मुक्तिदायी है। और अगर प्रेम प्रार्थना न बने तो प्रेम वासना बनता है; और तब प्रेम बहुत बंधनकारी है। प्रेम की दो संभावनाएं हैं: गिरे तो वासना, उठे तो प्रार्थना, गिरे तो नरक, उठे तो स्वर्ग; गिरे तो जहर और उठे तो अमृत। जिन साधु-संतों ने प्रेम को गालियां दी हैं उन्होंने सिर्फ प्रेम के गिरे हुए रूप को जाना है। और ध्यान रखना, गिरे हुए रूप को देख कर निर्णय नहीं लेने चाहिए। कीचड़ को देख कर कमल के संबंध में निर्णय मत लेना। हां, अगर चाहो निर्णय लेना तो कमल को देख कर कीचड़ के संबंध में निर्णय लेना। वही मेरी प्रक्रिया है, वही मेरे देखने का ढंग, मेरी दृष्टि, मेरा दर्शन।
मैं कमल की निंदा नहीं करता क्योंकि कमल कीचड़ से पैदा होता है। मैं कीचड़ की प्रशंसा करता हूं क्योंकि कमल कीचड़ से पैदा होता है। श्रेष्ठ से निकृष्ट को समझने की कोशिश करना तो तुम्हारे जीवन में बड़ी सुगमता हो जाएगी। निकृष्ट से श्रेष्ठ को समझने की कोशिश मत करना अन्यथा तुम्हारे जीवन का सारा अर्थ खो जाएगा, तुम्हारे जीवन में सारा काव्य नष्ट हो जाएगा, तुम्हारे जीवन में फिर गणित ही गणित रह जाएगा, तुम्हारे जीवन में फिर कोई संगीत नहीं बज सकता। वीणा और वीणा के तारों से वीणा में उठे संगीत को मत समझाने की कोशिश करना। हां, वीणा में उठे संगीत से वीणा को समझाने की कोशिश करो तो ठीक।
मैं इस संसार की निंदा नहीं करता क्योंकि इसी संसार में परमात्मा जाना गया है। इसी संसार में बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, कैसे निंदा करें इस संसार की? इसी संसार में दूलनदास ने उस परम प्यारे को जाना कैसे निंदा को इस संसार की? इसी संसार में मोक्ष को अनुभव करने वाले लोग हुए। इसी अंधकार में सूर्यों के सूर्य लोगों के भीतर उगे, कैसे निंदा करें इस संसार की? यह संसार अवसर है; मगर ये दो संभावनाएं हैं।
अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो तो वह कहता है, चेतना कुछ भी नहीं है, बस मिट्टी की एक उप-उत्पत्ति, बाई-प्रॉडक्ट। और अगर तुम रहस्यवादी से पूछो तो वह कहेगा मिट्टी कुछ भी नहीं है, बस चेतना का एक प्रच्छन्न रूप। और दोनों में बड़ा फर्क हो गया। बड़ा फर्क हो गया! वही शब्द दोनों ने उपयोग किए, जरा इधर-उधर रखे, मगर बड़ा फर्क हो गया।
ऐसा हुआ कि एक यहूदी आश्रम में दो युवक बगीचे में घूमते थे। दोनों को
ही धूम्रपान की आदत थी। आश्रम के भीतर तो धूम्रपान करना संभव नहीं था लेकिन बगीचे में सुबह और सांझ एक-एक घंटा घूमने के लिए मिलता था। वह भी घूमने को नहीं मिलता था, वह भी घूम कर ध्यान करने को मिलता था। वही एक उपाय था जिस समय गुरु नजर की ओट होते थे और कोई देखने वाला भी नहीं होता था। उन दोनों ने सोचा कि हम धूम्रपान यहीं कर लिया करें लेकिन उचित यह होगा कि गुरु से पूछ लें।
दूसरे दिन जब वे दोनों मिले तो एक ने कहा कि मैंने गुरु से पूछा लेकिन
वे बहुत नाराज हो गए। इतने नाराज हो गए कि मुझे लगा कि कहीं मुझे मारेंगे-

ठोकेंगे तो नहीं! उन्होंने डंडा उठा लिया और कहा कि बदतमीज, कमबख्त! तुझे ऐसी बात पूछते शर्म नहीं आती? दूसरे ने कहाः लेकिन यह बड़ी हैरानी की बात है क्योंकि मुझे तो उन्होंने सिगरेट पीने की आज्ञा दे दी। दूसरे ने पूछाः मैं यह जानना चाहता हूं तूने गुरु से पूछा कैसे था? तेरे शब्द क्या थे? उसने कहा कि सीधी-सीधी बात थी। मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं ध्यान करते समय सिगरेट पी सकता हूं? उन्होंने एकदम डंडा उठा लिया। उन्होंने कहाः ध्यान करते समय और सिगरेट पीने की बात? बदतमीज, कमबख्त, तुझे अक्ल भी है? ध्यान और सिगरेट! दूसरा युवक हंसने लगा। उसने कहाः बात साफ हो गई। मैंने उनसे पूछा था कि क्या मैं सिगरेट पीते हुए ध्यान कर सकता हूं? उन्होंने कहाः जरूर!
सिगरेट पीते हुए ध्यान करने की कोई पूछे तो कैसे मना करोगे? चलो इतना
ही क्या कम है! सिगरेट तो पी ही रहा है, ध्यान कर रहा है। और ध्यान करता रहा तो शायद एक दिन सिगरेट भी छूट जाए। लेकिन जो पूछे कि क्या मैं ध्यान करते समय सिगरेट पी सकता हूं, तो बात उलटी हो गई।

तुम्हारे साधु-संतों ने जीवन को बड़ा उल्टा देखा है। शायद शीर्षासन करने की आदत के कारण ऐसा हुआ हो! सिर के बल खड़े होकर देखोगे, संसार उल्टा दिखायी पड़ेगा।
कृष्णचंद्र की प्रसिद्ध कहानी है कि जब पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे तो एक गधा उनसे मिलने गया। गधा कोई साधारण गधा नहीं था, पढ़ा-लिखा गधा था। पहरेदार द्वार पर खड़ा था लेकिन झपकी खा रहा था, जैसे कि पहरेदार झपकी खाते हैं। और कोई आदमी होता तो शायद वह रोकता भी, अब गधा भीतर जा रहा था तो उसने कहा जाने भी दो। गधे से क्या बनने-बिगड़ने वाला है! कोई गधा बम तो नहीं ले जाएगा, कोई छुरी-बंदूक तो नहीं ले जाएगा। कोई कम्युनिस्ट तो हो नहीं सकता गधा। कोई शडयंत्रकारी तो है नहीं, जाने भी दो! गधा भीतर पहुंच गया। सुबह-सुबह का वक्त! जवाहरलाल नेहरू, जैसा कि शीर्षासन करने की उनकी आदत थी, बगीचे में शीर्षासन कर रहे हैं। गधा जाकर पास खड़ा हो गया। उन्होंने देखा गधे को कि गधा उलटा खड़ा है। उन्होंने कहाः भाई गधे! गधे मैंने बहुत देखे, मगर तू उलटा क्यों खड़ा है? गधा खिलखिला कर हंसने लगा, उसने कहाः क्षमा करें पंडित जी, मैं उलटा नहीं खड़ा हूं, आप शीर्षासन कर रहे हैं। गधे को बोलता देख कर तो जवाहरलाल नेहरू उचक कर खड़े हो गए। गधे ने कहा, क्षमा करिए, नाराज मत हो जाइए। मुझमें और कोई विशेषता नहीं है, अखबार पढ़ते-पढ़ते धीरे-धीरे मैं बोलना सीख गया हूं। तब तक जवाहरलाल ने अपने को संभाल लिया था। उन्होंने कहाः कोई फिकिर मत कर, तू चिंता भी मत कर। तू कोई पहला गधा नहीं है जो बोलता है। मेरे पास कई बोलते हुए गधे रोज आते हैं। सच तो यह है कि गधों के सिवाय मुझसे मिलने कोई आता ही नहीं। मगर जवाहरलाल नेहरू का उलटा खड़ा होना एक क्षण को धोखा दे गया कि गधा उल्टा है।
साधु-संन्यासियों ने तुम्हारे जीवन को बड़े उल्टे ढंग से देखा है। जीवन को प्रेम से नहीं देखा, घृणा से देखा है। घृणा शीर्षासन है। जीवन को अहोभाव से नहीं देखा, निंदा से देखा है। निंदा शीर्षासन है। जीवन के फूल नहीं गिने, कांटे गिने हैं और वहीं चूक हो गई। और उस चूक का परिणाम भयंकर हुआ है। सारी पृथ्वी अगर अधार्मिक हो गई है तो नास्तिकों के कारण नहीं, तुम्हारे गलत साधु-संतों के कारण। उनके देखने की गलत प्रक्रिया सारी मनुष्य-जाति को धर्म से वंचित कर गई है।
कीचड़ की निंदा मत करो क्योंकि कीचड़ में कमल छिपे हैं। कमल की प्रशंसा करो और चूंकि कमल कीचड़ से प्रकट होता है इसलिए कीचड़ की भी प्रशंसा करो। और तब तुम्हारे जीवन में एक अहोभाव उठेगा, एक कृतज्ञता उठेगी। और तब तुम पाओगे, हर तरफ परमात्मा की छवि है। तब तुम्हें संत में ही नहीं असंत में भी वही दिखाई पड़ेगा।
निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी
और तब यह संभव होगा कि निसबासर--दिन-रात! उठो-बैठो, आंख खोलो, बंद करो; आंख खोलो तो वही बाहर, आंख खोलो तो वही भीतर। हाथ फैलाओ तो वही छूने में आए,

सुनो तो वही, गुनो तो वही, चखो तो वही, पियो तो वही। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। परमात्मा अस्तित्व का दूसरा नाम है। प्यारा नाम है, प्रेमियों का दिया हुआ नाम है। अस्तित्व तटस्थ नाम है; दार्शनिकों का दिया हुआ। परमात्मा प्रेमियों का दिया हुआ नाम है--साईं, स्वामी, मालिक।
फेरत हौं माला मनौं, अंसुवनि झरि लागी
कहते हैं दूलनदास कि अब तो मन के भीतर माला फिर रही है। बाहर की माला
तो कब की छूट गई। बाहर की माला तो औपचारिक थी, गिर गई। क्रियाकांड था, भटक गई, भूल गई।
फेरत हौं माला मनौं--अब तो भीतर की माला फिर रही है, मन की माला फिर रही है, मन के मनके फिर रहे हैं।
अंसुवनि झरि लागी--और एक ही प्रार्थना जानता हूं अब कि आंसुओं की झरी लगी है। मीरा ने कहा न! अंसुअन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई! यह जो प्रेम की बेलि है यह केवल आंसुओं के सींचने से ही बोई जाती है। कोई और पानी काम न करेगा। प्रेम की बेल तो सिर्फ आंसुओं को ही मानती है, आंसुओं से ही परिपुष्ट होती है।
फेरत हौं माला मनौं, अंसुवनि झरि लागी
पलक तजि इत उक्ति तें, मन माया त्यागी
और कहते हैं एक जादू होते मैंने देखा। पलक के फेरते मन से और माया से छुटकारा हो गया। पलक के फेरते, भीतर देखते! बस पलक का फर्क है संसार में और परमात्मा में। यह आंख खुली तो तुम्हें संसार दिखाई पड़ रहा है। यह आंख बंद हुई कि परमात्मा दिखाई पड़ा। बस, पलक झपी! पलक तजि इत उक्ति तें। एक छोटी सी युक्ति आंख बंद करने की। आंख बंद करके देखने की कला--मन माया त्यागी। और सब छूट गया, जिसे छोड़ने के लिए बहुत-बहुत चेष्टाएं की थीं और न छूटा था; छोड़ना चाह कर न छूटा था, छूट गया।
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी
और अब तो सत्य की तरफ दृष्टि लगी है, अब हटाना भी चाहूं तो दृष्टि हटती नहीं। दरसन अनुरागी! अब तो बस एक प्रेम का झरना बह रहा है, एक अनुराग जन्मा है।
मदमाते रातें मनौं दाधे विरह-आगी
अब तो ऐसी मस्ती छाई है--मदमाते रातें मनौं। नाच रहा हूं मस्ती में।
और मस्ती भी बड़ी अनूठी है। एक तरफ मस्ती का झरना बह रहा है और दूसरी तरफ हृदय में विरह की अग्नि जगी है। जैसे-जैसे मिलन करीब आता है वैसे-वैसे विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। लेकिन याद रखना, यह विरह की अग्नि सिर्फ जलाती नहीं, निखारती भी है। यह तुम्हें कुंदन बनाती है, शुद्ध स्वर्ण बनाती है। यह शत्रु नहीं है, मित्र है।
नहीं--
मैं यह आश्वासन नहीं दे सकूंगा
कि जब इस आग-अंगार
लपटों की ललकार,
उत्तप्त बयार,
क्षार-धूम्र की फूत्कार
को पार कर जाओगे
तो निर्मल, शीतल जल का सरोवर पाओगे, नहीं--
मैं यह आश्वासन नहीं दे सकूंगा कि जब इस आग-अंगार
लपटों की ललकार,
उत्तप्त बयार,
क्षार धूम्र की फूत्कार
को पार कर जाओगे
तो निर्मल, शीतल जल का सरोवर पाओगे, जिसमें पैठ नहाओगे,
रोम-रोम जुड़ाओगे,

अपनी प्यास बुझाओगे।
नहीं--
इस आग-अंगार के पार भी
आग होगी, अंगार होंगे,
और उनके पार फिर आग-अंगार,
फिर आग-अंगार,
फिर आग
फिर और...
तो क्या छोर तक तपना-जलना ही होगा?
नहीं--
इस आग से त्राण तब पाओगे
जब तुम स्वयं आग बन जाओगे!
प्यास मिटती है मगर तब, जब तुम सिर्फ प्यास ही प्यास रह जाते हो। आग फूल बन जाती है लेकिन तब, जब तुम आग ही आग रह जाते हो।
नहीं--
मैं यह आश्वासन नहीं दे सकूंगा
कि जब इस आग-अंगार
लपटों की ललकार,
उत्तप्त बयार,
क्षार-धूम्र की फूत्कार
को पार कर जाओगे
तो निर्मल, शीतल जल का सरोवर पाओगे, जिसमें पैठ नहाओगे,
रोम-रोम जुड़ाओगे,
अपनी प्यास बुझाओगे।
नहीं--
इस आग-अंगार के पार भी
आग होगी, अंगार होंगे,
और उनके पार फिर आग-अंगार,
फिर आग-अंगार,
फिर और...
तो क्या छोर तक तपना-जलना ही होगा?
नहीं--
इस आग से त्राण तब पाओगे
जब तुम स्वयं आग बन जाओगे!
ऐसी घड़ी आती है। ऐसी सौभाग्य की घड़ी आती है। ऐसी सुहाग की घड़ी आती है। मदमाते रातें मनौं, दाधे विरह-आगी
ऐसी जलाती है विरह की अग्नि। मगर एक बड़ा विरोधाभास है। एक तरफ विरह की अग्नि जलाती है और दूसरी तरफ मिलन की झनकार रोज-रोज पास आने लगती है। इधर लपटें बढ़ती हैं, उधर परमात्मा की झलक स्पष्ट होने लगती है। यहां कांटे चुभते हैं वहां फूल खिलने लगते हैं। यह साथ-साथ घटता है। इसलिए जो विरह से बचेगा वह मिलन से बच जाएगा। और जिसे मिलन की अभीप्सा हो उसे विरह की अग्नि में जलना ही होगा। जलना ही होगा, समग्रता से जलना होगा, राख-राख हो जाना होगा। उस महामृत्यु में से ही परम जीवन का आविर्भाव होता है।
मिलु प्रभु दूलनदास के, करू परम सुभागी
दूलनदास कहते हैं आग बढ़ती जाती है। मिलन का मस्त भाव भी बढ़ता जाता है।
अब घड़ी सौभाग्य की करीब आती है ऐसा मालूम होता है। मिलु प्रभु दूलनदास के अब बस मिले, अब मिले! अब दूरी ज्यादा नहीं मालूम होती। घर आ गया, द्वार दिखाई पड़ने लगा। करू परम सुभागी... अब मिल जाओ और मेरे परम सौभाग्य बन जाओ! धन मोरि आज सुहागिन-घड़िया
तुम्हारे द्वार पर आकर आज जाना है कि जीवन की धन्यता क्या है! धन मोरि
आज सुहागिन घड़िया आज मैं सुहाग से भरी। आज मैं परिणीता हुई। आज मेरी भांवर पड़ी। आज मोरे आंगन संत चलि आए और जैसे-जैसे तुम्हारी आग सघन होती है वैसे-

वैसे तुम्हें परमात्मा के पास नहीं जाना पड़ता, परमात्मा ही तुम्हारे पास चला आता है। तुम जलो! तुम बे-शर्त जलो और देखो तुम्हारे आंगन में उतर आएगा। तुम जलोगे तो पात्र हो जाओगे।
धन मोरि आज सुहागिन घड़िया
आज मोरे आंगन संत चलि आए, कौन करौं मिहमनिया
दूलनदास कहते हैं कैसे आतिथ्य करूं? क्या है मेरे पास जो तुम्हें भेंट दूं? क्या तुम्हारे चरणों में चढ़ाऊं? मेरी सामर्थ्य क्या! मेरी योग्यता क्या! मेरी गुणवत्ता क्या! सब दिया तुम्हारा है, इसको तुम्हीं को भेंट किस मुंह से दूं?
यह सत्य ख्याल में लेना। अंतिम घड़ी में भक्त परमात्मा के पास नहीं जाता। भक्त तो अपनी जगह ही बैठा-बैठा राख हो जाता है। परमात्मा ही आता है। सदा परमात्मा ही आया है। भक्त तो अपनी जगह बैठा-बैठा राख हो गया है, मिट गया है।
मैं जब जब होती हूं उन्मन,
विरह-व्याकुल होता तन-मन,
तब तब प्रिय! तुम आ जाते हो
मृदु मादक प्यार लुटाते हो।
जब सूनापन घहराता है
जगती के कोलाहल से तब
मन दूर हीं भटकाता है
तब उस सन्नाटे में मानो तुम चुपके से आ जाते हो मौन पड़ी मन-वीणा को फिर से झंकृत कर जाते हो।
जब निलांबर श्यामल होता
गर्जन-तर्जन के तांडव में
आशा-सूरज भी खो जाता
तब सहसा अरुणाचल से तुम, सूरज बन कर मुस्काते
हो बाहों के घेरे में लेकर उजियाले में ले आते हो।
जब कभी निशा की नीरवता
में सहम अकेला मन मेरा
आकुल-सा टेर तुम्हें देता
तब ओ मेरे मनमीत! कहां से तुम उस पल आ जाते हो
इन प्यासे प्राणों को अपने प्राणों के संग लिपटाते हो... मैं तुमसे कोसों दूर भले
तुम मेरे पास रहे हर पल
ज्यूं बाती में हो ज्योति और
हृदय में बसती हो धड़कन।
तुम भी कहते--हम दूर कहां? ये ओंठ मेरे दोहराते हैं,
इस जन्म विरह की बात न कर, ये जन्म-जन्म के नाते हैं।
परमात्मा से हम कभी टूटे नहीं हैं। वह हमारे आंगन में नाच ही रहा है।
हम आंख बंद कर बैठे हैं। और यह नाता कोई नया नहीं है।
तुम भी कहते--हम दूर कहां? ये ओंठ मेरे दोहराते हैं,
इस जन्म विरह की बात न कर, ये जन्म जन्म के नाते हैं।
उसी की तलाश चल रही है; उसी की जिसे हमने कभी खोया नहीं है। उसी को खोजते फिर रहे हैं जो हमारे भीतर विराजमान है, जो हमारे सिंहासन पर बैठा है। उसी को खोजते मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरजों में, जिसे तुमने एक क्षण को भी खोया नहीं है। और चूंकि तुम बाहर खोजते इसलिए खोज नहीं पाते। वह भीतर है; पहले भीतर है। और पहले भीतर उसका अनुभव हो जाए तो फिर बाहर भी उसका अनुभव होना शुरू हो जाता है। आता है परमात्मा। आज मोरे आंगन संत चलि आए, कौन करौं मिहमनिया
कैसे स्वागत करें? भक्त को कुछ सूझता नहीं। हठात, अवाक भक्त रह जाता है। दूलनदास जैसा ज्ञानी भी कैसी बातें करता है सुनो!
निहुरि-निहुरि मैं अंगना बुहारौं...
अब और क्या करूं! झुक-झुक कर आंगन को बुहारती हूं।

निहुरि-निहुरि मैं अंगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया
और मतवाली हो रही हूं, प्रेम की लहरें उठ रही हैं। मैं होश में नहीं हूं। कुछ भूल-चूक हो जाए तो क्षमा कर देना। आतिथ्य में कोई कमी रह जाए तो ख्याल न करना। निहुरि-निहुरि मैं अंगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम लहरिया। भाव कै भात अब भाव के ही चावल पकाऊं। प्रेम कै फुलका प्रेम की रोटी पकाऊं। ज्ञान की दाल उतरिया सुनते हो? दूलनदास जैसा ज्ञानी ऐसी बच्चों जैसी बातें कर रहा है। मगर प्रेम की घड़ी ऐसी ही घड़ी है। प्यार की घड़ी ऐसी ही घड़ी है। सारा ज्ञान भूल गया। सारा ध्यान भूल गया।

निहुरि-निहुरि मैं अंगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया
भाव कै भात, प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया
लेकिन एक बात भक्त को कभी नहीं भूलती, कभी भी नहीं भूलती। परमात्मा भी द्वार पर खड़ा हो जाता है तो भी वह गुरु को धन्यवाद देना नहीं भूलता। वह बात भूलती ही नहीं।
कबीर कहते हैं, गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांव। आखिरी घड़ी में
भी जब गुरु और गोविंद दोनों सामने खड़े होते हैं तो कबीर को झिझक होती है किसके पैर पहले पड़ूं? पड़ने तो परमात्मा के ही चाहिए लेकिन परमात्मा का तो पता भी नहीं हो सकता था गुरु के बिना। इसलिए पहले गुरु के ही पड़ना चाहिए। लेकिन परमात्मा की मौजूदगी में और गुरु के पहले पैर पड़ना--शोभन होगा क्या? कबीर की दुविधा सभी संतों की दुविधा है। काके लागूं पांव गुरु गोविंद दोई खड़े। और बड़ी प्रीतिकर बात पर यह पद पूरा हुआ है: बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताए। कबीर को झिझकता देख कर गुरु ने कहा, पड़! परमात्मा के पैर पड़। वही सदगुरु है जो आखिरी क्षण में अपने को हटा ले; जो बीच से हट जाए। वह झीना सा पर्दा भी न रह जाए। उतना घूंघट भी न रह जाए।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया
वे कहते हैं, आज तुम मेरे द्वार आए हो तब मुझे याद आती है गुरु की, जगजीवन की। आज मैं उनके चरणों पर बलिहार जा रहा हूं। कितने उन पर संदेह किए थे! कितने-कितने प्रश्न उठाए थे कितनी-कितनी झिझकें थीं! कितना हिचका था! कैसे मुश्किल-मुश्किल से चला था! कैसे मुश्किल-मुश्किल से उन्होंने चलाया था! कैसे समझाया, कैसे बुझाया, कैसे रिझाया! मैं तो भागा-भागा था, वे पकड़-पकड़ ले आए थे। मेरी चलती तो मैं कभी का तुमसे दूर निकल गया होता। उन्होंने मेरी नहीं चलने दी, नहीं चलने दी। उन्होंने ऐसे प्रेम के जाल में मुझे बांधा कि छूट न पाया। उन्हीं का प्रेम तुम तक मुझे ले आया। आज इस परम सौभाग्य की घड़ी में उनके चरणों पर बलिहारी जाता हूं।
सतनाम तें लागी अंखियां, मन परिगै जिकिर-जंजीर हो
सूफियों का शब्द है जिक्र। जिक्र का वही अर्थ होता है जो कबीर, नानक
और दादू की भाषा में सुरति का होता है--सुध; जो बुद्ध की भाषा में स्मृति का होता है। जिक्र का अर्थ होता है याद उठती ही रहे, उठती ही रहे। अहर्निश। निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी
सतनाम तें लागी अंखियां
अब आंखें तुम पर अटक गई हैं। अब आंखें कहीं और नहीं जातीं। अब जाने को कोई जगह नहीं बची। अब घर आ गया।
मन परिगै जिकिर-जंजीर हो
और मन तो तेरी याद की जंजीर में जकड़ गया है। और मन ने तो अब तेरे साथ अपना सदा के लिए नाता जोड़ लिया है। टूट गया नाता संसार से, जुड़ गया सतनाम से।
मीत तुम्हारा
प्रीत हमारी
रीत न्यारी।
तब नयनन की
मतवाली
मादक

सपनीली
छवि प्यारी!
वे सरस सुवासित
स्वर्गामृत
आनंद निकेतन
छोटे-छोटे
पैने-पतले
अधखिली कली से
नाजुक
तब अधरों का
अधरामृत!
लाज प्यार की गरिमा में
सौजन्य लिए
सौंदर्य जिए
दर्द-जुदाई से
मुरझाए
अलसाए
मादक मादक।
सोई सुंदरता के
प्रतिपादक।
वे यौवन घट
ज्यों पनघट के हों
सरस कलश!
आह! याद तिहारी
दर्द भरे
इक हूक लिए
बस, तड़पा जाती!
एक हूक उठने लगती है अहर्निश। एक हुंकार उठने लगती है अहर्निश। काम में लगे रहो हजार, कि झाडू-बुहारी दो झुक-झुक कर, कि प्रेम की रोटियां पकाओ, कि आनंद की दाल उतारो, कि हजार-हजार कामों में व्यस्त रहो लेकिन भीतर उसकी याद चलती रहती है। उसकी याद भीतर बुझती नहीं। क्षण भर को भी विस्मरण नहीं होता।
जनक के जीवन में उल्लेख है, एक सदगुरु ने अपने शिष्य को जनक के पास भेजा ज्ञान की अंतिम उपलब्धि के लिए। जनक को देख कर संन्यासी बहुत हैरान हुआ। दरबार भरा था, नर्तकियां नाचती थीं, शराब के दौर चल रहे थे। इस भ्रष्ट भोगी से ज्ञान की अंतिम शिक्षा क्या मिलेगी ऐसा भाव स्वभावतः संन्यासी के मन में उठा। लेकिन जनक ने उसके भाव को जैसे तत्क्षण पढ़ लिया और कहा कि जल्दी न करो, जल्दी निर्णय न लो। उसने कुछ कहा न था, कुछ बोला न था, यह तो सिर्फ भाव की बात थी। लेकिन जनक ने कहा, जल्दी न करो, जल्दी निर्णय न लो। आ गए हो तो रात विश्राम करो, सुबह सत्संग होगा। थका-मांदा था, सोचा रात रुक जाना ठीक है। सत्संग तो क्या खाक होगा! देख लिया जो देखना था। यहां भ्रष्ट होना हो तो रुकना ठीक है। लेकिन फिर जनक ने कहा, जल्दी न करो, सुबह तक तो ठहर जाओ, इतना तो धैर्य रखो!
रात भोजन कराया जनक ने, पंखा झला संन्यासी के ऊपर। वे प्यारे दिन थे
जब सम्राट भी संन्यासियों पर पंखे झलते थे। फिर भोजन के बाद बिस्तर पर लिटाया। सुंदर बिस्तर! संन्यासी ने कभी ऐसा बिस्तर देखा भी नहीं था। फिर सुबह हुई, सम्राट आया, संन्यासी से पूछा, रात ठीक से विश्राम किया? उसने कहाः क्या खाक विश्राम! विश्राम करने ही न दिया। यह तलवार क्यों ऊपर लटकी है? बिस्तर के ऊपर एक कच्चे धागे से तलवार लटकी हुई थी नंगी। संन्यासी ने कहाः बहुत उपाय किए सोने के। बहुत करवटें बदलीं, बहुत मन में दोहराया कि आत्मा तो अमर है, मगर वे बातें कोई काम न आईं। ब्रह्मज्ञान जो भी मैंने सुना-समझा है, सब याद किया कि अरे, शरीर ही मरता है! न हन्यते हन्यमाने शरीरे। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। सब दोहराया मगर कोई

काम न आया। वह तलवार लटकी ऊपर और नंगी और कच्चा धागा! और जरा हवा का झोंका आ जाए कि टूट जाए। तो रात भर बहुत कोशिश की सोने की मगर सो न पाया। आंखें अटकी रहीं तलवार पर। आंख भी बंद करूं तो तलवार दिखाई पड़ती थी। कभी-कभी शायद थोड़ी-बहुत तंद्रा भी आयी हो, थका-मांदा था तो थोड़ी-बहुत नींद भी लग गई हो, मगर तलवार नहीं भूली सो नहीं भूली। उस तंद्रा में भी तलवार लटकी थी। और तंद्रा में भी मुझे याद थी कि तलवार लटकी है और खतरा है।
जनक ने कहा, कुछ समझ में आया? ऐसी ही हालत मेरी है। बैठा हूं राजमहल में लेकिन तलवार मौत की लटकी है, वह भूलती नहीं। और जैसे तलवार भूलती नहीं, नींद में भी याद रहती है, वैसे ही परमात्मा को भी याद करने का ढंग है। वह भी भूलता नहीं, नींद में भी याद रहता है। शराब भी चल रही है, नृत्य भी हो रहा है, सब हो रहा है मगर मैं इस सब के बाहर हूं। हूं बीच में मौजूद और फिर भी मौजूद नहीं हूं। तुम्हारे गुरु ने इसीलिए भेजा है कि यह आखिरी सत्य है, यह परम सत्य है। और जब तक यह तुम न जान लोगे तब तक तुम्हारा संन्यास थोथा है, ऊपरी है। अब तुम जा सकते हो। संन्यास तभी पूरा है जब संसार में रह कर भी और संन्यास पर कालिख न आती हो; जब बाजार में खड़े होकर और ध्यान लगा रहे; जब दुकान पर बैठे-बैठे और जिक्र चलता रहे; जब घर-द्वार का काम भी संभाला जाए, घर-गृहस्थी की फिकर भी की जाए और फिर भी फिकर परमात्मा की ही होती रहे। यह आखिरी उपदेश है जिसके लिए गुरु ने तुम्हें यहां भेजा है। अब तुम जा सकते हो।
सतनाम तें लागी अंखियां, मन परिगै जिकिर-जंजीर हो
मन अगर उसकी जिक्र की जंजीर में बंध जाए, अगर उसकी याद की जंजीर में बंध जाए, अगर उसकी हूक उठती रहे, उठती रहे, अगर उसका स्मरण आता ही रहे, आता ही रहे तो फिर तुम क्या करते हो इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे कृत्यों का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारी स्मृति का ही आत्यांतिक मूल्य है, तुम्हारी सुधि का मूल्य है, तुम्हारे कर्मों का नहीं। तुम अच्छे कर्म भी करो और अगर परमात्मा की याद भीतर न हो तो वे सब बंधन बन जाएंगे। और तुम अच्छे कर्म न भी करो और तुम्हारे भीतर परमात्मा की सतत याद बहती रहे तो तुम पर कोई बंधन होने वाला नहीं है।
इसलिए कृष्ण अर्जुन को कह सके कि तू लड़। लड़ना कोई अच्छा कृत्य नहीं है।... मार! काट! घबड़ा मत। बस, एक बात स्मरण रख कि कर्ता वही है, तू फलाकांक्षी न हो। तू अपने को बीच में न ला। उसकी याद रहे। उसके चरणों में अपने को छोड़ दे उसके हाथों में, फिर उसकी जो मर्जी! वह जो करवा ले! तू उसके हाथ का खिलौना बन जा, कठपुतली बन जा, फिर जो हो ठीक है। उसकी याद भर न जाए। सारी गीता का सार-संचय इतना है कि परमात्मा के चरणों में सब छोड़ दो, उसकी याद पर सब छोड़ दो। उसकी याद सतत बहती रहे, फिर तुम जो भी करोगे शुभ है, धर्म है। तुमसे जो भी होगा वही सुंदर है।
सखि, नैन बरजे ना रहैं, अब ठिरे जात वोहि तीर हो
और जब भीतर की धुन बजने लगती है तो तुम लाख बाहर ले जाने की कोशिश करो,
मन भीतर जाने लगता है, भीतर जाने लगता है। तुम उलझाने की भी कोशिश करो बाहर तो नहीं उलझता।
रामकृष्ण के जीवन में ऐसा रोज घट जाता था। रामकृष्ण को कहीं ले जाना
तक मुश्किल था। कभी किन्हीं शिष्यों के घर निमंत्रण होता तो रामकृष्ण को ले जाने में बड़ी झंझट होती थी। क्योंकि रास्ते पर से गुजरना पड़ता और रास्ते पर कोई इतना ही कह दे: "जय राम जी!" अब किसी को रोक तो नहीं सकते। रास्ते पर इतने लोग चल रहे हैं, कोई किसी से जय राम जी कर दे, कि रामकृष्ण से ही कह दे "जय राम जी!" बस, इतना काफी है। राम का नाम कान पर पड़ गया कि वे वहीं सड़क पर चौराहे पर मस्त हो गए। कि नाचने लगे, कि आंखों से अश्रुधार बहने लगी; कि गिर पड़े चौराहे पर; कि होश न रहा; कि बाहर की दुनिया भूल गई। रामकृष्ण से किसी ने पूछा कि आप तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं, जगन्नाथपुरी जा रहे हैं, क्या अच्छा न होगा कि जहां बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ--बोधगया भी होते आएं? तो रामकृष्ण ने कहा नहीं, बोधगया न जाऊंगा। बड़ी प्यारी बात है। रामकृष्ण ने कहाः बोधगया न जाऊंगा। क्यों? तो रामकृष्ण ने कहाः बोधगया गया तो फिर लौट नहीं सकूंगा। जहां बुद्ध को बुद्धत्व मिला

वहां की हवा काफी है, फिर मैं ऐसा भीतर डूबूंगा कि तुम मुझे बाहर न ला पाओगे। सो अगर चाहते हो कि मैं कुछ देर और रह जाऊं और तुम्हारी सेवा कर लूं और तुम्हारे जीवन में प्रभु का गीत गुनगुनाऊं तो बोधगया से बचाना। बोधगया न जाऊंगा।
कितने लोग बोधगया गए हैं! जाने वाला यह एक आदमी था जो गया नहीं। कितने दूर-दूर से बौद्ध भिक्षु यात्रा करते आते हैं--कोरिया से और जापान से और ताइवान से और चीन से और तिब्बत से और लंका से--मगर जाने वाला यह आदमी था जिसको जाना चाहिए था, जो जाने की योग्यता रखता था। इसने कहा कि नहीं, बोधगया से बचाना। बोधगया बीच में पड़ना ही नहीं चाहिए क्योंकि बोधगया बीच में पड़ा तो मुश्किल हो जाएगी। फिर मैं अपने भीतर के शून्य में समाविष्ट हो जाऊंगा। फिर लाख उपाय करूं तो मुझे बाहर की याद न रहेगी। तो बुद्ध का जहां जन्म हुआ हो वहां मत ले जाना। और बुद्ध का जहां अंत हुआ हो वहां मत ले जाना। और बुद्ध को जहां संबोधि मिली हो वहां मत ले जाना। ये तीन जगह बचाना। इन तीन जगह में खतरा है। फिर मुझसे मत कहना कि आपने पहले क्यों नहीं चेताया!
रामकृष्ण ने बड़ी अदभुत बात कही, बड़ी गहरी बात कही। यह सच है।
रामकृष्ण जैसा व्यक्ति बुद्ध के स्मरण मात्र से ऐसी डुबकी लगा सकता
है कि फिर हम उसे खोज न पाएं; फिर उसका पता लगाना मुश्किल हो जाए।
सखि, नैन बरजे ना रहैं
दूलनदास कहते हैं कि अपनी आंखों को बरजता हूं कि जरा बाहर भी देखो, क्या भीतर ही भीतर लगे हो? क्या उसी-उसी को देख रहे हो? और टकटकी बांधकर किसी को देखना शिष्टाचार भी नहीं है। थोड़ी पलकें भी झपो, थोड़ा आंखों को आराम भी दो। सखि नैन बरजे ना रहैं--लेकिन कोई उपाय काम नहीं करता। कितना ही बरजता हूं, आंख है कि वहीं चली जाती है।
अब ठिरे जात वोहि तीर हो--अब तो बस उसके पास ही निकट ठहरना होता है, कहीं और ठहरने की न आकांक्षा है, न ठहरना हो पाता है।
नाम सनेही बावरे, दृग भरि भरि आवत नीर हो
और जैसे ही उसका नाम सुनता हूं, आंखें एकदम आंसुओं से भर जाती हैं; आंखें सरोवर हो जाती हैं। नाम सनेही बावरे... उस प्यारे का नाम बस पर्याप्त है कि रोमांच हो आता है; कि जैसे किसी ने शराब उंड़ेल दी।
दृग भरि भरि आवत नीर हो
रस-मतवाले रस-मसे...
कैसे रस में मैं डुबकी खा रहा हूं तुम्हें कैसे बताऊं?
रस-मतवाले रस-मसे, यहि लागी लगन गंभीर हो
अब तो बस यही विभोरता! डुबकी बढ़ती जाती है, गहराई बढ़ती जाती है, रस की सघनता बढ़ती जाती है।
ऐसे ही जानने वालों ने तो परमात्मा की परिभाषा रस की है--रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है। ऐसी परिभाषा दुनिया में कहीं भी नहीं की गई। यहूदियों ने परिभाषाएं की हैं कि परमात्मा जगत का स्रष्टा है। ठीक है, कामचलाऊ बात है। ईसाइयों ने परिभाषाएं की हैं लेकिन "रसो वै सः" इस परिभाषा की तुलना किसी और परिभाषा से नहीं हो सकती--कि परमात्मा रसरूप है! यह दार्शनिकों की परिभाषा नहीं है, यह अलमस्तों की परिभाषा है, यह दीवानों की परिभाषा है, यह प्रेमियों की परिभाषा है। जिन्होंने चखा है इसे पीया है इसे, जो मदमाते हुए, जो मस्त हुए। जिन्होंने उसे चखा और सदा के लिए बेहोश हुए; और ऐसी बेहोशी कि जिसमें होश भी है, ऐसी बेहोशी कि जिसमें होश का दीया भी जलता है, यह उनकी परिभाषा है। यह प्यारों की परिभाषा है। यह परिभाषा बहुत करीब आ जाती है। ऐसे तो परमात्मा की कोई परिभाषा हो नहीं सकती मगर अगर करनी ही हो तो रसो वै सः--रसरूप है।
रस-मतवाले रस-मसे, यहि लागी लगन गंभीर हो
सखि इस्क पिया के आसिकां, तजि दुनिया दौलत भीर हो
और कह रहे हैं कि सुनो! इस्क पिया के आसिकां... अब तो इश्क पैदा हो गया।
अब तो प्रेम पैदा हो गया। अब तो हम आशिक हो गए। अब तो परमात्मा माशूक हो

गया। अब तो हम मजनू हैं, वह लैला है। और जैसे मजनू चिल्लाता रहता हैः लैला, लैला, लैला।
कहानी तुमने सुनी है मजनू की? मजनू का यह सतत चिल्लाना लैला-लैला! गली-गली, गांव के कूचे-कूचे में चिल्लाना... । लैला प्रतिष्ठित परिवार की लड़की थी। बाप बहुत नाराज था। मजनू की आवारागर्दी, उसकी ये आवाजें बाप के लिए भारी पड़ने लगीं। बाप ने तय किया कि गांव ही छोड़ देंगे। उसने यह गांव ही छोड़ दिया। चले! बड़ा संपत्ति वाला था, बड़ी धन-दौलत थी। सब लादे गए ऊंटों पर। अनेक ऊंटों का काफिला चला। लैला को भी ऊंट पर बांध दिया गया। मजनूं को खबर मिली, वह गांव के बाहर जाकर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया और वहीं धुन सतत लग गई: लैला-लैला। काफिला गुजरता रहा, लैला को धुन सुनाई पड़ती रही, लैला की आंखों से आंसू टपकते रहे लेकिन कोई उपाय न था। काफिला दूर होता गया, मजनू की आवाज जोर से होने लगी। काफिला दूर होता गया, मजनूं चिल्लाता रहा, चिल्लाता रहा, चिल्लाता रहा। कहानी बड़ी प्रीतिकर है।
ध्यान रखना, लैला-मजनू की कहानी एक सूफी कहानी है। इसका संबंध साधारण प्रेम की दुनिया से नहीं है। लैला परमात्मा का प्रतीक है, मजनू भक्त का प्रतीक है। यह एक सूफी आख्यान है। मजनू खड़ा ही रहा उसी वृक्ष के नीचे, उसी वृक्ष से टिका। दिन आए-गए, रातें आईं-गईं, चांद निकले-डूबे, सूरज उगे-डूबे, वर्षा आई, गर्मी आई, सब ऋतुएं आईं, न मालूम कितना समय गुजरा, मगर वह चिल्लाता ही रहा: लैला-लैला! जब तक धुन रही, जब तक वाणी में शक्ति रही, जब तक श्वास रही, चिल्लाता रहा, चिल्लाता रहा।
बारह वर्ष बीत गए तब लैला वापस लौटी। उसने गांव में पता लगाया कि मजनू कहां है। लोगों ने कहा कि मजनू तो अब नहीं है सिर्फ मजनू की आवाज है। और वह भी रात के सन्नाटे में अगर गांव के फलां-फलां वृक्ष के नीचे जाकर खड़ी रहो तो सन्नाटे में रात के आवाज आती है: लैला-लैला-लैला। मजनू का तो कुछ पता नहीं है लेकिन आवाज आती है। शायद मजनू भूत हो गया या क्या हो गया! हम तो जाने से डरते हैं। उस रास्ते से रात लोग गुजरते भी नहीं क्योंकि आवाज बड़े जोर से आती है। लैला गई उस वृक्ष के नीचे, आवाज आ रही थी। दूसरों को रात के सन्नाटे में सुनाई पड़ती होगी क्योंकि दूसरों के सिर में हजार तरह का शोरगुल है, मगर लैला को तो दिन में ही सुनाई पड़ने लगी। जैसे ही वृक्ष के पास पहुंची, सुनाई पड़ने लगी। वही आवाज! वही बारह साल जैसे बीच से मिट गए। और जब वह वृक्ष के पास गई तो चकित हो गई। मजनू था, मर नहीं गया था लेकिन बारह साल वृक्ष के साथ खड़ा-खड़ा वृक्ष से जुड़ गया था। उसके हाथ वृक्ष की शाखाएं हो गए थे। उसके शरीर पर पत्ते निकल आए थे, फूल निकल आए थे। अब वृक्ष का ही हिस्सा था और सारे वृक्ष से एक ही धुन निकल रही थी: लैला-लैला। यह प्रीतिकर कथा है, यह भक्त की कथा है।

रस-मतवाले रस-मसे, यहि लागी लगन गंभीर हो
सखि, इस्क पिया के आसिकां, तजि दुनिया दौलत भीर हो
छोड़ो दुनिया की भीड़-भाड़। वहां कोई मिलेगा नहीं। वहां कोई संगी-साथी न मिलेगा। संगी-साथी तुम्हारे भीतर है उसे पुकारो।
आवाजो, आज मुझे एकाकी छोड़ दो
भीड़ से अलग भी तो
मेरा अस्तित्व हो
निजी इकाई मेरी
स्व पर स्वामित्व हो
कोलाहल नस-नस में भर गया निचोड़ दो मुकुरों का सौदागर
पाहन के देश में
वैसे ही गीत घिरा
है अगेय क्लेश में
स्वर से संबंध मूक सांसों का जोड़ दो परेशान हूं अपनी
ही जय-जयकार से

लौटे आतिथ्य बिना
क्षण मेरे द्वार से
दर्प भरी गरिमाओ! कुंठा-घट फोड़ दो शापित अतिरेक लिए
महानगर-बोध में
यंत्रों में भटका हूं
मैं अपने शोध में
मेरा यह अंध अहम ओ, विवेक! तोड़ दो
आवाजो, आज मुझे एकाकी छोड़ दो
भीड़ है तुम्हारे चारों तरफ और भीड़ तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर गई है। बाहर की आवाजें सुनते-सुनते भीतर भी तुम्हारे आवाजें ही आवाजें हो गई हैं। इसी शोरगुल में खो गई है तुम्हारे अंतरतम की आवाज, प्यारे की पुकार, जिक्र, सुधि, सुरति, स्मृति।
तुम्हारे भीतर अब भी आवाज उठ रही है पर बड़ी धीमी क्योंकि शोरगुल बहुत है। इस शोरगुल से अपने को काटना जरूरी है। इस शोरगुल से काटने का नाम ही ध्यान है। छोड़ो बाहर की आवाजें। और धीरे-धीरे भीतर से भी आवाजों को विदा दो। अलविदा कहो। नमस्कार कर लो। बहुत हो गया शोरगुल में रहते-रहते। भीतर सन्नाटे को बसने दो। भीतर थोड़ा शून्य पैदा होने दो। भीतर निर्विचार आने दो और उसी निर्विचार में तुम पहली बार सुनोगे मजनू जगा, लैला को पुकारा गया।
सखि, गोपीचंदा, भरथरी, सुलताना भयो फकीर हो
सखि, दूलन का से कहै, यह अटपटी प्रेम की पीर हो
कहते हैं गोपीचंद, भर्तृहरि सम्राट था। साधारण सम्राट भी नहीं, बड़ा बुद्धिमान सम्राट रहा होगा। और साधारण बुद्धिमान भी नहीं, जीवन को जीया होगा गहराई से इसलिएशृंगार-शतक जैसी अदभुत किताब लिखी। लेकिन एक दिन बात समझ में आ गई कि बाहरशृंगार का सिर्फ धोखा है, बाहर सौंदर्य की सिर्फ भ्रांति है, सपने हैं; असली सौंदर्य भीतर है; असलीशृंगार भीतर है; असली राजा भीतर है। बाहर राजा होने का सिर्फ दंभ है, असली मालकियत आत्मा की मालकियत है।
तो एक दिन सब छोड़ कर भर्तृहरि चले गए। फिर एक दूसरी किताब लिखी उतनी
ही कीमती जितनी सौंदर्य-शतक--शृंगार-शतक। वैराग्य-शतक लिखा। राग की बात भी लिखी, बड़ी गहराई से लिखी। और मेरी समझ यह है कि जिसने राग की बात इतनी गहराई से लिखी वही वैराग्य की बात इतनी गहराई से लिख सकता था। ये दोनों शतक सौंदर्य,शृंगार, वैराग्य, भक्ति संयुक्त हैं; एक ही अनुभव के दो पहलू हैं। ठीक-ठीक संसार को देखा तो दिखाई पड़ गया कि व्यर्थ है। दूर के ढोल सुहावने हैं। मृग-मरीचिका मालूम हो गई। तो भर्तृहरि सब छोड़ दिया, फकीर हुआ। और छोड़ कर उसे पाया जिसे पकड़-पकड़ कर न पाया था। वैराग्य में उस सौंदर्य को जाना जिसे सौंदर्य में नहीं जाना था। वैराग्य में उस राग को पाया जिसे राग में रह-रह कर भी नहीं पाया था। असलीशृंगार तो एक ही है कि तुम्हारे बुद्धत्व का जन्म हो। तुम्हारे भीतर दीया जले आत्मा का, वही असली श्रृंगार है। उसके सामने सब कोहिनूर कंकड़-पत्थर हैं।
सखि, गोपीचंदा, भरथरी, सुलताना भयो फकीर हो
बोध आ गया तो सम्राट फकीर हो गया।
सखि, दूलन का से कहै... यह बड़ी अटपटी गैल है। इसको कहना कठिन।
सखि, दूलन का से कहै, यह अटपटी प्रेम की पीर हो
लेकिन यह जो भर्तृहरि फकीर हो गया यह प्रेम में ही फकीर हुआ यह याद रखना। यह परमात्मा के प्रेम में फकीर हुआ। इसने छोटे-मोटे प्रेम करके देख लिए और पाया कि उनमें कुछ भी नहीं है। दिखाई पड़ते हैं दूर से मरूद्यान, पास जाओ तो रेत के ढेर हैं। फिर असली मरूद्यान की तलाश की, मगर यह प्रेम की ही तलाश है। ध्यान रखना, भूल कर भी प्रेम के शत्रु मत हो जाना अन्यथा परमात्मा से न जुड़ सकोगे। प्रेम सेतु है। प्रेम ही संसार से जोड़ता है, प्रेम ही परमात्मा से जोड़ता है। जोड़ने की एक ही व्यवस्था है: प्रेम। हां, संसार से जुड़ोगे तो विषाद में ही रहोगे क्योंकि संसार में कुछ है नहीं,

सिर्फ दिखाई पड़ता है; आभास है। परमात्मा से जुड़ोगे तो तृप्त हो जाओगे क्योंकि आभास नहीं है, सत्य है। और यह प्रेम की बड़ी अटपटी पीर है। कही न जा सके ऐसी बात है।
कुछ कथ्य हृदय में व्याकुल भटक रहा
हो सके इसे अभिव्यंजन का वर दो
अनुभूति गई अवचेतन कक्षों में
वह आवेगों के क्षण में पक आयी
अब शब्दों का आधार मांगती है
वह कविता जो अधरों पर अखुंवायी कोई अनाम स्वर सांसों में तिरता हो सके इसे संबोधन का वर दो
हो गया अहम वट-वृक्ष तले जिसके भावों का कोई पौधा नहीं जमा केंद्रित कर निज को परिधि बना डाली जिसमें विवेक बंदी सहमा-सहमा
हो गई अहिल्या पाहन कुंठा की
हो सके इसे संवेदन का वर दो
जीवन क्या है आयु के सिरे वह दो जिनमें फैली यात्रा की लंबाई
हर पग गलती से बचने के हित में
हर बार गई है गलती दुहराई
आदमी जिया भूलों ही भूलों में
हो सके इसे संशोधन का वर दो
एक ही प्रार्थना करो परमात्मा से-- जीवन क्या है आयु के सिरे वह दो
जिनमें फैली यात्रा की लंबाई
हर पग गलती से बचने के हित में
हर बार गई है गलती दुहराई
आदमी जीया भूलों ही भूलों में
हो सके इसे संशोधन का वर दो
हे प्रभु! थोड़ा सुधार लो इसे, थोड़ी भूल-चूक ठीक कर दो।
हो गई अहिल्या पाहन कुंठा की
हो सके इसे संवेदन का वर दो
हम प्रेम विहीन पत्थर हो गए हैं, थोड़ी संवेदना दे दो।
कोई अनाम स्वर सांसों में तिरता
हो सके इसे संबोधन का वर दो
और प्रत्येक के भीतर परमात्मा की ध्वनि गूंज रही है लेकिन हम भूल गए कैसे उससे संबंध जोड़ें! और भूल गए कैसे उसे जगाएं, पुकारें, उभारें, अभिव्यक्ति दें?
हो सके इसे संबोधन का वर दो
कुछ कथ्य हृदय में व्याकुल भटक रहा
हो सके इसे अभिव्यंजन का वर दो
जब तक परमात्मा तुम्हारे भीतर से प्रकट न हो सके; जैसे कली फूल बनती
है ऐसे तुम जब तक परमात्मा के फूल न बन जाओ तब तक तुम्हारा जीवन व्यर्थ है, व्यर्थ रहा है, व्यर्थ रहेगा। बहुत देर वैसे ही हो चुकी है, अब जागो! जाल समेटो! कब से जाल फेंकते रहे, अब तो समेटो।
जाल-समेटा करने में भी
समय लगा करता है, मांझी,
मोह मछलियों का अब छोड़।
सिमट गईं किरणें सूरज की,
सिमटीं पंखुरियां पंकज की,
दिवस चला छिति से मुंह मोड़। तिमिर उतरता है अंबर से,

एक पुकार उठी है घर से,
खींच रहा कोई बे-डोर।
जो दुनिया जगती, वह सोती,
उस दिन की संध्या भी होती, जिस दिन का होता है भोर।
नींद अचानक भी आती है,
सुध-बुध सब हर ले जाती है, गठरी में लगता है चोर।
अभी क्षितिज पर कुछ-कुछ लाली, जब तक रात न घिरती काली,
उठ अपना सामान बटोर।
जाल-समेटा करने में भी,
वक्त लगा करता है, मांझी, मोह मछलियों का अब छोड़।

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया चौथा प्रवचन

मदहोश हमें तू कर दे

पहला प्रश्नः ओशो, आपकी बातें सुनता हूं तो लगता है कि जब आप कहते हैं
तो परमात्मा होगा ही। फिर भी मन प्रमाण मांगता है। परमात्मा का प्रमाण क्या है?

परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है और न परमात्मा का कोई प्रमाण हो सकता है; क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जो उसका प्रमाण बन सके। परमात्मा ही है, रत्ती भर भी स्थान शेष नहीं है, जहां परमात्मा का प्रमाण अपना आवास बना सके। जो है वह परमात्मा है। प्रमाण भी होगा तो वह भी परमात्मा ही होगा।
परमात्मा का प्रमाण मन जरूर मांगता है और मन के प्रमाण मांगने के गहरे कारण हैं। प्रमाण मांगने में ही परमात्मा नहीं है, ऐसा मन को आभास मिलना शुरू हो जाता है। क्योंकि प्रमाण तो परमात्मा का कोई है नहीं, दिया नहीं जा सकता, कभी दिया नहीं गया, कभी दिया भी नहीं जाएगा। और जिन्होंने दिए हैं, सब झूठे प्रमाण हैं। बच्चों को समझाने की बातें हैं। उनसे कुछ मन की तृप्ति नहीं होती।
आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होता, प्रेम होता है। नास्तिक के पास तर्क होता है। इतना भेद है आस्तिक और नास्तिक में। ऐसा मत सोचना कि आस्तिक के पास प्रमाण हैं और नास्तिक के पास प्रमाण नहीं हैं। आस्तिक के पास प्रेम है, कोई प्रमाण नहीं है। प्रेम चिंता भी नहीं करता प्रमाणों की, प्रमाण प्रेम की भाषा में भी नहीं आते। नास्तिक के पास तर्क है, प्रमाण उसके पास भी कोई नहीं है--पक्ष में या विपक्ष में। प्रमाण तो हो ही नहीं सकता। लेकिन तर्क की एक सुविधा हैः अगर परमात्मा सिद्ध न हो सके तो मन की बचे रहने कि लिए उपाय मिल जाता है। अगर प्रकाश नहीं है तो अंधेरा बच सकता है और अगर प्रकाश है तो अंधेरे को मिटना होगा।
आस्तिक वही है जिसका मन मिट गया। नास्तिक वही है, जो कहता हैः पहले प्रमाण चाहिए। और प्रमाण मिलेंगे नहीं, मन को मिटने का कारण न आएगा। परमात्मा के संबंध में प्रमाण मांगना मन की बड़ी गहरी चालबाजी है।
तुम, सौंदर्य है फूल में, इसका प्रमाण मांगो; प्रमाण नहीं मिलेगा, सौंदर्य है! तुम भी जानते हो सौंदर्य है। किसी सुबह सूरज की ताजी-ताजी किरणों में तुमने कमल के फूल को खिलते देखा? क्या कह सकोगे कि सौंदर्य नहीं है? नहीं अभिभूत हो गए हो? नहीं हृदय में कुछ आंदोलित हो उठा है? रात तारों से भरी है और तुम अछूते रह गए हो! और आकाश अनंत रहस्यों से परिपूर्ण और तुम्हारा हृदय नाचा नहीं है? लेकिन प्रमाण क्या है! तारे सुंदर हैं, इसका प्रमाण क्या है? और कमल सुंदर है, इसका प्रमाण क्या है?
क्या किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र के प्रेम में नहीं पड़े हो?
और आंखें जादू से नहीं भर गई हैं? और रूप में कुछ अरूप की झलक नहीं मिली है। आकार में कहीं-कहीं निराकार की पगध्वनि नहीं सुनाई पड़ी है? कभी किन्हीं आंखों में झांक कर जीवन की अति रहस्यमयता का बोध नहीं हुआ है? हुआ है। इतना अभागा कौन है कि जिसे जीवन में कभी भी ऐसा कोई अनुभव न हुआ हो जो प्रमाणातीत है? लेकिन तुमने प्रमाण नहीं मांगा।
प्रमाण मांगते तो कमल तो रह जाता, कमल क्या कीचड़ ही रह जाती, सौंदर्य विलीन हो जाता। प्रमाण मांगते, आकाश तारों से भरा रह जाता, लेकिन रात्रि का काव्य और रात्री का रहस्य और रात्रि का संगीत सब विलीन हो गया होता। प्रमाण मांगते तो स्त्री तो रह जाती हड्डी-मांस-मज्जा की देह, लेकिन उसमें छलक आया अज्ञात तत्क्षण तिरोहित हो जाता। लेकिन तुमने वहां प्रमाण नहीं मांगे या जिन्होंने मांगे हैं उनके लिए सौंदर्य भी नहीं है, सत्य भी नहीं है, परमात्मा भी नहीं है, प्रेम भी नहीं है, शुभ भी नहीं है, आनंद भी नहीं है। उनके लिए बचता क्या है? उनके लिए कुछ भी जीवन-योग्य नहीं बचता। खाते- बही करो, रुपये-पैसे का हिसाब लगाओ, धन-दौलत जोड़ो। फिर उनके पास व्यर्थ

कूड़ा-करकट इकट्ठा करने के लिए ही उपाय बचता है। क्योंकि जीवन में जो भी महिमावान है वह उनके हाथों के बाहर हो जाता है। जिसे तुमने इनकार कर दिया, उसके द्वार तुम्हारे लिए बंद हो गए। जिस मंदिर को तुमने नकार दिया वह मंदिर तुम्हारे लिए न रहा।
जीवन में प्रमाण हैं--क्षुद्र बातों के, व्यर्थ बातों के। जीवन में प्रमाण नहीं हैं--विराट के, अनंत के, शाश्वत के।
अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं तो यह कहूंगाः अच्छा है कि परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है, नहीं तो कैसे करते उसे प्रेम? कोई गणित को प्रेम करता है? दो और दो चार होते हैं, यह बात पक्की है; मगर इसको प्रेम करोगे? दो और दो चार होते हैं, यह बात बिल्कुल सुनिश्चित है, इसे सिर पर लेकर नाचोगे? कहते हैं, शापेनहार, पश्चिम का एक बड़ा विचारक जब पहली बार उपनिषद पढ़ा
तो उपनिषदों को सिर पर लेकर नाचने लगा। मित्रों ने पूछाः पागल हो गए हो! कोई किताबों को लेकर सिर पर नाचता है! लेकिन शापेनहार ने कहाः ये किताबें होतीं तो मैं भी नहीं नाचता। ये किताबें नहीं हैं। किताबें तो मैंने भी बहुत देखी। इनमें कुछ है जो किताबें में होता ही नहीं इनमें किसी दूर की भनक है; किसी बहुत सुदूर के तारे की झलक है। इन किताबों के कारण मुझे पहली दफे जीवन में महिमा मालूम हुई है।
लेकिन क्या शापेनहार के नृत्य के लिए कोई प्रमाण है? गणित की किताब लेकर नाच सकता था शापेनहार? अलबर्ट आइंस्टीन की सापेक्षवाद की सिद्धांत की किताब लेकर नाच सकता था शापेनहार? नहीं, नाच कहां पैदा होगा गणित में! गाणित का आंगन बहुत छोटा, नाच कैसे पैदा होगा? गीत कैसे जन्मेगा? गणित में गीत के पैदा होने के लिए अवकाश कहां है? गीत के लिए थोड़ा रहस्यपूर्ण कुछ चाहिए, जो पकड़ में आता भी हो और न भी आता हो; जो हाथ में छूता भी हो और मुट्ठी में बंधता भी न हो। कुछ ऐसा जिसकी झलक तो मिलती हो, लेकिन स्पष्टता न होती हो। कुछ रहस्यमय की प्रतीति हो तो गीत जन्मे, तो नृत्य उठे, तो भजन हो, तो प्रार्थना हो और तो ही परमात्मा है।
तुम कहते होः "आपकी बातें सुनता हूं तो लगता है कि जब आप कहते हैं तो परमात्मा होगा ही।"
ऐसे लगने से कुछ सार नहीं। मेरी बातें सुन कर लगेगा तो किसी और की बातें सुन कर खो भी जाएगा। बातों का कोई भरोसा है? मेरी बातें सुन कर लगेगा, तुम्हारा मन उनके विपरीत बातें खोज लेगा। हर बात के विपरीत बात खोजी जा सकती है। ऐसी कोई बात ही नहीं होती, जिसका खंडन किया जा सके। हर शब्द के विपरीत शब्द होता है। शब्द बनते ही विपरीतता से हैं। प्रेम है क्योंकि घृणा है। करुणा है क्योंकि क्रोध है। दिन है क्योंकि रात है। जन्म है क्योंकि मृत्यु है। शब्द तो बनते ही द्वंद्व से हैं। और जिससे एक सिद्ध होता है उसी से दूसरा सिद्ध हो जाता है।
जन्म से ही तो मृत्यु सिद्ध होती है न! अगर जन्म न होता तो मृत्यु भी न होती। अगर जन्म सिद्ध हो गया तो मृत्यु भी सिद्ध हो गई। मित्र ही तो शत्रु बन जाते हैं न! अगर कोई मित्र ही न बनता तो दुनिया में शत्रु भी न होते। अपने ही तो पराए हो जाते हैं। इसीलिए तो पराए हो जाते हैं कि अपने हो सके थे। अपने होने की संभावना पराए होने की संभावना है।
तो जो तर्क पक्ष में हो सकता है वही विपक्ष में हो सकता है। तर्क तो वेश्या जैसे होते हैं; उनकी कोई निष्ठा नहीं होती। तर्क तो वकील हैं; जो उनके दाम चुका दे उनके साथ हो जाते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने वकील के पास गया। अपने वकील को उसने अपना पूरा मामला समझाया और जैसा कि वकील कहता, जैसा कि कोई भी वकील कहता, कहना ही चाहिए, नहीं तो वकील चले कैसे, जीए कैसे? वकील ने कहाः बिल्कुल मत घबड़ाओ। तुम्हारी जीत सुनिश्चित है। सब तर्क तुम्हारे पक्ष में हैं, सब कानून तुम्हारे पक्ष में हैं। विपरीत आदमी की हार में कोई शक ही नहीं, सौ प्रतिशत तुम जीतोगे।
मुल्ला उठ खड़ा हुआ। उसने कहाः नमस्कार, तो चलते हैं। उसने कहाः लेकिन जाते कहां हो? उसने कहाः यह तो मैंने अपने विपरीत आदमी के तरफ से जो तर्क

थे वे दिए थे। अगर हार मेरी निश्चित है तो नमस्कार, फिर काहे की फीस चुकानी और काहे की झंझट में पड़ना?
लेकिन तुम अपने तर्क कहते तो भी वकील यही कहता। तुमने अपना मामला समझाया होता तो भी वकील यही कहता। उसे कहना ही चाहिए, उसका काम ही यही है। उसे इससे प्रयोजन नहीं है; कि सत्य क्या है उसे प्रयोजन इससे है कि तार्किक रूप से किस चीज का समर्थन किया जा सकता है। और हर चीज का समर्थन किया जा सकता है तार्किक रूप से। ऐसा अब तक कोई भी विचार नहीं है जगत में, जिसके लिए तार्किक समर्थन न खोजा जा सके और तार्किक विरोध न खोजा जा सके। और मजा ऐसा कि तर्क का समर्थन और तर्क का विरोध दोनों समतुल होते हैं। इसलिए जो बुद्धिमान हैं वे तर्क में नहीं पड़ते, क्योंकि वे जानते हैं
कि दोनों समतुल हो जाते हैं, एक-दूसरे को काट देते हैं। अगर पचास प्रतिशत तर्क पक्ष में हैं तो पचास प्रतिशत विपक्ष में होता है। जिनके पास आंखें हैं वे इस सत्य को देख कर तर्क को गिरा ही देते हैं। वे कहते हैंः तर्क से निर्णय होगा ही नहीं।
फिर निर्णय कैसे होगा? जब तर्क से निर्णय नहीं होता तब प्रेम से निर्णय होता है। जब बुद्धि से निर्णय नहीं होता तब हृदय से निर्णय होता है। जब विचार से निर्णय नहीं होता तब अनुभव-अनुभूति से निर्णय होता है। मेरी बातें सुनकर अगर तुमको लगा कि ईश्वर है तो आश्रम के बाहर जाते- जाते खो जाएगा, घर पहुंचते-पहुंचते भूल जाएगा। बात का कोई भी मूल्य नहीं है। कितनी ही प्यारी बात हो, बात तो बात ही बात है। बातों के भरोसे मत रुकना। बातों के भरोसे ही लाखों-करोड़ों लोग रुके हैं और परमात्मा से वंचित रह गए हैं। किसी को आस्तिक की बात अच्छी लग गई है; वह भी वंचित रह गया। और किसी को नास्तिक की बात अच्छी लग गई है; वह भी वंचित रह गया। जो काबा में बैठा है, वह भी वंचित रह गया है और जो क्रेमलिन में बैठा है वह भी वंचित रह गया है। क्योंकि बात अच्छी लगी। और परमात्मा से संबंध बात से नहीं जुड़ता, जहां बातें गिर जाती हैं वहां संबंध जुड़ता है।
इसे मैं तुम से फिर से कह दूंः विचार से नाता नहीं जुड़ता परमात्मा से, निर्विचार से जुड़ता है। मेरी बात भी तो एक विचार देगी, एक तरंग पैदा करेगी, एक ऊहापोह उठाएगी! तुम चिंतनमग्न हो जाओगे। और परमात्मा का संबंध चिंतन से नहीं होता, मनन से नहीं होता। जहां मनन और चिंतन दोनों ठहर जाते हैं, जहां दोनों थिर हो जाते हैं, जहां विराम आ जाता है--जहां न सोच है, न विचार है, जहां केवल शुद्ध अस्तित्व है--बस वहीं परमात्मा से संबंध है। और फिर प्रमाण नहीं पूछे जाते। फिर तो प्रमाणों का प्रमाण हाथ लग गया। स्वाद लग गया!
जिस आदमी ने स्वाद लिया है मिठास का, तुम उससे लाख कहो कि प्रमाण क्या है; वह कहेगा प्रमाण हो या न हो, लेकिन स्वाद मैंने लिया है। लाख प्रमाण विपरीत हों तो भी मेरे स्वाद को खंडित नहीं कर सकते। और जिस आदमी ने नीम की कड़वाहट चखी है, तुम लाख प्रमाण इकट्ठे करो कि नीम मीठी है; वह कहेगा, होंगे तुम्हारे प्रमाण ठीक, प्रमाणों की तुम जानो, मगर मैं नीम को जानता हूं, मैंने अनुभव किया है, नीम मीठी नहीं है।
अनुभव के अतिरिक्त और कोई बात निर्णायक नहीं है। और अनुभव आसान हैं, विचार कठिन है। क्योंकि विचार के सिलसिले का कोई अंत नहीं होता, चलता ही जाता है। एक विचार से दूसरे विचार की शाखाएं निकलती रहती हैं, शाखाओं में से प्रशाखाएं और विचार का जाल फैलता चला जाता है। और फिर एक दिन तो तुम इसकी इतनी मुश्किल में पड़ जाओगे कि विचार का निष्कर्ष लेना तो दूर, अब इस विचार के उपद्रव से वापस कैसे लौटें? इतना जाल फैला लिया, अब इसे कैसे सिकोड़े?
नहीं, मेरी बातें सुन कर परमात्मा लगे, इसका कोई मूल्य नहीं है। मुझे अनुभव करो, मेरी उपस्थिति को अनुभव करो। यहां बैठे लोगों के आनंद, शांति को, प्रीति को अनुभव करो। यहां नाचते हुए लोगों के नाच को अपने भीतर उतरने दो। यहां गीत गाते लोगों का गीत तुम्हारे कानों पर पड़े, तुम्हारे हृदय पर चोट करे, तो शायद।

इन वृक्षों से पूछो। ये चुपचाप धूप में खड़े हुए वृक्ष! आकाश से पूछो सूरज से पूछो। सूरज निकला है और तुम पूछते हो कि सूरज का प्रमाण क्या है? तो हम यही कहेंगे कि आंख खोलो और देखो, और कोई प्रमाण नहीं है। सूरज निकला है और तुम पूछते हो कि सूरज का प्रमाण क्या है? इससे सिर्फ एक ही बात सिद्ध होती है कि या तो तुम अंधे हो और या फिर तुमने आंख बंद कर रखी है। और दूसरी ही बात सच है। अंधा कोई पैदा ही नहीं होता। आध्यात्मिक अर्थो में कोई अंधा पैदा नहीं होता। आध्यात्मिक अर्थो में हम केवल बंद किए हैं आंख और अपने आप को अंधा मान बैठे हैं।
दहके हैं डाल पर
अंगार या सुमन
सुलगा पलाशवन
पीला रूमाल बांध गेंदा तो छैला है
सरसों को छेड़ रहा अलसी तक फैला है
गेहूं की बाल पर
कसता प्रणय-वचन
मन मथ रहा मदन
मौसम का आम्र-मुकुट कलगी है मौरों की कोयल का सौहर है, शहनाई भौरों की
मन की चौपाल पर
यह रूप की दुल्हन--
--का प्यार से वरण
कमल-कुंज या अफीम के खिलते फूलों पर किसको आपत्ति हुई मनपसंद भूलों पर गदराए गाल पर
ये फागुनी फबन
सब सुनहरे सपन
रंगों में सब भीगे तू ही क्यों कोरा है
जो न छुए भीतर तक फाग वह छिछोरा है
शिकनें क्यों भाल पर
हैं क्यों भरे नयन
मेरे उदास मन
इतना ही पूछो। तुम्हारा चित्त बड़ा उदास होगा। तुम्हारा चित्त बड़ा दुविधाग्रस्त होगा। तुम्हारा चित्त विक्षिप्त होगा, जो परमात्मा का प्रमाण मांगने चला है। यह रोग का लक्षण है। स्वस्थ चित्त को तो प्रमाण दिखाई पड़ता ही है! परमात्मा ही दिखाई पड़ता है और कोई दिखाई नहीं पड़ता! दहके हैं डाल पर अंगार या सुमन! जरा पूछो तो, फूलों से पूछो! सुलगा है पलाशवन! सारा जंगल पलाश के फूलों से लदा हुआ है--और तुम पूछते हो, सौंदर्य कहां? पीला रुमाल बांध गेंदा तो छैला है! जरा छैले से पूछो, इस गेंदे से पूछो! पीला रुमाल बांध गेंदा तो छैला है
सरसों के छेड़ रहा अलसी तक फैला है
गेहूं की बाल पर
कसता प्रणय-वचन
मन मथ रहा मदन
चारों तरफ प्रेम का एक अपूर्व रास रचा हुआ है! सब तरफ तीर छोड़े जा रहे हैं प्रेम के! फूलों से फूलों पर, पक्षियों से पक्षियों पर, पशुओं से पशुओं पर, तारों से तारों पर! इन तीरों को अनुभव करो, इन तीरों की प्यारी चुभन को अनुभव करो!
मौसम का आम्र-मुकुट कलगी है मौरों की
कोयल का सौहर है शहनाई भौरों की
मन की चौपाल पर
यह रूप की दुल्हन--
--का प्यार से वरण!

यह चारों तरफ... ये रूपायित लोग, यह रूपमग्न अस्तित्व, यह मस्त प्रकृति... ! और तुम पूछते हो परमात्मा का प्रमाण क्या है!
जीसस से किसी ने पूछाः हम क्या करें? तो जीसस ने कहाः पूछ लो मछलियों से। खड़े होंगे झील पर। कहाः पूछ लो लोमड़ियों से। भागती होंगी लोमड़ियां झील के तट पर।... कि पूछ लो फूलों से। मुझसे क्यों पूछते हो?
फूल क्या कर रहे हैं? प्रतिपल आराधना में लीन हैं। प्रतिपल अर्चना में डूबे हैं। मछलियां क्या कर रही हैं? मार रही हैं डुबकी सागर में, डुबकी पर डुबकी! और हम भी परमात्मा के सागर की मछली हैं, उसके तट पर खिले फूल हैं। हमारे भीतर भी वही मुनष्य का रूप लिया है। जो गुलाब में गुलाब है और गेंदे में गेंदा है वही हम में मनुष्य है। वह जो गेंदे में पीला है और गुलाब में लाल है, वही तो हममें खिला है, हम भी तो उसी के फूल हैं!
पीला रुमाल बांध गेंदा तो छैला है
सरसों को छेड़ रहा अलसी तक फैला है
गेहूं की बाल पर
कसता प्रणय-वचन
मन मथ रहा मदन
मौसम का आम्र-मुकुट कलगी है मौरों की कोयल का सौहर है, शहनाई भौरों की
मन की चौपाल पर
यह रूप की दुल्हन--
--का प्यार से वरण
सुनो शहनाई चारों तरफ बज रही है उसी की! कमल-कुंज या अफीम के खिलते फूलों पर
किसको आपत्ति हुई मनपसंद भूलों पर
गदराए गाल पर
ये फागुनी फबन
सब सुनहरे सपन
रंगों में सब भीगे, तू ही क्यों कोरा है
मैं तुमसे यही पूछता हूं। तुम तर्क पूछते, प्रमाण पूछते! होली आ गई, फाग आ गई, लोगों ने पिचकारियों में रंग भर लिए--और तुम अभी प्रमाण पूछ रहे हो कि रंग होते हैं या नहीं! भरो पिचकारी, खेलो फाग!
रंगों में सब भीगे तू ही क्यों कोरा है
जो न छुए भीतर तक फाग वह छिछोरा है
शिकनें क्यों भाल पर
हैं क्यों भरे नयन
मेरे उदास मन
तर्क की आकांक्षा उदास चित्त से उठती है, रुग्ण चित्त से उठती है। प्रमाण मांगता ही वही है जिसने आंख बंद कर रखी है; जिसने चित्त के ऊपर चट्टानें रख छोड़ी हैं; जो चित्त के रस-झरने को बहने नहीं देता है। नहीं तो परमात्मा ही परमात्मा है। तुम ऐसा नहीं पूछोगे कि परमात्मा के लिए क्या प्रमाण है। तुम उलटी ही बात पूछोगे। तुम पूछोगे कि प्रमाण तो इतने हैं, परमात्मा कहां है? अभी तुम पूछते हो कि प्रमाण बिल्कुल नहीं है? परमात्मा कहां है? जो आंख खोल कर देखोगे तो पूछोगेः प्रमाण ही प्रमाण हैं, द्वार-द्वार प्रमाण ही प्रमाण हैं, परमात्मा कहां है? जिसके इतने प्रमाण हैं, वह छिपा कहां है? कैसे छिपा होगा?
लो खिले उमर के फूल
समर्पित होने का उल्लास
महक उठा है मन का महुआ
मैं अपनी सौरभ से पागल
पंख रेशमी फूटे तन को
अंगों में बिखरा पराग-दल टेसू-सी दहकी देह
यही पहला यौवन मुधमास

केश गूंथ देती है मावस
पूनम मल जाती है उबटन
शाम सुबह मेहंदी रच देती मलयानिल सांसों में चंदन घन देते काजल आंज
नयन में सिमटा है आकाश
मौन समर्पण का सुख पावन
उत्सर्गो का मधुरिम उत्सव
आग्रह भरा निवेदन मन का
बरसे आज प्रणय का आसव
अब सपनों का नैपथ्य
दे रहा प्रियतम का आभास
तुम.जरा सजग हो जाओ। तर्क मत मांगो, थोड़ा चैतन्य मांगो! तुम जरा होश
से भर जाओ।
अब सपनों का नैपथ्य
दे रहा प्रियतम का आभास!
और तुम्हें जगह-जगह से उसी के चरण-चिह्न सुनाई पड़ने लगेंगे। हर चरण-चिह्न में उसी का चरण-चिह्न दिखाई पड़ने लगेगा।
नहीं, तर्क नहीं है; जरा और अमूर्च्छा चाहिए, होश चाहिए। ध्यान चाहिए, तर्क नहीं। ध्यान चाहिए, प्रमाण नहीं। थोड़ी और प्रीति चाहिए। और सघन प्रीति चाहिए। रंगों में सब भीगे, तू ही क्यों कोरा है!
तुम पूछते होः "फिर भी मन प्रमाण मांगता है। परमात्मा का प्रमाण क्या है?"
परमात्मा है, प्रमाण कोई भी नहीं है। मैं कोई दर्शनशास्त्री नहीं हूं, न कोई धर्मशास्त्री हूं, न ही मैं परमात्मा के लिए प्रमाण जुटाता हूं। मैं तो परमात्मा को ही तुम्हारे लिए उपलब्ध कराता हूं। सीधे-सीधे। ऐसे उधार-उधार क्यों, बासे-बासे क्यों, ऐसे उलटी तरफ से कान को क्यों पकड़ना! यूं पीछे के दरवाजों से क्यों घुसना, जब कि मंदिर ने मुख्य द्वार पर स्वागत के तोरण बांधे हैं, बंदनवार सजाई है, शहनाई बजाई है। जब कि निमंत्रण मिला है तो चोरों की तरह प्रवेश क्यों?
नहीं, मैं कोई प्रमाण नहीं देता। लेकिन एक ऊर्जा का क्षेत्र जरूर यहां निर्मित हो रहा है, जिसमें डूबोगे तो प्रमाण ही प्रमाण मिल जाएंगे-- इतने की इकट्ठे भी करना चाहोगे तो कर न पाओगे।
जो यहां प्रमाण मांगने आया है, खाली लौट जाएगा। हां, हो सकता है उसे मेरी बातें अच्छी लगें, मगर अच्छी बातों का क्या मूल्य? अच्छी बातों का उतना ही मूल्य है जैसे पाकशास्त्र में लिखे हुए सुस्वादु भोजनों के संबंध में कोई पढ़े, खूब पढ़े; मगर भूख न भरेगी ऐसे। कि जल के सरोवर की तस्वीर को खूब ध्यान मग्न होकर देखे, प्यास न बुझेगी ऐसे। जीवंत संस्पर्श चाहिए। सुनते हो इन पक्षियों की आवाजों को! इनमें है प्रमाण। आंख खोलो, प्रकृति को निहारो और तुम रत्ती-रत्ती पर, कण-कण पर उसी के हस्ताक्षर पाओगे। उसके ही हस्ताक्षर हैं!
परमात्मा सृजन की अनंत ऊर्जा है। जो है उससे है। जो है उसके द्वारा है। जो है उसमें है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! कल आपने बताया कि प्रेम नीचे गिरे तो वासना बन जाता है और ऊपर उठे तो प्रार्थना।
ओशो, मेरे लिए वासना कई अर्थो में स्पष्ट है, और प्रार्थना का विषय भी अपने आप में स्पष्ट है। लेकिन इन दोनों के बीज प्रेम में मैं एक धुंधलापन और अस्पष्टता पाता हूं।
ओशो, कृपा करके कहें कि मुझमें प्रेम का यह धुंधलापन क्या है और क्यों है?

योग चिन्मय! प्रेम तो धुंधला होगा ही, क्योंकि प्रेम रहस्य है। वासना स्पष्ट होगी और प्रार्थना भी स्पष्ट होगी। प्रेम तो दोनों का मध्य है। प्रेम तो तरल अवस्था है। न तो प्रेम वासना है और न प्रेम प्रार्थना है, प्रेम दोनों के मध्य की कड़ी है; संक्रमण का काल है। संक्रमण का काल तो धुंधला होगा ही, अनिवार्यतया धुंधला होगा। तुम्हारे लिए ही ऐसा है, ऐसा नहीं; सभी के लिए ऐसा है।
वासना तो साफ है। मिट्टी की पकड़ है। पर के ऊपर शिकंजा है। प्रकृति की दौड़ है। जीवविज्ञान की तुम्हारे ऊपर अंधी जकड़ है। सब साफ-साफ है। वासना में कुछ उलझा हुआ नहीं है। वासना गणित जैसी साफ है।
और प्रार्थना भी साफ है। क्योंकि वासना है पदार्थ के लिए, प्रार्थना
है परमात्मा के लिए; दोनों का विषय स्पष्ट है। एक तीर जा रहा पदार्थ की तरफ; उसका लक्ष्य भी साफ है। एक तीर जा रहा है परमात्मा की तरफ; उसका भी लक्ष्य साफ है। लेकिन प्रेम का तीर कहीं भी नहीं जा रहा--न पदार्थ की तरफ, न परमात्मा की तरफ। प्रेम का तीर अभी तूणीर में है। इसलिए अड़चन होती है कि यह प्रेम के तीर का प्रयोजन क्या है? इसका लक्ष्य क्या है? और लक्ष्य साफ न हो तो प्रेम अस्पष्ट रह जाता है, धुंधला-धुंधला रह जाता है। लगता तो है कुछ है, मगर क्या है, ठीक-ठीक मुट्ठी नहीं बंधती, तराजू पर नहीं तुलता, नाप-जोख में नहीं आता। वासना भी नाप-जोख में आ जाती है।
इसलिए इस जगत में भोगी भी स्पष्ट है और त्यागी भी स्पष्ट है। दोनों के गणित बिल्कुल सुसंबद्धित, सुरेखाबद्ध हैं। कवि अस्पष्ट है। कवि तरल है, कवि ठोस नहीं है। कवि दोनों के मध्य है।
अगर विज्ञान वासना है तो धर्म प्रार्थना है और काव्य प्रेम है। लेकिन जिसे भी वासना से प्रार्थना तक जाना हो उसे प्रेम की घड़ी से गुजरना ही होगा।
एक स्त्री अभी गर्भवती नहीं है, सब स्पष्ट है। फिर एक दिन उसको बच्चा पैदा हो जाएगा, मां बन गई, तब भी सब स्पष्ट हो जाएगा। लेकिन दोनों के मध्य में वह जो नौ महीने का गर्भ है, सब अस्पष्ट रहेगा, धुंधला-धुंधला रहेगा। कुछ-कुछ एहसास भी होगा कि है, मगर कौन है? बेटा होनेवाला है कि बेटी होनेवाली है? सुंदर होगा, असुंदर होगा? बुद्धू होगा, बुद्धिमान होगा? काला होगा, गोरा होगा? सब अस्पष्ट है? कुछ पकड़ में नहीं आता।
प्रेम की अवस्था गर्भ की अवस्था है। वासना प्रार्थना बनने के मार्ग
पर जब चलती है तो यह पड़ाव आता है। यह पड़ाव शुभ है। घबड़ाओ मत।
और हर चीज को स्पष्ट करने की जरूरत भी क्या है? कुछ तो अस्पष्ट रहने दो! यह हमें कैसा पागलपन पकड़ा है... सारी दुनिया का पकड़ा है, कि हर चीज स्पष्ट होनी चाहिए! एक महान रोग आदमी को सता रहा है कि हर चीज को स्पष्ट करो। और जो चीज स्पष्ट न होती हो वह हमको इतनी बेचैनी देती है कि बजाए इसके हम स्वीकार करने के कि वह अस्पष्ट है, यही स्वीकार करना पसंद करेंगे कि वह है ही नहीं।
इसलिए बहुत-से तथ्यों को विज्ञान ठुकराता है। ठुकराने का कारण यह नहीं है कि वे तथ्य नहीं हैं और कारण यह भी नहीं है कि उन तथ्यों की प्रतीति नहीं होती विज्ञान को। मगर मजबूरी यह है कि वे स्पष्ट नहीं होते; धुंधले-धुंधले हैं। और विज्ञान जब तक स्पष्ट न हो जाए, कोई चीज पकड़ेगा नहीं। स्पष्टता के लिए उसने कसम खा रखी है। उसने एक आबद्धता मान रखी है, एक कमिटमेंट, प्रतिबद्ध हो गया है--कि स्पष्ट तो होना ही चाहिए। उसने स्पष्टता की बलिवेदी पर सब कुछ चढ़ा दिया है। तो जो स्पष्ट नहीं है, वह इंकार कर देना है।
प्रेम बड़ी अस्पष्ट घटना है--रहस्यपूर्ण, धुंधली-धुंधली, तरल। रूप उसके बदलते हैं, रोज-रोज बदलते हैं, प्रतिपल बदलते हैं। सिर्फ आभास ही अनुभव होता है। एक छाया मात्र अनुभव होती है।
योग चिन्मय, यह तुम्हारी ही कठिनाई नहीं है, यह उन सभी साधकों की कठिनाई है जो वासना से प्रार्थना की तरफ चलेंगे। और सभी को चलना है, क्योंकि सभी वासना में पैदा हुए हैं और सभी को प्रार्थना पर पहुंचना है। बीच में यह पड़ाव आएगा--जब वासना छूट गई और प्रार्थना अभी आई नहीं। वह जो

बीच का रिक्त स्थान है, उस रिक्त स्थान को सहने का नाम ही तपश्चर्या है। उस रिक्त स्थान में धैर्य रखना ही तपश्चर्या है।
उस रिक्त स्थान में भी शांत बने रहना, अनुद्विग्न, अति आकांक्षा न करना स्पष्टता की, क्योंकि अगर अति आकांक्षा करोगे स्पष्टता की, तो संभव है, वापस लौट जाओगे। वासना में वापस गिर जाओगे। क्योंकि वासना ही परिचित है। फिर स्पष्ट हो जाएंगी सब बातें। प्रार्थना तो बिल्कुल अपरिचित है, अज्ञात लोक है। लेकिन अगर कोई धैर्यपूर्वक प्रेम के गर्भ में नौ महीने रह जाए तो उसका एक नया जन्म होता है, प्रार्थना का जन्म होता है, भक्त का आविर्भाव होता है।
और प्रार्थना फिर स्पष्ट है, सब स्पष्ट है; खुली सूरज की धूप में, जैसे
सब स्पष्ट है, ऐसा सब स्पष्ट है। कुछ भी छिपा नहीं, कुछ भी अस्पष्ट नहीं। हालांकि तुम कह न पाओगे, इतना भेद है। वासना की स्पष्टता ऐसी है कि कही जा सकती है; प्रार्थना की स्पष्टता ऐसी है कि तुमसे इतनी बड़ी है कि तुम न कह पाओगे। यह मत सोचना कि बुद्ध ने नहीं कहा, इसलिए उन्होंने नहीं जाना। जाना तो जरूर, लेकिन कहा नहीं। क्योंकि जानना जाननेवाले से बड़ा था। इसलिए चुप रह गए।
वासना को बड़े मजे से कहा जा सकता है, कोई भी कह सकता है। पशु-पक्षी भी निवेदन कर देते हैं, आदमी की तो बात ही छोड़ दो। वासना के निवेदन में लगता ही क्या है; कोई बड़ी कला, कोई बड़ी कुशलता, कोई प्रतिभा, कोई बहुत बुद्धिमान होना आवश्यक नहीं है। बुद्धू भी अपनी वासना प्रकट कर देते हैं। वासना बड़ी छोटी है, क्षुद्र है। प्रार्थना विराट है, आकाश जैसी है। प्रकट न कर सकोगे, लेकिन यह ध्यान रखना कि प्रार्थना स्पष्ट पूरी हो जाती है।
जब तुम आकाश की तरफ देखते हो तो क्या तुम सोचते हो आकाश स्पष्ट नहीं है? स्पष्ट है, लेकिन किस शब्द में समाओ इसे? जब करोड़-करोड़ तारों के सौंदर्य को तुम देखते हो तो क्या कुछ अस्पष्ट है? सब स्पष्ट है। और स्पष्ट ज्यादा क्या होगा? मगर कैसे बांधो इसे, कैसे कहो? इसका निर्वाचन कैसे हो, व्याख्या कैसे हो? जबान लड़खड़ा जाती है। स्वाद इतना बड़ा है कि जबान लड़खड़ा जाती है। वासना भी स्पष्ट, क्षुद्र; प्रार्थना भी स्पष्ट, विराट। प्रेम अस्पष्ट है। प्रेम मध्य में है--न इधर, न उधर।
इसलिए योग चिन्मय, ऐसा मत सोचना कि यह धुंधलापन तुम्हें ही अनुभव हो रहा है। इसको अकारण ही अपनी समस्या मत बना लेना। यह सबकी समस्या है। और धन्यभागी हैं वे जिन्हें यह समस्या अनुभव होती है। अधिक को तो यही लगता है कि वासना सब कुछ है। और ऐसा भी नहीं है कि ये वासना से ग्रस्त लोग प्रार्थना न करते हों; मगर इनकी प्रार्थना झूठी है, इनका मंदिर औपचारिक है। ये कभी-कभी प्रार्थना भी कर आते हैं, मगर इनकी प्रार्थना भी वासना का ही एक नाम है। प्रार्थना के बहाने भी परमात्मा से कुछ मांग आते हैं--कि यह दे देना, वह दे देना, कि नौकरी मिल जाए कि धन मिले कि पद मिले कि प्रतिष्ठा मिले। इनकी प्रार्थना भी वासना का ही प्रच्छन्न रूप है। इनको कुछ पता नहीं है। ये अभागे हैं।
इस संसार में जिसने वासना को ही जाना, मांगना ही मांगना जाना, उससे बड़ा अभागा कोई भी नहीं, क्योंकि वह भिखमंगा है। उसकी स्थिति बड़ी दयनीय है। उसे कभी अपने सम्राट होने का अनुभव नहीं हो पाता। सम्राट होने का अनुभव तो प्रार्थना में होता है, क्योंकि प्रार्थना में भक्त भगवान से भिन्न नहीं रह जाता, एक हो जाता है।
वासना में प्रेमी और प्रेयसी क्षण भर को मिलते हैं, क्षुद्र है मिलन
और फिर लंबा बिछोह है, फिर विषाद है। प्रार्थना में मिलन हुआ सो हुआ-- महामिलन है! फिर कोई विरह नहीं, फिर कोई भेद नहीं; अभिन्नता सध जाती है, एकता सध जाती है। अहं ब्रह्मास्मि! तभी कोई घोषणा कर पाता हैः अनलहक! मैं ही परमात्मा हूं!
दोनों के बीच में प्रेम है। प्रेम ऐसा तीर है, जो कहीं भी नहीं जा रहा--
न वासना की दिशा में, न प्रार्थना की दिशा में। ठहरा हुआ तीर है। और निश्चित ही ठहरे हुए तीर को देखकर तुम्हारे मन में सवाल उठेगाः यह कहां जाना चाहता है, क्या है इसका स्वभाव क्या है? इसका लक्ष्य है, गंतव्य क्या

है? हजार प्रश्न उठेंगे और कोई उत्तर न आएगा। इस तीर को चलाना मत, क्योंकि चलाया कि तुम वासना में ही चला लोगे। इस तीर को रुके रहने देना। घबड़ाहट क्या है, जल्दी क्या है? थोड़ा धीरज सीखो।
इस सदी में एक चीज खो गई है, सबसे बड़ा गुण अगर खो गया है आदमी का तो वह
है धीरज। एक बड़ी आतुरता है; सब चीजें जल्दी-जल्दी हो जानी चाहिएं, अभी हो जानी चाहिए।
लोग ध्यान भी करने आते हैं तो कहते हैंः एक सप्ताह में हो जाएगा कि दो सप्ताह रुकना पड़ेगा? जैसे दो सप्ताह रुक कर वे मेरे ऊपर कोई अनुकंपा कर रहे हों! ध्यान और तुम दिनों में पूछते हो! हिम्मतवर लोग रहे होंगे पुराने दिनों के, वे जन्मों की भाषा में पूछते थे--कितने जन्मों में होगा? एक जन्म का तो काई सवाल ही न था--कितने जन्मों में होगा ध्यान? हिम्मतवर लोग रहे होंगे। बड़ी छाती रही होगी उनकी।
आज के आदमी के पास छाती तो है ही नहीं। वह तो जैसे इंसटेंट काफी है, अभी बन जाए--ऐसा ही सोचता है, कुछ इंसटेंट ध्यान हो अभी हो जाए। कोई हाथ में ऐसी तरकीब लगे कि बस बिना कुछ किए हो जाए। समय न लगे, शक्ति न लगे। और सबसे बड़ी कठिनाई है कि प्रतीक्षा न करनी पड़े।
प्रतीक्षा खो गई है। और जिस दिन प्रतीक्षा खो जाती है उस दिन परमात्मा खो जाता है। क्योंकि प्रतीक्षा के ही पात्र में परमात्मा उतरता है।
तो योग चिन्मय, प्रार्थना को प्रतीक्षा का अवसर दो। प्रेम उठ रहा है, जल्दी न करो समझने की। समझने की जरूरत ही क्या है? चिन्मय की आदत है, खराब आदत है--हर चीज को व्यवस्थित कर लेने की आदत है। अगर दस पैसे भी खर्च करते हैं तो उसको डायरी में लिखते हैं। बिना लिखे नहीं मानते। लिखते ही रहते हैं। ज्यादा समय इसी में जाता है उनका। फिजूल की बातें लिखते रहते हैं। अच्छे शोधकर्ता हो सकते थे, किसी विश्वविद्यालय में पीएच. डी. और डी. लिट. मिलता उनको। वे बिल्कुल गलत जगह में आकर पड़ गए हैं यहां। इसी तरह के लोग पीएच. डी. और डी. लिट. होते हैं--जो लिखते ही रहते हैं, कुछ भी लिखते रहते हैं। वे कोई किताब पढ़ते हैं तो पढ़ते कम हैं, ऐसा मालूम पड़ता है, लेकिन नोट्स ज्यादा लेते हैं। पीछे कभी काम पड़ेंगे। टिप्पणियां लिखते रहते हैं। छोटी-मोटी बात की भी!
ऐसे भूल-चक्र से कुछ कागज एक बार मेरे हाथ में लग गए तो मैं भी चकित हुआ कि ये चिन्मय यह कौन सा काम कर रहे हैं! अब दस पैसे खर्च ही हो गए, इसमें लिखना क्या है? मगर एक वृत्ति है। और कई जगह ऐसी वृत्ति का बड़ा उपयोग होता है--दुकानदारी में बड़ा उपयोग होता है! हिसाब-किताब की दुनिया में शोधकर्ताओं की दुनिया में इसका बड़ा उपयोग होता है। वहां काम ही यही है कि बस लिखते रहो, इस तरह की कुछ भी छोटी-छोटी बातें इकट्ठी करते रहो, फिर इतनी इकट्ठी कर लो कि कोई पढ़ न सके, तो उस पर डी. लिट. मिलती है। क्योंकि पढ़ने की कौन झंझट करे, तुम डी. लिट. लो! विश्वविद्यालयों में जो शोध पर ग्रंथ लिखे जाते हैं, उनको कोई पढ़ता है? कोई भी नहीं पढ़ता, किसको फुरसत है, किसको प्रयोजन है?
तो प्रेम से उनको अड़चन हो रही होगी, चिन्मय को, कि यह जो प्रेम है इसको साफ-साफ कैसे नोट करें? किस ढंग से लिखें? इसकी ठीक-ठीक व्याख्या और निर्वचन होना चाहिए।
यह तुम न कर पाओगे। यह होता ही नहीं। यह हो ही नहीं सकता। इस प्रेम को अनुभव करो। इसमें नाचो, इसमें डोलो। इसको तुम्हारे भीतर गुनगुनाने दो। जैसे भौंरा गुनगुन करे, ऐसा इसे गुनगुनाने दो। जल्दी मत करो। पूछो भी मत-- कहां जा रहे हो, क्या लक्ष्य है, क्या गंतव्य है, क्या पाओगे, क्या नहीं पाओगे? कुछ भी मत पूछो। इस भौंरे को गुनगुन करने दो। कहीं भी मत जाने दो। एक घड़ी ऐसी है जब यह बिल्कुल ऐसा ही गुनगुन करता रहेगा बिना किसी कारण के। एक सुनिश्चित शक्ति इकट्ठी हो जाएगी जब, तब यह उड़ान भरेगा।
जैसे हवाई जहाज उड़ता है न, आकाश में तो पहले तो जमीन पर चलता है, एकदम
से आकाश में नहीं उड़ जाता। तेजी से चलता है, रन-वे पर तेजी से भागता है। फिर एक जगह जाकर रुक जाता है। वही रुकने की घड़ी बड़ी महत्वपूर्ण है। फिर रुक कर

उसका इंजिन और जोर-जोर से गति करने लगता है। उस वक्त अगर तुम पायलेट से पूछो कहां जा रहे हैं हम, तो वह कहेगाः अभी कहीं नहीं जा रहे हैं, अभी जमीन पर हैं। कुछ लोग घबड़ाहट में उसी वक्त समझते हैं कि बस उड़ गए आकाश में। मुल्ला नसरुद्दीन गया था यात्रा को। जब काफी इंजिन जोर-जोर से भर्र-भर्र, भर्र-भर्र करने लगा, तो उसने सोचाः पहुंच गए! घबड़ाहट की वजह से आंख बंद रखे था। आंख खोल कर उसने नीचे देखा, तीन बड़ी छोटी-छोटी चीजें चींटियां मालूम पड़ती थीं। तो उसने अपने पड़ोसी से कहाः मालूम होता है, बहुत ऊपर उड़ आए, आदमी चींटियों जैसे मालूम हो रहे हैं!
उस आदमी ने कहाः ये आदमी नहीं, चींटियां ही हैं! अभी कहीं उड़े-करे नहीं हैं। फिर यह इंजिन इतने जोर से क्यों चल रहा है? वह पूछने लगा।
एक त्वरा लेनी पड़ती है। एक मूमेंटम चाहिए। एक खास गति पर आकर, जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है, ऐसे इंजिन एक खास त्वरा लेता है और उस त्वरा पर ही छलांग मार सकता है।
ऐसे ही प्रेम एक त्वरा लेता है प्रतीक्षा में। भनभन होगी, गुनगुन होगी। ऊर्जा इकट्ठी होती रहेगी। वासना में ऊर्जा का क्षय है। इसलिए वासना से जब तुम मुक्त होओगे तो ऊर्जा को इकट्ठा करने के लिए थोड़ा समय देना होगा। वासना में ऊर्जा का अधोगमन है। इसके पहले कि ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन शुरू हो, तुम्हें बीच में एक अवसर देना होगा, जब ऊर्जा संगृहीत हो जाए, एक सरोवर बन जाए। और ऊर्जा उठती जाए, उठती जाए, उठती जाए, एक घड़ी आएगी ऐसी जब तुम अचानक पाओगे कि वायुयान आकाश में उठ गया! वासना की पृथ्वी से छूट गए, प्रार्थना का आकाश मिल गया। मगर मध्य में एक प्रतीक्षा थी। उस प्रतीक्षा से बचना मत। और उस प्रतीक्षा को जल्दी ही समझने का भी उपाय मत करना, अन्यथा भूल हो जाएगी।
यह शुभ घड़ी है कि तुम प्रेम के अनिर्वचनीय रहस्य को अनुभव कर रहे हो। होने दो संगृहीत, शीघ्र ही प्रार्थना का भी जन्म सुनिश्चित है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! अकेलापन इतना महसूस हो रहा है कि घबड़ा जाती हूं और उदासी घेर लेती है। क्या करूं? प्रभु, मार्ग-दर्शन करें!

धर्म भारती! अकेलापन हमारी आत्यंतिक नियति है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। अकेले हम हैं और बचने की जितनी हम चेष्टाएं करते हैं, वही तो संसार है। और बचने की चेष्टाएं सब व्यर्थ हो जाती हैं, वही तो वैराग्य है। और जब हम बचने की सारी चेष्टाएं छोड़ देते हैं, वही तो ध्यान है!
अकेले हम हैं और चाहते हैं कि अकेले न हों, यहीं से भूल शुरू होती है। क्यों? अकेले होने में क्या कठिनाई है? अकेले होने में बेचैनी क्या है? अकेले होने में भय क्या है? अकेले होने में बुराई क्या है? अकेले होने में दुख तुमसे किसने कहा है? जानने वाले तो कुछ और कहते हैं। पूछो नानक से, कबीर से, मलूक से। पूछो दूलनदास से। जानने वाले तो कुछ और कहते हैं। जानने वाले तो कहते हैं कि उस परम एकांत में ही आनंद की वर्षा होती है! अमृत के मेघ झरते हैं! हजार-हजार सूरज निकलते हैं! उस परम एकांत में ही!
लेकिन आदमी भाग रहा है, भाग रहा है; अकेले से डर रहा है। हमें बचपन से
ही अकेले होने का भय पकड़ा दिया गया है। किसी बच्चे को मां-बाप अकेला नहीं छोड़ते; कोई न कोई मौजूद होना चाहिए। और मां-बाप को जरा भी ख्याल नहीं कि बच्चा नौ महीने तक पेट में बिल्कुल अकेला था, एक बार भी नहीं रोया! एक बार भी चीख-पुकार नहीं मचाई। एक बार भी नहीं कहा कि मुझे बहुत डर लगता है। नौ महीने बिल्कुल अकेला था; अकेला ही नहीं था, गहन अंधकार में था; वहां सूरज की एक किरण भी नहीं जाती।
मगर मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वे नौ महीने ही बच्चे के जीवन में सर्वाधिक आनंद के दिन थे और उन्हीं की याद के कारण आदमी मोक्ष की तलाश करता है। मनोविज्ञान की तो यह व्याख्या है मोक्ष की तलाश की--कि वे जो नौ महीने बच्चे ने जाने हैं--परम एकांत, शांति के और विराम के--उनकी स्मृति उसका पीछा करती है। उसके अचेतन में अब भी वह याद सरकती है। वे सुखद क्षण अब

भी उसकी स्मृति में डोलते हैं। वह सुवास अभी भी उसको घेरे रहती है। और वह उसी की तलाश कर रहा है।
मनोवैज्ञानिकों के हिसाब से तो मोक्ष की खोज गर्भ के एकांत, शून्य, शांत, विराम की खोज है। मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं, कि आदमी जो सुंदर-सुंदर घर बनाता है वे भी उसी गर्भ की आकांक्षा में बनाए जाते हैं। अच्छा मकान बनाते हैं। अच्छा कमरा बनाते हैं। उसमें खूब फर्नीचर सजाते हैं, गद्दे-गद्दियां लगाते हैं। जितना भी स्वागत करता हुआ मालूम पड़े, जितना ही विश्रामपूर्ण हो, उतना ही अच्छा लगता है।
अमरीका में तो एक नया प्रयोग चल रहा है, जिसमें एक जो प्रयोग महत्वपूर्ण है... मशीनें अगले महीने तक यहां भी आ जाएंगी और यहां भी ध्यानी उसको शुरू करेंगे। महत्वपूर्ण प्रयोग है! इस सदी में जो ध्यान की नई से नई प्रक्रियाएं खोजी गई हैं, उनमें से एक है। एक टैंक बनाया है। वैज्ञानिकों ने--ठीक गर्भ के आधार पर। उसको जमीन के नीचे गड़ा देते हैं। गहन अंधकार होता है उसमें। साउंड-प्रूफ होता है। उसमें कोई आवाज बाहर से भीतर नहीं आती। उसमें जो जल होता है वह ठीक वैसा ही रासायनिक होता है जैसा मां के पेट में जो जल होता है जिसमें बच्चा तैरता है। मां के पेट में जो जल होता है उसमें इप्सम साल्ट की इतनी मात्रा होती है कि बच्चा डूब नहीं सकता।
जैसे तुमने सुना होगा यूरोप में "डेड सी" सागर है। उसको इसलिए मुर्दा सागर कहते हैं कि उसमें कोई डूब नहीं सकता। उसमें मछली भी नहीं होती, क्योंकि मछली भी डूब नहीं सकती उसमें। मछली को होने के लिए डूबना तो जरूरी है, वह पानी के भीतर रहेगी। उसमें कोई डूब ही नहीं सकता। उसमें इप्सम सॉल्ट की इतनी मात्रा है कि तुम बिना तैरनेवाले को फेंक दो तो भी उसके ऊपर ही उतराता रहेगा। शरीर से पानी का वजन ज्यादा है। शरीर हल्का पड़ जाता है। मां के पेट में इप्सम सॉल्ट की इतनी मात्रा होती है कि छोटा-सा बच्चा नहीं तो कभी का डुबकी खा जाए। पेट में पानी ही पानी भरा रहता है। वह जो मां का पेट इतना बड़ा दिखाई पड़ता है, उसमें तुम यह मत सोचना कि इतना बड़ा बच्चे की वजह से दिखाई पड़ता है। उसमें बड़ा कारण तो पानी का भरा होना है।
और तुमने देखा, जब स्त्रियां गर्भवती होती हैं तो नमक ज्यादा खाने लगती हैं! उनको नमकीन चीजें पसंद आने लगती हैं। उसका कुल कारण इतना है कि वह पानी जो भीतर पेट में भरा है उसको नमक ही नमक चाहिए। जितना नमक मिल सके उतना अच्छा। यहां तक हालतें हो जाती हैं कि स्त्रियां दीवालों का चूना निकाल कर खाने लगती हैं, मिट्टी खाने लगती हैं--सौंधी मिट्टी जिसमें थोड़ा- नमकीन स्वाद होता है। गांव की स्त्रियां तो अक्सर खेत की मिट्टी खा लेती हैं।
उस टैंक में ठीक उतनी ही मात्रा में रासायनिक द्रव्य होते हैं जितने मां के पेट में होते हैं। उस टैंक में आदमी को छोड़ देते हैं। उसमें तुम डूब नहीं सकते। तुम लाख उपाय करो तो नहीं डूब सकते। उसमें तुम तैरते ही रहते हो। और गहन अंधकार और तुम्हारी नाक से बस एक नली जुड़ी रहती है, जैसे मां के पेट में तुम मां से जुड़े रहते हो श्वास लेने के लिए। ऐसे ही बस एक नली जुड़ी रहती है, जिससे आक्सीजन आता रहता है। इस टैंक में घंटे दो घंटे रहने पर अपूर्व अनुभव होते हैं--शांति के, शून्य के, देह-रहितता के। उस टैंक का नाम ही उन्होंने रखा है--समाधि टैंक। उसके लिए कोई और अच्छा नाम मिला भी नहीं, पश्चिम की भाषा में है भी नहीं कोई और अच्छा नाम। उस टैंक में कुछ अर्थ तो है--वैज्ञानिक अर्थ है। उसमें जो दो-तीन घंटे रह जाता है, उसको पहली दफा फिर से पुनः याद आ जाती है मां के गर्भ में रहने की--और उस शांति की, उस आनंद की।
वैज्ञानिक तो यही कहते हैं कि ध्यान की प्रक्रियाएं भी उसी अवस्था में ले जाती हैं--बिना बाहरी उपकरणों के। ध्यान की प्रक्रिया भी उसी अवस्था में ले जाती है। मोक्ष की स्वर्ग की खोज भी उसी की खोज है। घरों में भी हम जो अपने कमरों को बनाते हैं वे इस ढंग से बनाते हैं कि वे सब तरह से हमें उत्तप्त रखें, प्रसन्न रखें, प्रफुल्ल रखें, शांत रखें। मगर अब तक ठीक-ठीक मां के पेट का अनुभव कोई भी चीज पूरी-पूरी तरह नहीं दे पायी है।

लेकिन मां के पेट में नौ महीने बच्चा अकेला रहता है, न भयभीत होता, न चिंतित होता, न सोचता कि क्लब चले जाएं, कि रोटरी के मेम्बर बन जाएं, कि होटल हो आएं, कि ताश ही खेल लें, कुछ नहीं तो समय काटें, कि चलो फिल्म देख आएं, चलो गपशप करें पड़ोसियों से। कुछ भी नहीं! नौ महीने बिल्कुल सन्नाटा है।
तो एक बात तो निश्चित है कि तुम स्वभाव से एकांत में रहने को बने हो और स्वभाव से एकांत में तुम्हें रस है, कोई दुख नहीं है। मगर पैदा होते से ही उपद्रव शुरू होता है। जैसे ही बच्चा पैदा होता है वैसे ही उसे दूसरे की जरूरत मालूम होने लगती है। मां के बिना भूखा हो जाता है। मां की जरूरत, मां के स्तन की जरूरत। इसलिए लोगों के मन में मां के स्तन की प्रतीक्षा जीवन भर बनी रहती है। चित्रकार स्तन बनाते हैं, मूर्तिकार स्तन बनाते हैं; खजुराहो हो कि कोणार्क हो, बस स्तन ही स्तन। और ऐसे स्तन जो कि होते भी नहीं! इतने बड़े-बड़े स्तन कि स्त्रियां चल भी न सकें, चलें तो गिर जाएं! कविताएं स्तन की। हर चीज स्तन के आस-पास घूमती है। कुछ कारण होना चाहिए, गहरा कारण होना चाहिए।
कारण यही है कि बच्चे का पहला अनुभव इस जगत का स्तन का अनुभव है। और पहला अनुभव महत्वपूर्ण अनुभव है। और इस पहले अनुभव की छाप जिंदगी भर पीछे रहती है।
मैं एक बूढ़े आदमी को देखने गया था। वे मर रहे थे। उनकी उम्र कोई अठहत्तर वर्ष थी। कमरे में कोई भी न था, सिर्फ उनकी पत्नी थी। उन्होंने पत्नी से कहा कि तू बाहर जा मुझे कुछ निजी बात करनी है। उनकी पत्नी बाहर चली गई, मैं भी थोड़ा हैरान हुआ कि निजी बात शायद वे कुछ ध्यान, समाधि। उन्होंने मुझसे कहा कि सिर्फ एक बात पूछनी है कि मैं मरने के करीब आ गया, मौत करीब है, मगर स्त्री के स्तनों में मेरा रस नहीं जाता है! मर रहा हूं, लेकिन वह जो मेरी महिला डाक्टर है, वह देखने आती है तो मौत की भूल जाता हूं, उसके स्तन देखने लगता हूं। तो मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मेरे अठहत्तर वर्ष की उम्र, सब जिंदगी देख ली, मगर यह स्तन से मेरा रस क्यों नहीं जाता? इसका कारण क्या होगा? और मैं किसी से पूछ भी नहीं सकता। ऐसे तो मुनि महाराज भी आते हैं, मगर उनसे मैं पूछूं तो वे बहुत नाराज हो जाएंगे। आपसे ही पूछ सकता हूं।
मैंने कहाः यह बात सीधी-सादी है। सच तो यह है कि जैसे जन्म के समय पहली याद स्तन की आती है वैसे अक्सर मरते वक्त भी आखिरी याद स्तन की आती है। जिन्होंने इस पर खोज-बीन की है पूरब के देशों में, उनका कहना है कि मरते वक्त आदमी आखिरी क्षण में स्तन की याद करते ही मरता है। वही उसकी नये गर्भ में प्रवेश की यात्रा है। वर्तुल पूरा हो गया।
लेकिन बच्चे को स्तन की जरूरत है, बहुत जरूरत है। भोजन भी वही, उष्णता
भी वही, प्रेम भी वही। दूसरा मुझे आदर करता है, प्रेम करता है, फिकिर करता है--इसका प्रमाण भी वही। बस धीरे-धीरे शुरू हुआ, दूसरा महत्वपूर्ण होने लगा। मां थोड़ी देर को नहीं आती, बच्चा पानी में पड़ गया है या पेशाब कर ली है और गीला कपड़ा हो गया है, तो परेशान हो रहा है; दूसरे की जरूरत है। असहाय बच्चा दूसरे की जरूरत अनुभव करने लगता है।
और मां-बाप भी इसमें मजा लेते हैं कि बच्चा निर्भर हो। कोई जब आप पर निर्भर होता है तो अच्छा लगता है कि आपकी भी दुनिया में कुछ जरूरत है। जब बच्चे अपने पैर पर खड़े हो जाते हैं तो मां-बाप को सच में अच्छा नहीं लगता। ऊपर से तो कहते हैं कि हम बड़े प्रसन्न हैं कि अब तुम अपने पैर पर खड़े हो गए; मगर उनका चेहरा.जरा गौर से देखो। वे यह कह रहे हैं कि ठीक है; मतलब अब हमारी तुम्हें कोई जरूरत न रही! ऐसे तो ऊपर से बच्चों को शादी-विवाह कर देते हैं, मगर भीतर से विरोध पैदा हो जाता है। इसलिए सास-बहू झगड़ते ही रहते हैं, झगड़ते ही रहते हैं। सास यह बरदाश्त कर ही नहीं सकती कि मेरा बेटा जो सदा मुझ पर निर्भर था आज किसी और स्त्री पर निर्भर हो गया; जिसको बुद्धिमान बनाने में मुझे पच्चीस साल लगे, एक औरत ने पांच मिनट में बुद्धू बना दिया! इसको सास बरदाश्त करे भी तो कैसे करे! आग जलती है! यह बिल्कुल स्वाभाविक है। कहते हैं कि प्रसन्न रहो, अब अपने पैर पर खड़े हो गए। मगर जरा

गौर करना उनके चेहरे पर, उनकी भाषा पर, बड़ी मजबूरी में जैसे बात कही जा रही है! चाहेंगे तो अब भी मां-बाप कि बच्चे उन पर निर्भर रहें। चाहेंगे तो वे सदा निर्भर रहें, क्योंकि उनकी निर्भरता में अहंकार की तृप्ति है।
तो मां-बाप पूरी चेष्टा करते हैं कि बच्चा निर्भर हो, हर चीज पर निर्भर हो। बच्चे ही निर्भर नहीं कर लेते हम, हम बड़ों को भी निर्भर करते हैं। स्त्रियां पतियों को बिल्कुल निर्भर कर लेती हैं। ऐसे ऊपर से तो ख्याल यही होता है और दिखावा भी यही होता है और शायद पत्नियों को भरोसा भी यही होता है कि हम सेवा कर रहे हैं। वे पति को माचिस भी न उठाने देंगी, पति को सिगरेट भी न उठाने देंगी; वे खुद उठा कर सिगरेट लाएंगी, माचिस जला देंगी। वे इतना निर्भर कर लेंगी पति को कि दो दिन के लिए पत्नी मायके चली जाए तो पति बिल्कुल असहाय है। उसको पता नहीं है कि सिगरेट कहां है कि माचिस कहां है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन खोज रहा है चौके में। पत्नी चिल्ला रही है
कि बड़ी देर हो गई, तुम्हें नमक भी नहीं मिल रहा! उसने कहाः मैंने करीब-करीब सब डब्बे खोल डाले हैं, नमक का कुछ पता नहीं चल रहा। पत्नी ने कहाः तुम अंधे हो बिल्कुल, आंख के अंधे हो! उम्र तुम्हारी हो गई है मगर मेरे बिना तुम एक इंच नहीं चल सकते हो। अरे सामने ही, जिस डब्बे पर लिखा है मिर्ची, उसी में नमक है।
स्त्रियों के अब अपने ढंग होते हैं कि लिखा है मिर्ची और रखा है नमक।
यह उनका सीक्रेट-कोड है। ये पति लाख सिर मारकर मर जाएं, कितने ही शब्दकोशों में देखें, मिर्ची कहीं भी नमक नहीं है।
पति को बिल्कुल निर्भर कर देना जरूरी है। पति भी पत्नी को निर्भर कर लेता है अपने ढंग से--गहने लाकर, नई साड़ियां लाकर। यह एक-दूसरे की निर्भरता पर जी रहा जगत है। यहां हम एक-दूसरे को निर्भर करते हैं, क्योंकि अच्छा लगता है कि हम पर इतने लोग निर्भर हैं। जितने ज्यादा लोग तुम पर निर्भर हैं तुम उतने बड़े मालूम पड़ते हो। मगर ध्यान रखना, जब तुम दूसरों को निर्भर करोगे तो दूसरे तुम्हें निर्भर करेंगे। यहां गुलामी पारस्परिक होती है। स्वतंत्र होना हो तो किसी को निर्भर मत करना और किसी के निर्भर मत होना। मगर यह जिंदगी का ढांचा ऐसा है कि यहां सब एक-दूसरे के निर्भर हैं और सब चाहते हैं कि एक-दूसरे के निर्भर रहें।
इसलिए धर्म भारती, तुझे अड़चन होती है... "अकेलापन इतना महसूस होता है
कि घबड़ा जाती हूं।" घबड़ाने का कोई कारण नहीं है। और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि जंगल जाकर अकेले हो जाओ। मैं तो यह कह रहा हूं कि संसार में ही रहो, मगर अकेले होने से घबड़ाओ मत, अकेले होने का मजा लो। और जब कभी मौका मिल जाए और पतिदेव मछली मारने चले जाएं तो बहुत अच्छा हुआ कि गए। कि पत्नी जाकर पड़ोस में गपशप करने लगे तो बहुत अच्छा हुआ, थोड़ी देर तो अकेले बैठो। थोड़ी देर तो बिल्कुल चुप हो जाओ। बिल्कुल अकेले रह जाओ, जैसे दुनिया में कोई भी नहीं है, तुम्हीं हो बस! तुम्हारा ही अकेला होना है!
और तुम चकित हो जाओगेः उसी चुप बैठने में धीरे-धीरे तुम्हें रस का अनुभव होगा--आत्मरस का! स्वयं की अनुभूति होगी, जो बड़ी प्रीतिकर है, बड़ी सुखदायी है, बड़ी मुक्तिदायी है! फिर तुम्हें उदासी नहीं घेरेगी। फिर अकेलेपन में तुम्हारे भीतर ऐसी प्रफुल्लता होगी, जैसी संग-साथ में भी न होगी। फिर तुम भीड़ में जाओगे तो ऐसा लगेगा कि कब छुटकारा हो। क्योंकि भीड़ है क्या, सिवाय उपद्रव के? शोरगुल के अतिरिक्त और है क्या तुम्हारी भीड़? तुम्हारी पार्टियां और तुम्हारे भोज और तुम्हारे विवाह और तुम्हारे सभा- मंडप सिवाय उपद्रव और शोरगुल के और क्या हैं? उत्सव कहां है? अजीब हालत हो जाती है!
अभी कुछ दिन पहले, दो-चार दिन पहले किसी को पड़ोस में उत्सव मानना है, बेटा पैदा हो गया। बस लगा दिया, जोर से माइक बजाने लगे, फिल्म की बेहूदी धुनें--न जिनमें कोई तुक है न कोई अर्थ है। उछल-कूद! अभी भारतीय फिल्मों में आदमी तो पैदा ही नहीं हुआ है, अभी डार्विन के पहले की ही चल रही हैं फिल्में! उछल-कूद! और जितना उछल-कूद हो उतनी ही ऊंची फिल्म, उतनी ही चलती है। मार-धाड़, उछल-कूद, शोरगुल, शोर-शराबा... इसको तुम गीत कहते हो, संगीत

कहते हो, उत्सव कहते हो? तो उपद्रव क्या है फिर? फिर उपद्रव किसको कहोगे? फिर तो कोई आदमी शांत बैठा हो तो उसको उपद्रव कहना चाहिए, कि देखो उपद्रवी बैठा है बिल्कुल शांत!
हमें उत्सव मनाना भी नहीं आता, क्योंकि हमें अकेला होना ही नहीं आता है। हमें एकांत में ही रस नहीं है तो हमें रस क्या होगा? उत्सव में भी रस हो सकता है। जहां कुछ ऐसे लोग मिल बैठें जिन सबको एकांत होने का मजा है, तो उत्सव में भी रस होता है। तो दस लोग चुप बैठकर भी ऐसे गहन आनंद के सागर में डूब सकते हैं जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।
उदासी घेर लेती होगी, क्योंकि उपद्रव को तुमने अब तक उत्सव समझा है। एकांत का गणित सीखो। एकांत की भाषा सीखो।
जिंदगी एक बड़ी अबूझ पहेली है। सबसे बड़ी अबूझ बात यह है कि इस दुनिया में सर्वाधिक आनंद को वे लोग उपलब्ध होते हैं, जो अकेले होने की कला सीख जाते हैं। यहां सर्वाधिक दुख उनको मिलता है जो अकेले होने की कला नहीं जानते। संन्यास है अकेले होने की कला।
और फिर मैं तुम्हें याद दिला दूं कि अकेले होने से मेरा मतलब भौतिक नहीं होता, बाहरी नहीं होता--कि चले गए पहाड़ पर और अकेले बैठ गए, उससे कुछ भी न होगा। पहाड़ पर बैठ कर करोगे क्या? बैठ कर गुफा में यही सोचोगे कि पता नहीं, बंबई में कौन-कौन सी फिल्म लग गई, कि पता नहीं धंधे की क्या हालत है, कि पता नहीं लड़का दुकान ठीक से चला रहा है कि नहीं सोचोगे क्या बैठकर गुफा में, .जरा मुझे कहो! जरा अपने भीतर ही बैठ कर, घर में ही आज बैठ कर, दरवाजा बंद करके सोचना कि चलो पहुंच गए हिमालय की गुफा में, अब क्या सोचेंगे? तुम बड़े चकित होओगे। तुम सोचोगे तो यही बाजार की बातें। तुम्हारे पास बाजारू मन है, हिमालय पर ले जाकर क्या करोगे? मैं तुमसे कहता हूंः हिमालय वाला मन पैदा करो, फिर बाजार में भी हिमालय होता है। हिमालय भीतर पैदा करो। प्रिय! मैं हूं एक पहेली भी।
जितना मधु, जितना मधुर हास,
जितना मद तेरी चितवन में,
जितना क्रंदन, जितना विषाद,
जितना विष जग के स्पंदन में,
पी-पी मैं चिर-दुख-प्यास बनी सुख-सरिता की रंगरेली भी!
मेरे प्रतिरोमों से अवरित
झरते हैं निर्झर और आग,
करतीं विरक्ति-आसक्ति प्यार,
मेरे श्वासों में जाग-जाग;
प्रिय मैं सीमा की गोद पली, पर हूं असीम से खेली भी
तुम सीमा की गोद में हो, लेकिन असीम के हकदार हो। प्रिय मैं सीमा की गोद पली, पर हूं असीम से खेली भी! तुम पृथ्वी पर हो, लेकिन आकाश के मालिक हो। तुम भीड़ में हो, लेकिन अकेले की तुम्हारी संपदा खो मत देना नहीं तो उदासी होगी। नहीं तो बड़ी बेचैनी होगी। और अगर भीड़ में ही रहे और भीड़ में ही जिए और भीड़ में ही मरे, तो तुम्हारी जिंदगी एक लंबी व्यथा होगी। तुम रोते ही रहोगे और रोते ही जाओगे...
मैं नीर-भरी दुख की बदली!
स्पंदन में चिर-निस्पंद बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक-से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली
मेरा पग-पग संगीत-भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली!
मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल, चिंता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी

नवजीवन-अंकुर बन निकली
पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना, सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिरहन हो अंत खिली!
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!
अगर जीवन तुमने यूं ही भीड़-भाड़ में गुजार दिया तो एक दिन तुम इतना ही पाओगे...
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!
मैं नीर-भरी दुःख की बदली!
लेकिन यह तुम्हारी नियति नहीं है; यह तुम्हारा दुर्भाग्य होगा, दुर्घटना होगी। ऐसा होना नहीं था, होने की कोई अनिवार्यता नहीं थी। तुम चाहते तो जीवन एक आनंद मग्न उत्सव हो सकता था और तुम क्षुद्र विराट की तरफ बढ़ते, सीमा से असीम की तरफ बढ़ते, मर्त्य से अमृत की तरफ बढ़ते। तुम हो इतने विराट! प्रिय में सीमा की गोद पली हूं असीम से खेली भी!
लेकिन एक कुंजी सीखनी ही पड़ेगी, उसी कुंजी से ताले खुलते हैं जीवन के रहस्य के। वह कुंजी हैः एकांत, अंतर एकांत!
चौबीस घंटे में थोड़ा समय निकालो, धर्म भारती! शुरू-शुरू में उदासी लगेगी, लगने देना। पुराना अयास है। शुरू-शुरू में परेशानी लगेगी, लगने देना। लेकिन एक घड़ी चौबीस घंटे में चुपचाप बैठ जाओ, न कुछ करो, न कुछ गुनो, न माला फेरो, न मंत्र जपो, न प्रार्थना करो, कुछ भी न करो। चुपचाप। हां, फिर भी विचार चलेंगे, चलने दो। देखते रहना निरपेक्ष भाव से, जैसे कोई राह चलते लोगों को देखता है, कि आकाश में उड़ती बदलियों को देखता है। निष्प्रयोजन देखते रहना, तटस्थ देखते रहना--बिना किसी सभी लगाव के, बिना निर्णय के, न अच्छा न बुरा। चुपचाप देखते रहना। गुजरने देना विचारों को। आएं तो आएं, न आएं तो न आएं। न उत्सुकता लेना आने में न उत्सुकता लेना जाने में। और तब धीरे-धीरे एक दिन वह घड़ी आएगी कि विचार विदा हो गए होंगे, सन्नाटा रह जाएगा।
सन्नाटा जब पहली दफा आता है तो जैसे बिजली का धक्का लगे, ऐसा रोआं- रोआं कंप जाएगा। क्योंकि तुम प्रवेश करने लगे फिर उस अंतर-अवस्था में, जहां गर्भ के दिनों में थे। यह गहरा झटका लगेगा। तुम्हारा संबंध टूटने लगा संसार से, तुम्हारा संबंध छिन्न-भिन्न होने लगा भीड़-भाड़ से। तुम संबंधों के पार उड़ने लगे। झटका तो भारी लगेगा। जैसा हवाई जहाज उठेगा जब पहली दफा पृथ्वी से तो जोर का झटका लगेगा, ऐसा ही झटका लगेगा। घबड़ाना मत। एक बार पंख खुल गए आकाश में, एक बार उड़ चले, तो अपूर्व अनुभव है, अपूर्व आनंद है!
फिर एकांत कभी दुख न देगा। एकांत तो क्या, फिर भीड़ भी दुख न देगी क्योंकि तब भीड़ में भी एकांत बना रहता है। जिसको भीतर सधने की कला आ गई, वह बीच बाजार में खड़े होकर भी ध्यान में हो सकता है। दुकान पर बैठे-बैठे काम करते-करते और भीतर धुन बजती रहेगी निस-बासर! रात-दिन! नींद में भी उसकी धुन बजती रहेगी।
लेकिन अभी मैं समझता हूं, उदासी लगती होगी, घबड़ाहट होती होगी, अकेलापन डराता होगा। ये स्वाभाविक लक्षण हैं। प्रत्येक मनुष्य को इस जगत की गलत शिक्षणा दी गई है। सम्यक शिक्षा होगी अगर कभी, तो हम प्रत्येक बच्चे को अकेला होना भी सिखाएंगे। साथ होना भी सिखाएंगे, अकेला होना भी सिखाएंगे। साथ होना इस तरह सिखाएंगे कि अकेलापन मिटे ही नहीं और साथ भी हो जाएं। जैसे जल में कमल होता है और जल छूता नहीं--ऐसे भीड़ में भी रहना और भीड़ को छूने भी मत देना! भीड़ में जाना भी और बचकर निकल भी आना। अपने दामन को बचाकर चले आना। तब एक जीवन की और ही दूसरी अनुभूति है--कबीर ने कहा है--ज्यों कि

त्यों धर दीन्ही चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया! फिर दामन पर दाग नहीं लगते। फिर तुम भीड़ में भी रहो तो भी तुम्हारी चादर पर दाग नहीं लगते। जैसी की तैसी परमात्मा के हाथ में लौटा दी जाती है, कि यह लो रखो अपनी चादर, दी थी तुमने, हमने जतन से ओढ़ी, जतन से उपयोग की, मगर कोई दाग नहीं लगे।
किस चादर की बात कबीर कर रहे हैं? यही भीतर के एकांत, यह भीतर के शून्य, यह भीतर के मौन, भीतर के ध्यान... । ध्यान की चादर तुम्हारे पास हो तो तुम्हारे जीवन में वास्तविक जीवन का पहला संस्पर्श होगा। यह हो सकता है। और धर्म भारती, मेरे पास होकर अगर यह न हो तो समझना कि तुम बहुत बाधाएं डाल रही होओगी इसके होने में। बाधाएं हटा लो। अड़चनें विदा कर दो। यह तो नाव चली ही है, इस पर सवार हो जाओ। पाल खोल दिए गए हैं, हवाएं ले चली हैं इसे। पतवार भी हम नहीं चलाते। पतवार भी कौन चलाए, जब परमात्मा ही हवाओं में बांध कर पालों को और ले जाता है अपने सागर तट पर, तो कौन चिंता करे पतवारों की!
और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं, जब मैं परलोक, उस पार, उस गंतव्य की बातें करता हूं तो तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि कल होगा कि परसों होगा कि अगले जन्म में होगा। मैं तुमसे यह कह रहा हूंः यह चाहो तो अभी हो सकता है! यहां हो सकता है। होना ही चाहिए। अपने को संगठित करो अपने को एकजूट करो। बस मत कर देना अरे पिलाने वाले!
हम नहीं विमुख हो वापस जाने वाले!
अपनी असीम तृष्णा है--तेरा वैभव
अक्षय है अक्षय--अरे लुटाने वाले!
उसके मंदिर पर बैठो तो फिर लौटने की बात ही मत करना। उदासी आए, बेचैनी आए, पीड़ा आए, पुरानी आदतें बल मारें--फिकर मत करना।
बस मत कर देना अरे पिलाने वाले!
हम नहीं विमुख हो वापस जाने वाले!
अपनी असीम तृष्णा है--तेरा वैभव
अक्षय है अक्षय--अरे लुटाने वाले!
हम अलख जगाने आए तेरे दर पै!
हम मिट-मिट जाने आए तेरे दर पै!
इस रिक्त पात्र को भर दे, भर दे, भर दे! मदहोश हमें तू कर दे, कर दे, करे दे! हम खड़े द्वार पर हाथ पसारे कब के!
हो जाएं अमर--ऐ अमर हमें तू वर दे!
है एक बिंदु में सिंधु भरा जीवन का; परिपूरित कर दे मानस सूनेपन का!
फिर और यहां पर पाना ही है खोना, हंसकर पीने में छिपा प्यास का रोना, चलने दे, सुख के दौर अरे चलने दे! भर जाए दुःख से उर का कोना-कोना! अपना असीम अस्तित्व दिखा दे हमको! बस लय हो जाना अरे सिखा दे हमको! तेरी मदिरा का बूंद-बूंद दीवाना! हम नहीं जानते अपना हाथ हटाना!
इस पथ का अथ है नहीं, न इसकी इति है, गति है, गति है, गति है बस बढ़ते जाना! किस ओर चले, है हुआ कहां से आना? किसने जाना, निजको किसने पहचाना? माना कि कल्पना और ज्ञान है--माना! पर अविश्वास का, भ्रम का यहीं ठिकाना! है एक आवरण, बुना हुआ है जिसमें दिन-रात और सुख-दुख का ताना-बाना!
उस ओर? व्यर्थ का यह प्रयास--जाने दे! पाने दे, हम को मुक्ति यहीं पाने दे!

मैं तुमसे कह रहा हूंः हो सकता है अभी और यहीं! चाहिए कि तुम एकजुट होओ। चाहिए कि तुम्हारे भीतर ऐसी त्वरा हो कि रोआं-रोआं प्यास से भर जाए, कि रोआं-रोआं पुकार से भर जाए। उठना ही मत उसके मंदिर पर बैठ गए तो। इस न उठने के संकल्प को ही मैं संन्यास कहता हूं।
बस मत कर देना अरे पिलाने वाले!
हम नहीं विमुख हो वापस जाने वाले!
अपनी असीम तृष्णा है--तेरा वैभव
अक्षय है अक्षय--अरे लुटाने वाले!
हम अलख जगाने आए तेरे दर पै!
हम मिट-मिट जाने आए तेरे दर पै!
हम आ ही गए तेरे द्वार पर, मिटना हो तो मिटेंगे, लौटेंगे नहीं। इस संकल्प से जो ध्यान में बैठेगा उसका ध्यान सुनिश्चित पूर्ण होना है। आश्वासन है। उसका ध्यान सदा पूरा होता है। उसके ध्यान में कोई बाधा नहीं पड़ती।
परमात्मा चाहता है कि तुम पर ध्यान की वर्षा हो। परमात्मा कंजूस नहीं है, कृपण नहीं है। परमात्मा तो अपात्र को भी देने को तैयार है, मगर हम ऐसे अपात्र हैं कि अपात्र को भी उलटा रख कर बैठे हैं। अपात्र को तो कम से कम सीधा करो।
तेरी मदिरा का बूंद-बूंद दीवाना!
हम नहीं जानते अपना हाथ हटाना!
इस पथ का अथ है नहीं, न इसकी इति है,
गति है, गति है, गति है बस बढ़ते जाना!
ध्यान में बढ़े चलो। न इसका कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है। ध्यान की
इस अनंत यात्रा पर अपने को गंवा दो, खो जाओ। ध्यान करते-करते ध्यानी न बचे, ध्यान ही बचे। गीत गाते-गाते गीत ही बचे, गायक न बचे। नाचते-नाचते नृत्य ही बचे, नर्तक न बचे। और उसी क्षण मिलन हो जाएगा। भर जाएगा तुम्हारा रिक्त पात्र!
इस रिक्त पात्र को भर दे, भर दे, भर दे!
मदहोश हमें तू कर दे, कर दे, कर दे!
हम खड़े द्वार पर हाथ पसारे कब के,
हो जाएं अमर--ऐ अमर हमें तू वर दे!
है एक बिंदु में सिंधु भरा जीवन का,
परिपूरित कर दे मानस सूनेपन का!
एक क्षण में बरस सकता है सागर, एक क्षण में बूंद सागर हो सकती है; मगर
सब तुम पर निर्भर है। अधूरे-अधूरे उपक्रम मत करना, कुनकुने-कुनकुने प्रयास मत करना। जलो तो ऐसे जैसे मशाल दोनों तरफ से जले, एक साथ जले। एक क्षण को भी जलो, मगर पूरे जलो। और उसी क्षण में घटना घट जाती है।
उस ओर? व्यर्थ का यह प्रयास--जाने दे!
पाने दे, हम को मुक्ति यहीं पाने दे!
मैं तुमसे कहता हूंः यहीं मुक्ति है, यहीं मोक्ष है। मोक्ष एक मनोविज्ञान है। मुक्ति मन की एक अपूर्व दशा है। नरक भी यहीं है; वह है तुम्हारे गलत जीने का ढंग। स्वर्ग भी यहीं है; वह है तुम्हारे ठीक जीने का ढंग और मोक्ष भी यहीं है, वह है तुम्हारे परमात्मा में जीने का ढंग। अपने को खोकर जो परमात्मा में जीता है वह मुक्त है।

अंतिम प्रश्नः ओशो! आनंद और अनुग्रह से हृदय भर गया है। क्या करूं, क्या न करूं? कैसे धन्यवाद दूं?

गाओ, गुनगुनाओ, नाचो, रोओ।
ओ विभावरी!
चांदनी का अंगराग,
मांग में सजा पराग,
रश्मि-तार बांध मृदुल चिकुर-भार री!

ओ विभावरी!
अनिल घूम देश-देश,
लाया प्रिय का संदेश,
मोतियों के सुमन कोष वार-वार री! ओ विभावरी!
लेकर मृदु ऊर्म्मबीन,
कुछ मधुर करुण नवीन,
प्रिय की पदचाप-मदिर गा मलार री!
ओ विभावरी!
बहने दे तिमिर भार
बुझने दे यह अंगार,
पहिन सुरभि का दुकूल वकुलहार री!
ओ विभावरी!
आनंद उठा, अनुग्रह उठा, तो गाओ, छेड़ो इकतारा। फिकिर भी मत करना छंद की, मात्राओं की। मस्ती हो तो काफी है। गाओ तो इसकी चिंता मत करना कि कंठ है या नहीं कोकिल का। भाव हो तो काफी। नाचो तो मत फिकर करना कि नाच आता है या नहीं। अलमस्ती हो तो काफी।
फिर, धन्यवाद जिसे हम देने चले हैं वह कोई पराया नहीं है--तुम्हारा ही अंतर्भाव है। परमात्मा तुममें विराजमान है।
तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या!
तारक में छबि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लायी हूं तेरी चंचल
और करूं जग में संचय क्या?
तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय, खेल-खेल थक-थक सोने दो,
मैं समझूंगी सृष्टि-प्रलय क्या! तेरा अधर-विंचुम्बित प्याला, तेरी ही स्मित मिश्रित हाला, तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूंछूं क्या मेरे साकी!
देते हो मधुमय-विषमय क्या?
रोम-रोम में नंदन पुलकित,
सांस-सांस में जीवन शत-शत, स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित, मुझ में नित बनते-मिटते प्रिय! स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या? हारूं तो खोऊं अपनापन,
पाऊं प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूं तेरा ही बंधन,
भर लाऊं सीपी में सागर
प्रिय! मेरी अब हार-विजय क्या?
चित्रित तू मैं हूं रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय!
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनव क्या?
वही प्यारा है, वही प्रेयसी है! वही है गायक, वही है गीत! तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या! किसको निवेदन करें? किसके चरणों में फूल चढ़ाएं?

चरण भी उसके, फूल भी उसके, चढ़ानेवाला भी उसका। लेकिन फिर भी, जब अहोभाव उठता है तो अहोभाव प्रगट होना चाहता है। तो गाओ, नाचो, गुनगुनाओ... ।
ओ विभावरी!
चांदनी का अंगराग,
मांग में सजा पराग,
रश्मि-तार बांध मृदुल चिकुर-भार री!
ओ विभावरी!
अनिल घूम देश-देश,
लाया प्रिय का संदेश,
मोतियों के सुमन-कोष वार-वार री!
ओ विभावरी!
लेकर मृदु ऊर्म्मबीन,
कुछ मधुर करुण नवीन,
प्रिय की पदचाप-मदिर गा मलार री! ओ विभावरी!
बहने दे तिमिर भार,
बुझने दे यह अंगार,
पहिन सुरभि का दुकूल वकुलहार री! ओ विभावरी!

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
पांचवां प्रवचन

बिन गुरु मारग कौन बतावै

पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही।।
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ।
जरिगा तेल निपटि गइ बाती, लै चलु होइ।।
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय।
बिना गुरु के माला फेरै, जनम अकारथ जाए।।
सब संतन मिलि इकमत कीजै, चलिए पिय के देस।
पिया मिलैं तो बड़े भाग से, नहिं तो कठिन कलेस।।
या जग ढूढूं वा जग ढूढूं, पाऊं अपने पास।
सब संतन के चरन-बंदगी, गावै दूलनदास।।

जोगी जोग जुगत नहिं जाना।।
गेरू घोरि रंगे कपरा जोगी, मन न रंगे गुरु-ग्याना।
पढ़ेहु न सत्तनाम दुइ अच्छर, सीखहु सो सकल सयाना।।
सांची प्रीति हृदय बिलु उपजे, कहुं, रीझत भगवाना?
दूलनदास के साईं जगजीवन, मो मन दरस दिवाना।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
उस परम प्रिय का मिलना कब होगा, इसकी कोई भी भविष्यवाणी नहीं हो सकती। इसके लिए कोई भी आश्वासन नहीं दिया जा सकता। क्योंकि परमात्मा से मिलन कार्य-कारण के जगत का हिस्सा नहीं है। पानी को सौ डिग्री तक गरम करोगे, भाप बनेगा ही बनेगा; लेकिन भक्ति कब भगवान बनती है इसका कोई गणित नहीं है। आग में हाथ डालोगे, जलेगा ही जलेगा; लेकिन परमात्मा में परवाना कब जलता है, कौन घड़ी, कौन शुभ घड़ी, इसके लिए कोई सुनिश्चित वक्तव्य नहीं दिया जा सकता। परमात्मा जब भी घटता है, अनायास घटता है। एक क्षण पहले भी पता नहीं होता। एक क्षण पहले अंधेरी रात और एक क्षण बाद प्रकाशोज्ज्वल प्रभात! भरोसा ही नहीं आता कि इतनी अंधेरी रात से और ऐसी प्रकाशोज्ज्वल सुबह का जन्म होगा; कि ऐसे अंधियारी से ऐसा उजियाला जन्मेगा! एक क्षण पहले जो कांटा था, एक क्षण बाद फूल हो जाता है। आंखें विस्मय-विमुग्ध रह जाती हैं! एक क्षण को भरोसा ही नहीं आता। लगता है कोई सपना देखा है।
पहली बार जब भी परमात्मा का अनुभव होता है तो ऐसा ही लगता है जैसे कोई सपना देखा है। आंखें मीड़-मीड़ कर फिर से देख लेने का मन होता है। आस्था नहीं बैठती कि जिसे पुकारा था उस तक पुकार पहुंच गई; कि जिसे आना था वह अतिथि आ गया; कि जिस मंदिर को खोजते थे उसके द्वार खुल गए।
भरोसा आए भी तो कैसे आए? जन्मों-जन्मों तक सिवाय दुख के कुछ जाना नहीं। सुख की तो एक बूंद नहीं पड़ी अनुभव में। कांटे ही कांटे, कांटे ही कांटे झोली में भरते रहे। फूल का तो कोई साक्षात्कार कभी हुआ नहीं--और आज अचानक झोली फूलों से भर गई है! न मालूम किस अज्ञात से उतरी है किरण और अंधेरे को सदा के लिए काट गई है। ऐसा काट गई है कि फिर अब कभी घिरेगा नहीं। जानी थी अब तक मृत्यु और आज अमृत के घन घिरे हैं, अमृत की घनघोर वर्षा हो रही है। भरोसा हो भी तो कैसे हो?
मनुष्य की बुद्धि के गणित के बाहर है। मनुष्य की बुद्धि सोच सके, विचार सके, विमर्श कर सके, उस सीमा के भीतर नहीं है। इसलिए जैसे-जैसे भक्त करीब आने लगता है उस परम घड़ी के, वैसे ही उसके हृदय में बड़ी धुकधुकी हो जाती है।... होगा कि नहीं होगा? होगा तो कैसा होगा? और होगा तो कब होगा? हुआ होगा मीरां को और हुआ होगा चैतन्य को और हुआ होगा दूलनदास को, मुझे होगा? मुझ अभागे को होगा? मुझ सब तरह से अपात्र को होगा? अंदेशे घेरते हैं मन को। बड़े भय उठते हैं। जब तक हो ही न जाए तब तक अंदेशा उठता ही रहता है।
अंदेशे का अर्थः संदेह मत समझना। अंदेशे का अर्थ हैः भय। अंदेशे से ऐसा मत सोच लेना कि परमात्मा पर शक होता है कि है या नहीं! नहीं-नहीं!

अंदेशे का अर्थ है, अपने पर शक होता है कि मेरी पात्रता है या नहीं? अपनी पात्रता पर भरोसा नहीं आता।
और इस दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक--जिन्हें अपनी पात्रता का इतना भरोसा है कि परमात्मा के होने पर भरोसा नहीं आता। और दूसरे--जिन्हें परमात्मा के होने का इतना भरोसा है कि अपनी पात्रता पर भरोसा नहीं आता। बस, इन्हीं दो कोटियों में संसार विभक्त है।
और तुम सोच लेना, अपने पर इतना भरोसा कि परमात्मा पर संदेह करने की तुम जुर्रत जुड़ा लो तो सदा-सदा के लिए चूक जाओगे। तुम्हारे जीवन में सुबह कभी होगी ही नहीं। तुम्हारी रात की फिर कोई सुबह नहीं है क्योंकि तुमने रात पर भरोसा कर लिया। जिस पर भरोसा कर लिया वही सुदृढ़ हो जाता है। जिस पर भरोसा कर लिया वही सत्य हो जाता है। जिसमें भरोसा डाल दिया उसमें श्वास डाल दी।
अपने पर इतना भरोसा किए हैं लोग इसलिए नास्तिक हैं। आस्तिक कौन है? परमात्मा पर इतना भरोसा है कि अपने पर भरोसा नहीं आता कि मैं भी हो सकता हूं? कि मेरे होने में भी कोई अर्थ हो सकता है? कि मेरे जीवन में भी कोई अभिप्राय होगा? कि मेरे कारण भी इस जगत का कोई काम सधता होगा? कि मेरी भी यहां कोई जरूरत है? कि मैं भी आवश्यक हो सकता हूं? और क्या मैं इतना आवश्यक हो सकता हूं कि परमात्मा एक दिन अपनी झलक मुझे दे, उसका दरस-परस हो? धन्यभागी है वह जिसे परमात्मा पर इतना भरोसा है कि सिवाय अपनी अपात्रता के उसे और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा ही धन्यभागी उसे पाता है।
मगर स्वभावतः भक्त को निरंतर अंदेशा लगा रहता है। भक्त कंपता ही रहता
है भय से। लाख उपाय करे, पूजा करे, पाठ करे, प्रार्थना करे लेकिन एक बात भीतर उसे लगती ही रहती है, मेरी पूजा क्या! मेरी ही पूजा है, मैं ही क्या हूं, तो मेरी पूजा का क्या मूल्य! ये मेरे ही तो हाथ हैं, इनमें आरती भी सजा लूं तो उस आरती का क्या अर्थ है? मेरे ही हाथों की आरती मुझसे ज्यादा मूल्यवान नहीं हो सकती। ये मेरे ही शब्द हैं, इनसे प्रार्थना बना लूं तो भी इन शब्दों पर मेरी छाप रहेगी। ये मेरे ही तो पैर हैं, नाचूं तो नाच लूं; और मेरे ही स्वर हैं, गीत चाहूं तो गीत गा लूं, मगर सब मेरा है। और मैं हूं अपात्र। मेरा होना न होने जैसा है। क्या परमात्मा मुझ पर भी अनुकंपा करेगा? ऐसा अंदेशा उठता है।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
और अंदेशा उठता है कि अगर अपनी तरफ देखता हूं तो पिया मिलन कभी होगा नहीं। हां, पिया की तरफ देखता हूं तो होना जरूरी है; होगा ही। उसकी अनुकंपा को देखता हूं तो होगा, और मेरी अपात्रता को देखता हूं तो कैसे होगा? इन दो के बीच भक्त की पीड़ा है। मगर वह पीड़ा भी बड़ी मधुर है।
नास्तिकों के सुख से भी आस्तिकों का दुख ज्यादा बहुमूल्य है। क्योंकि नास्तिकों का सुख छिछला है। आस्तिकों का दुख भी गहरा है। आस्तिक की पीड़ा की इतनी गहराई है कि उस पीड़ा में ही खोदते-खोदते तो एक दिन परमात्मा मिलता है।
लेकिन अंदेशा बहुत लगता है। घड़ी-घड़ी संदेह आता है--अपने पर; याद रखना, भूल मत जाना। प्रश्न-चिह्न लग जाता है अपने पर बार-बार। अपनी औकात नहीं मालूम होती। लेकिन जिस दिन घड़ी घटती है उस दिन पता चलता है सब अंदेशे व्यर्थ थे। मुझे अपनी औकात ही पता न थी। मेरी औकात उतनी ही है जितनी उसकी। क्योंकि मैं वही हूं। तत्वमसि! मैं बूंद जैसा लगता था लेकिन सागर मुझमें समाया था, छिपा था। मैं लगता था देह में आबद्ध, देह से मुक्त था। लगता था सीमा में, असीम ही मेरा आंगन था।
बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं!
नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में;
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पंदन में;
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप भी हूं जो बन गया वरदान बंधन में,
कूल भी हूं कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं! नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूं,

शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूं; फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूं, एक हो कर दूर तन से छांह वह चल हूं;
दूर तुम से हूं अखंड सुहागिनी भी हूं! आग हूं जिससे ढुलकते बिंदु हिमजल के, शून्य हूं जिसको बिछे हैं, पांवड़े पल के; पुलक हूं वह जो पला है कठिन प्रस्तर में, हूं वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में, नील-घन भी हूं सुनहली दामिनी भी हूं!

नाश भी हूं मैं अनंत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी; अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं!
जानकर तो पता चलता है, जान कर तो अनुभव होता है--

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं!
कूल भी हूं कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं!
दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं!
नील-घन भी हूं सुनहली दामिनी भी हूं!

नाश भी हूं मैं अनंत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भीः
तार भी आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृत भी;
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं!
लेकिन ऐसा तो जानकर जाना जाता है। तब तो बूंद सागर मालूम होती है; तब
तो अंधेरा प्रकाश मालूम होता है; तब तो मृत्यु भी शाश्वत जीवन मालूम होती है। फिर तो भेद गिर जाते हैं। लेकिन जब तक भेद न गिरे हों तब तक बड़ा अंदेशा उठता है। ठीक कहते हैं दूलनदास--
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
बहुत भयभीत हूं, बहुत अंदेशों से घिरा हूं, बहुत हताश मालूम होता हूं। अपने पर देखता हूं तो एक बात निश्चित है कि पहुंचना नहीं होगा, मंजिल बहुत दूर है। हां, लेकिन इस हताशा में भी एक निराशा के पार से उतरती किरण है। उसकी अनुकंपा को देखता हूं तो लगता है, अब हुआ, अब हुआ। हुआ ही है। यह हुआ! शायद एक पल की प्रतीक्षा और, या कि एक पल की भी प्रतीक्षा की जरूरत नहीं है। होने ही चला! भक्त इन दो अनंत दूरियों के बीच तना होता है। यही विरह की अवस्था है।
स्पंदन हो यदि तुम जीवन का, मैं हूं जीर्ण-शरीर।
मैं हूं जो सूखी सी सरिता, तुम हो शीतल-नीर।
बिना तुम्हारे मेरा जीवन,
एक मरुस्थल सा है निर्जन,
ताल-हीन हो जैसे नर्तन,
मैं हूं बुझते दिल की धड़कन, तुम हो उसकी आस! मेरे उर में बस जाओ तुम, बनकर उर की प्यास!

सिर से पैरों तक जादू तुम, मैं मोहित अनजान। तुम हो रूप-छली, मैं हूं सखि, सरल प्रेम नादान। तुम हो दीपक, मैं परवाना,
मैं हूं तन्मयता, तुम गाना,
तुम पागलपन, मैं दीवाना,
बिना तुम्हारे जीवन नीरस, सुमन-हीन-मधुमास।

मेरे उर में बस जाओ तुम, बनकर उर की प्यास।

निष्ठुर जग है आंख, अश्रु मैं, तुम धरती हो प्राण! ठुकराया मैं एक कोर पर, आ बैठा अनजान।
अपने में अब मुझे मिला लो!
अपना हृदय उदार बिछा लो!
"मुझे" मिटा दो, "मुझे" बना लो!
यह अभिलाष करो पूरी या कर दो सत्यानास!
मेरे उर में बस जाओ तुम, बनकर उर की प्यास!
--पुकारता है, रोता है। अपनी तरफ देखता है तो रोता है। परमात्मा की अनुकंपा की तरफ देखता है तो नाचता है। इसलिए कभी तुम भक्त को रोते और हंसते साथ-साथ देखो तो चकित मत होना, पागल मत समझ लेना। ऐसे वह पागल है, परमात्मा का पागल है, मगर साधारण पागल नहीं है। उसका पागलपन तुम्हारी बुद्धिमानी से ज्यादा बहुमूल्य है। उसका पागलपन वरणीय है, वांछनीय है, मांगने योग्य है, प्रार्थना योग्य है। उसका पागलपन यही है कि अपनी तरफ देखता है तो रोता है, उसकी तरफ देखता है तो हंसता है। अपने तरफ देखता है तो हताश होकर बैठ जाता है, उसकी तरफ देखता है तो फिर उठा लेता है अपना इकतारा और फिर नाचने लगता है। एक घड़ी रोना, एक घड़ी हंसना; यह भक्त की विरह की अवस्था है।

स्पंदन हो यदि तुम जीवन का, मैं हूं जीर्ण-शरीर।
मैं हूं जो सूखी सी सरिता, तुम हो शीतल नीर।
बिना तुम्हारे मेरा जीवन,
एक मरुस्थल सा है निर्जन,
ताल-हीन हो जैसे नर्तन,
मैं हूं बुझते दिल की धड़कन, तुम हो उसकी आस!
मेरे उर में बस जाओ तुम, बन कर उर की प्यास!
पुकारता है, आओ! पुकारता है, आओ! दिन-रात पुकारता है कि आओ। बोले या न बोले, कहे या न कहे, भीतर अहर्निश पुकार उठती रहती है।

सिर से पैरों तक जादू तुम, मैं मोहित अनजान।
तुम हो रूप-छली, मैं हूं सखि, सरल प्रेम नादान।
तुम हो दीपक, मैं परवाना,
मैं हूं तन्मयता, तुम गाना,
तुम पागलपन, मैं दीवाना
बिना तुम्हारे जीवन नीरस, सुमन-हीन-मधुमास।
मेरे उर में बस जाओ तुम, बनकर उर की प्यास!
भक्त की और भावना क्या है कि परमात्मा उसके हृदय में अतिथि बने; कि भक्त को आतिथेय होने का मौका मिले। मेहमान बने प्रभु, कि भत्त मेजबान बने। निष्ठुर जग है आंख, अश्रु मैं, तुम धरती हो प्राण!
ठुकराया मैं एक कोर पर, आ बैठा अनजान।
अपना हृदय उदार बिछा लो!
अपने में अब मुझे मिला लो!
"मुझे" मिटा दो, "मुझे" बना लो!
यह अभिलाष करो पूरी, या कर दो सत्यानास!
मेरे उर में बस जाओ तुम, बनकर उर की प्यास!
"मुझे" मिटा दो, "मुझे" बना लो--ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। यही भक्ति का शास्त्र है। यही भक्ति का विरोधाभास भी। ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं--मुझे मिटा दो, मुझे बना लो! एक तरफ तो भक्त मिटे तो भगवान हो सकता है, लेकिन भगवान हो तो भक्त हो जाए। जब बीज टूटता है तो वृक्ष होता है। और जब सरिता सागर में गिरती है तो सरिता तो खो जाती है मगर सागर हो जाती है। भक्ति के लिए साहस चाहिए मिटने का।

तुमने बार-बार सुनी है यह बात, तुम्हारे तथाकथित साधु-संत रोज-रोज दोहराते हैं यह बात कि कलियुग में भक्ति ही एकमात्र उपाय होगा क्योंकि भक्ति बहुत सरल है। झूठी है यह बात, गलत है यह बात। भक्ति सरल नहीं है, भक्ति से कठिन और कुछ भी नहीं। अपने को मिटाना, इससे कठिन और क्या होगा? तथाकथित ज्ञान सरल है क्योंकि अहंकार को मिटना नहीं पड़ता बल्कि अहंकार और सज जाता है, और शास्त्रों की सजावट बैठ जाती है। गीता, कुरान, बाइबिल, वेद, उपनिषद इन सब पर और अहंकार सिंहासन बना लेता है। इनकी गद्दी बना लेता है और ज्ञानी हो जाता है।
तपश्चर्या कठिन नहीं है क्योंकि तपश्चर्या अहंकार के अनुकूल है। जितनी तपश्चर्या करोगे, अहंकार पर उतनी धार आ जाती है। उतना ही अहंकार प्रज्ज्वलित हो उठता है। उतना ही लगता है, मैं विशिष्ट, मैं खास। उतना ही लगता है, मैं पात्र। उतना ही लगता है कि परमात्मा को मुझको मिलना ही चाहिए, न मिलता हो तो अन्याय हो रहा है। जितना तुम तपश्चर्या करोगे उतना ही तुम्हारे भीतर यह पत्थर की तरह भाव मजबूत होने लगेगा कि अब मुझे मिलना ही चाहिए। और क्या करने को बचा है? इतने उपवास किए, इतने व्रत किए, इतने आसन-व्यायाम किए, इतने प्राणायाम! इतना सब कर चुका हूं--शरीर को सुखा कर कांटा बना लिया, पेट पीठ से लग गया है, मांस-मज्जा जल गई है, कांटे की तरह रह गया हूं, अब और क्या चाहिए?
तपस्वी के मन में स्वभावतः यह बात उठती है कि अब और क्या चाहते हो, अब
और क्या मर्जी है, अब और क्या अपेक्षा है? उसे अहंकार जन्मता है, पात्रता का भाव जन्मता है कि मैंने शुभ ही शुभ किया, कोई पाप नहीं किया। पैर भी पूंक-पूंक कर रखता हूं कि कोई चींटी न मर जाए। रात पानी नहीं पीता कि कोई हिंसा न हो जाए। एक ही बार भोजन करता हूं, शुद्ध भोजन करता हूं। सब तो मैंने पूरा कर दिया जो तुमने चाहा हो। तुमने जो चाहा हो उससे ज्यादा पूरा कर दिया। अब और इतनी देर क्यों है? तथाकथित तपस्वी के भीतर एक शिकायत होती है कि बहुत देर हुई जा रही है, अन्याय हुआ जा रहा है। तुम हो भी या नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं व्यर्थ ही श्रम कर रहा हूं और तुम हो ही न!
मैं तुमसे कहता हूं तपश्चर्या सरल है, हमेशा सरल है। और तथाकथित ज्ञान भी सरल है और तुम्हारा तथाकथित कर्मयोग भी सरल है। अगर दुनिया में कोई सबसे कठिन बात है तो प्रेम। और भक्ति प्रेम की पराकाष्ठा है। क्यों कहता हूं प्रेम को कठिन बात? इसलिए कहता हूं कि प्रेम में मरना होता है। तुम हो दीपक, मैं परवाना,
मैं हूं तन्मयता, तुम गाना,
तुम पागलपन, मैं दीवाना
बिना तुम्हारे जीवन नीरस, सुमन-हीन-मधुमास
मेरे उर में बस जाओ तुम, बन कर उर की प्यास!
अपना हृदय उदार बिछा लो!
अपने में अब मुझे मिला लो!
"मुझे" मिटा दो, "मुझे" बना लो!
इसलिए कठिन है भक्ति। लेकिन लोगों ने भक्ति से मतलब समझा है, बैठ गए सुबह, थोड़ी माला फेर ली; कि कभी सत्यनारायण की कथा करा ली; कि कभी चले गए मंदिर में, पूजा चढ़ा आए; कि कभी चार ब्राह्मणों को भोजन करा दिया; कि कन्याओं को भोजन करा दिया; कि घर में कृष्ण की एक प्रतिमा रख ली, सावन के महीने में झूला झुला दिया। तुम किसको धोखा दे रहो हो? किसको झूला झुला रहे हो?
भक्ति इतनी आसान नहीं है। तुम्हें मौत में झूलना पड़ेगा। तुम्हें अपने
को मिटाने का साहस जुटाना पड़ेगा। तुम मिटोगे तो ही हो सकोगे। इधर तुम गए, उधर परमात्मा आया। इधर तुम शून्य हुए, उधर परमात्मा की पूर्णता तुममें अवतरित हुई।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
डरता हूं, कंपता हूं, कहते दूलनदास, भयभीत होता हूं। हजार-हजार अंदेशे
उठ रहे हैं। कब होगा पिया का मिलन? मेरी पात्रता तो नहीं है, फिर भी आशा कर रहा हूं।

त्यागी दावा करता है, भक्त आशा करता है। त्यागी सौदा करता है, भक्त अर्पण करता है। त्यागी कहता है कि तुम्हारी शर्ते पूरी कर दीं, अब अगर न मिलो तो अन्याय है। भक्त कहता है, तुम्हारी शर्ते मैं कभी पूरी कर ही नहीं पाऊंगा। तुम्हारी शर्ते मुझसे पूरी होने वाली ही नहीं हैं। यह मेरी पात्रता ही नहीं है। तुम मिलो तो करुणा से मिलो। तुम मिलो, तुम्हारी अनुकंपा से मिलो। तुम रहीम हो, रहमान हो। तुम मिलो करुणा से तो ही मिलना हो सकता है। मुझ पर मुझे भरोसा नहीं है। मेरे किए कुछ भी न होगा। मेरे किए ही तो सब अनकिया हो गया है।
और जिस दिन ऐसा भाव उठता है भक्त को कि मेरे किए कुछ भी न होगा, उस दिन कुछ होना शुरू होता है। उस दिन पहला फूल खिलता है वसंत का। उस दिन पहली हवा का झोंका आता है अनंत से। उस दिन मलय-बयार बहती है। उस दिन पहली बार भक्त को अनुभव लगता है, अंगीकृत हुआ। क्योंकि उसके द्वारा अंगीकृत होने की एक ही शर्त है कि तुम्हारे भीतर कोई अस्मिता न हो। अस्मिता गई कि क्रांति घटी।
किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया
निष्प्राण पड़ी सी वीणा को?
चिर श्रांत, थकित, चिर मौन और
चिर एकाकिनि, चिर क्षीणा को?
तुम समर्पित होओ। तुम सिर झुकाओ। तुम उसकी अनुकंपा पर भरोसा करो। जिसने जीवन दिया है वही परम जीवन भी देगा। न तो जीवन तुमने कमाया है और न परम जीवन तुम कमा सकते हो। कमाने की बात ही भ्रांत है। कमाने की बात में ही धोखा है। कमाने की बात में ही अहंकार के लिए आड़ मिल गई, बचने का उपाय मिल गया।

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया
निष्प्राण पड़ी सी वीणा को?
चिर श्रांत, थकित, चिर मौन और
चिर एकाकिनि, चिर क्षीणा को?

जिसके ढीले-से मौन तार,
झंकृत हो गाना भूल गए
मन को, मस्तक को, नस-नस को, पल में सिहराना भूल गए।

जिसका मन शिथिल, पड़े जिसकी वाणी पर थे चुप के ताले।
जिसके तन पर अगनित जाले,
दुख की मकड़ी ने बुन डाले।

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया? सब तार तने, झंकार उठी।
ज्यों अंधकार में रजनी के, हो ज्योत्स्ना की दीवार उठी।

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया? गानों के सागर फूट पड़े।
संगीत भरे नभ से तारे
तानों के अगनित टूट पड़े।

ध्वनि के खग उड़-उड़ फैल गए,
औ" दशों दिशाएं जाग उठीं।
अंबर की सोई सी स्मृतियां सुन कर यह अभिनव राग उठीं।

झुको! समग्ररूपेण झुको और तुम भी पाओगे-- किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया?
सब तार तने, झंकार उठी।
ज्यों अंधकार में रजनी के,
हो ज्योत्स्ना की दीवार उठी।

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया?
गानों के सागर फूट पड़े।
संगीत भरे नभ से तारे
तानों के अगणित टूट पड़े।
तुम पर वर्षा हो सकती है, लेकिन तुम अपने से इतने भरे हो कि परमात्मा चाहे भी तो तुम्हारे भीतर जगह नहीं है। तुम अपने से अपने को खाली करो, रिक्त करो। भक्ति का इतना ही अर्थ है कि भत्त अपने से अपने को रिक्त कर ले, खाली कर ले, शून्य हो जाए, ना-कुछ हो जाए। कह सके, मैं नहीं हूं। बस, जिस क्षण तुम समग्र मन प्राण से कह सकोगे, "मैं नहीं हूं" उसी क्षण परमात्मा है।
लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा कहां है? वे परमात्मा को पहले देख लेना चाहते हैं। ऐसे ही जैसे कोई बंद आंख वाला आदमी कहे कि पहले सूरज को देखूंगा तब आंख खोलूंगा। आंख क्यों खोलूं? पहले भरोसा आ जाना चाहिए कि सूरज है तो आंख खोलूंगा। आंख खोलने का कष्ट क्यों लूं?
वह भी ठीक कह रहा है। ऐसे तर्क की बात कह रहा है कि सूरज हो तो आंख खोलूं। मंजिल हो तो चार कदम चलूं। लेकिन सूरज पहले मेरे अनुभव में आ जाए तो आंख खोलूंगा। तब तो बड़ी कठिनाई हो गई। तर्क तो ठीक है मगर जीवन विरोध से भरा है। आंख बिना खोले सूरज का अनुभव नहीं होगा। और वह आदमी कह रहा है, जब तक सूरज का अनुभव न हो, आंख न खोलूंगा। तो फिर अनुभव कभी नहीं होगा क्योंकि आंख कभी खोली ही न जा सकेगी।
लोग पूछते हैं, ईश्वर कहां है? ... गलत प्रश्न पूछा। पूछना चाहिए कि कौन सी चीज ईश्वर के देखने में बाधा बन रही है? कौन सा पर्दा मेरी आंख पर है? कौन सी चट्टान मेरी छाती पर है? मेरी प्रार्थना क्यों नहीं बह रही? लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है। लोगों को पूछना चाहिए, प्रार्थना कैसे हो? लोगों को पूछना चाहिए, मेरा हृदय उसकी प्यास से कैसे भरे? मेरे भीतर भक्ति का कैसे उदय हो? लोग पूछते हैं, भगवान कहां है? लोग कहते हैं, भगवान हो तो हम भक्ति करेंगे।
और मैं तुमसे यह कह रहा हूं और यही भक्तों ने सदा कहा है, तुम भक्त हो जाओ तो भगवान अभी है। भक्ति की शर्त पहले पूरी करनी होती है। मगर भत्ति की शर्त आसान नहीं है, माला फेर लेने की नहीं है, चंदन-मंदन लगा लेने की नहीं है, घंटी बजाकर किसी पत्थर की मूर्ति के सामने पूजा कर देने की नहीं है, कृष्ण को खूब रेशमी वस्त्र पहना कर और दो फूल चढ़ा देने की नहीं है। भक्ति में तो सिर्फ एक ही बात चढ़ाई जाती हैः अस्मिता, अहंकार; मैं हूं, यह भाव। और जिसने इस मैं को चढ़ा दिया उसे तत्क्षण दरस हो जाता है, तत्क्षण परस हो जाता है।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ
दूलनदास कहते हैं, जरा सम्हल कर चलना, होशियारी से चलना क्योंकि यह जिसको तुमने जिंदगी समझा है, यह बड़े जल्दी चुक जाएगी; जैसे सांझ जलाया दीया सुबह चुक जाता है, तेल चुक जाता है, बाती बुझ जाती है।
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ
यह तुम जिस मिट्टी के दीए पर भरोसा किए बैठे हो और यह जो मिट्टी में चल रही जीवन की थोड़ी सी धारा है, यह जल्दी ही क्षीण हो जाएगी। यह तेल भी चुकेगा, यह बाती भी चुकेगी, फिर कुछ भी सूझ न पड़ेगा। मौत जब द्वार पर दस्तक देगी, कुछ भी सूझ न पड़ेगा। जिंदगी में ही नहीं सूझा तो मौत में क्या खाक सूझेगा! जीते-जी नहीं सूझा तो मरते क्षण में कैसे सूझेगा?

और बेईमानों ने तुम्हें समझाया है कि मरते समय नाम ले लेना राम का, सब
हो जाएगा। जिंदगी भर रावण की सेवा करना, मरते वक्त राम का नाम ले लेना। जिंदगी भर अंधेरे को बटोरना, मरते वक्त प्रकाश को पुकार लेना। यह होगा कैसे? जिसने जिंदगी भर अंधेरा बटोरा वह मरते वक्त भी अंधेरे पर ही गठरी बांधे बैठा रहेगा। और जोर से बांध लेगा और मुट्ठियां कस लेगा और गठरी को छाती से लगा लेगा कि अब छूट न जाए; अब छूटी, तब छूटी। यह मौत आने लगी। जिसने अंधेरे से ही आसक्ति बनाई वह प्रकाश को पुकारना भी कैसे चाहेगा? चाहे भी तो भी पुकार कैसे सकेगा? उसके ओंठों पर प्रकाश शब्द ही न बनेगा। राम शब्द भी दोहराना चाहेगा तो जबान काम दे जाएगी, नहीं काम आएगी; लड़खड़ा जाएगी; राम नहीं उठेगा। जो तुम्हारे भीतर जीवनभर बहा है वही मृत्यु में भी तुम्हारे बाहर प्रकट हो सकता है। जो तुम्हारी जीवन भर की संपदा है वही मृत्यु में तुम्हारी संपदा बनेगी।
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ
दूलन कहते हैं, सब दिखाई पड़ रहा है क्योंकि अभी भीतर जीवन की बाती जल रही है, जीवन का तेल जल रहा है, मगर जल्दी ही यह बुझ जाएगा। यह शाश्वत प्रकाश नहीं है। इस प्रकाश का उपयोग कर लो शाश्वत प्रकाश को खोजने में। हाथ में दीया मिला है, सत्तर साल जलेगा समझो, इस सत्तर साल में इस छोटे-से दीए का हाथ में उपयोग करके अंधेरे में तलाश कर लो उस द्वार की, जिससे शाश्वत प्रकाश में प्रवेश हो जाए। "तमसो मा ज्योतिर्गमय।" पुकारो परमात्मा को कि मुझे ले चलो अंधेरे से प्रकाश की ओर। इस छोटी सी जीवन की क्षमता का उपयोग कर लो। इसकी सीढ़ी बना लो। यह मंजिल नहीं है, सीढ़ी पर ही मत बैठ जाना अन्यथा बहुत रोओगे, बहुत पछताओगे।
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ
जरिगा तेल निपटि गइ बाती, लै चलु लै चलु होइ
इधर तेल समाप्त हुआ, उधर बाती बुझी। जिनको तुमने अपना समझा था वे ही कहेंगे अब जल्दी ले चलो, अब जल्दी ले चलो। बंधने लगी अर्थी। चले मरघट की तरफ। और पड़ा रह गया सब ठाठ। और पड़ा रह गया सब आयोजन जो जीवन भर किया--धन भी, पद भी, प्रतिष्ठा भी। जिस पर सब गंवाया उसमें से कुछ भी साथ नहीं जा रहा है। जरा लोगों को मरते हुए देखते हो? उससे खुद को चेताते हो या नहीं चेताते? मौत तुम पर चोट करती है या नहीं करती?
जरिगा तेल निपटि गइ बाती, लै चलु लै चलु होइ
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय
अगर थोड़ा होश हो, अगर थोड़ी समझ हो, अगर यह जिंदगी की थोड़ी-सी रोशनी जो परमात्मा ने तुम्हें दी है जन्म के साथ और मौत में छिन जाएगी, इसका उपयोग करना हो तो शाश्वत की तलाश में करो, सत्य की तलाश में करो। ऐसे मंदिर की तलाश में करो जो गिरेगा नहीं। मगर कैसे यह होगा?
बिन गुरु मारग कौन बतावै
कौन बताएगा रास्ता? जिसने रास्ता देखा हो वही बताएगा। जो चला हो वही बताएगा। जो पहुंचा हो वही बताएगा। लेकिन तुम पंडितों से पूछते हो, सद्गुरुओं से नहीं। पंडित तो वहीं है जहां तुम हो। पंडित में और तुममें .जरा भी भेद नहीं है। पंडित की और तुम्हारी दृष्टि में क्या अंतर है? हां, सूचनाओं में भेद है। तुम थोड़ा कम जानते हो, वह थोड़ा ज्यादा जानता है। लेकिन यह भेद तो परिमाण का है, मात्रा का है, गुण का नहीं है। यह भी हो सकता है कि तुम बुद्ध से ज्यादा जानते होओ, तो भी तुम बुद्ध से ज्यादा नहीं हो जाओगे।
बुद्ध के समय में भी बड़े-बड़े पंडित थे जो बुद्ध से बहुत ज्यादा जानते थे। लेकिन बहुत ज्यादा जानना एक बात है और जानना बिल्कुल दूसरी बात है। बुद्ध का साक्षात्कार हो गया है प्रकाश से, शाश्वत प्रकाश से। और उन पंडितों ने अभी शाश्वत प्रकाश के संबंध में जो बातें कहीं हैं, कहीं गई हैं, लिखी गई हैं उन्हीं को संगृहीत किया है।
सारिपुत्र आया बुद्ध के दर्शन को। सारिपुत्र बड़ा पंडित था। बहुत संभावना है कि बुद्ध से ज्यादा सूचनाओं का ढेर था उसके पास। बुद्ध एक तो क्षत्रिय थे, तो शास्त्र पढ़ने में कोई समय ज्यादा गंवाया भी नहीं था। बचपन

तो युद्ध की कला सीखने में बीता। धनुर्विद्या को जानते थे। फिर पिता ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि भोग-विलास में डूबे रहें। क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा था, अगर भोग-विलास में न डुबाए रखा तो यह व्यक्ति संन्यासी हो जाएगा। तो कुछ समय बीता होगा सैनिकी शिक्षण में, कुछ समय बीता भोग-विलास में। उनतीस वर्ष के थे तब घर से निकल गए। शास्त्र पढ़ने का मौका भी नहीं आया, अवसर भी नहीं था। क्षत्रिय का वह धर्म भी नहीं था।
सारिपुत्र ब्राह्मण था, ब्राह्मण पुत्र था, एक महापंडित का बेटा था, बड़ा प्रतिभाशाली था। उसके पांच सौ शिष्य थे। उसका बड़ा गुरुकुल था। वह दूर-दूर तक विवाद करने और शास्त्रार्थ करने जाता था। उसने न मालूम कितने पंडितों को हराया था। फिर यह होना ही था कि खबरें आने लगीं कि जब तक बुद्ध को न हराओगे, इन जीतों में कुछ सार नहीं है। हराना हो तो बुद्ध को हराओ। तो बुद्ध को हराने आया था। अपने पांच सौ शिष्यों को लेकर बड़ी अकड़ से आकर खड़ा हो गया। लेकिन बुद्ध को देखा और ऐसे पिघल गया जैसे सुबह की रोशनी में ओस की बूंद उड़ जाए; कि तेज धूप में मोम पिघल जाए। बुद्ध को देखता ही रहा खड़ा थोड़ी देर।
उसके शिष्य तो थोड़े विचलित भी हुए। ऐसी दशा कभी नहीं देखी थी अपने गुरु की। जहां भी गया था, अकड़ से गया था, दुंदुभी बजाता गया था। जहां भी गया था जीतकर लौटा था, विजय की पताकाएं फहराता लौटा था। यह बुद्ध के सामने कैसा खड़ा रह गया है किंकर्तव्यविमूढ़! और फिर जब शिष्यों ने देखा कि सारिपुत्र झुक गया बुद्ध के चरणों पर और आंसुओं की झड़ी लगी है तो उनको भरोसा ही नहीं आया। उन्होंने पूछा सारिपुत्र को, आपको क्या हो गया है? सारिपुत्र ने कहाः मैं सिर्फ सूचनाएं जानता हूं; सत्य का मुझे कोई अनुभव नहीं है। सूचनाएं शायद इस व्यक्ति से मेरे पास ज्यादा हैं। चारों वेदों का मैं ज्ञाता हूं लेकिन सब फीका पड़ गया। इस आदमी को वह स्रोत पता है जहां से चारों वेद पैदा हुए। यह आदमी मूल स्रोत पर खड़ा है। आज विवाद नहीं होगा। विवाद गया! आज समर्पित होता हूं।
निर-अहंकारी रहा होगा सारिपुत्र। पंडित और निर-अहंकारी बड़ी मुश्किल
से होता है। लेकिन उसके जीवन में क्रांति हो गई। बुद्ध के पास बैठ कर क्या सीखा उसने? जो भी बुद्ध बता सकते थे वह सब जानता था, मगर एक भेद था। अंधा आदमी भी प्रकाश के संबंध में सब जान सकता है मगर एक भेद हैः आंख वाला प्रकाश को जानता है, अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में जानता है।
बहरा भी संगीत के संबंध में बड़ा ज्ञानी होता है। संगीत भी तो लिखा जाता है न! संगीत की भी लिपि होती है न! बहरा लिपि पढ़ सकता है लेकिन तुम फर्क समझते हो? रविशंकर की वीणा बजती हो, सितार बजता हो--इसका अनुभव, इसके साथ-साथ नाच उठा, तुम्हारा हृदय, इसके साथ मंत्रमुग्धता! और फिर किसी बहरे ने कागज पर लिखी गई संगीत की लिपि को पढ़ा हो--इसी संगीत की लिपि को जिसे सुन कर तुम मयूर जैसे मत्त हो उठे थे, क्या तुम सोचते हो दोनों एक ही बात है? क्या बहरे को कुछ भी पता चलेगा ध्वनि का आनंद? क्या संगीत का कोई भी स्वाद आएगा? लिखे हुए संगीत को पढ़कर? बस, वैसा ही सारिपुत्र था। वैसे ही सारे पंडित हैं।
मगर सारिपुत्र सौभाग्यशाली पंडित था कि चला गया, एक बुद्ध के चरणों में झुक गया। सौ में निन्यानबे पंडित इतने सौभाग्यशाली नहीं होते। वे अपने अहंकार की पूजा में ही लगे रहते हैं। वे अपने विवाद में ही संलग्न रहते हैं, शब्दों के युद्धों में उलझे रहते हैं।
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय
दूलनदास कहते हैं, अगर यह बात समझ में आ जाए कि जिंदगी हाथ से जा चुकी
जा रही है, यह तेल जला जा रहा है, यह बाती बुझी जा रही है, जल्दी ही घड़ी आ जाएगी, अंधकार छा जाएगा। फिर किए कुछ भी न हो सकेगा, फिर लोग अरथी पर बांध कर ले चलेंगे। उसके पहले किसी ऐसे व्यक्ति का सत्संग खोज लो, किसी ऐसे व्यक्ति के चरणों में झुक जाओ, किसी ऐसे व्यक्ति से हृदय का नाता जोड़ लो, किसी ऐसे व्यक्ति के साथ आत्मसात हो जाओ जिसने जाना हो; जिसकी सुवास तुम्हें भी पकड़ ले; जिसकी सुंगध तुम्हें भी मत्त कर दे। किसी ऐसे व्यक्ति की सुराही से तुम भी पी लो जिसने पीया हो और जो भर गया हो।

जब तक सत्संग की शराब न पीओगे तब तक कोई मार्ग मिल नहीं सकता। शास्त्रों से नहीं मिलता मार्ग, सदगुरुओं से मिलता है। सत्संग की शराब पीकर ही कोई भक्ति को उपलब्ध होता है। वहीं तुम सीखोगे मंदिर का दीप कैसे बनना! मंदिर में दीये तो तुमने जलाए हैं, उससे कुछ भी न होगा। मंदिर के दीए कैसे बनोगे?

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

रजत-शंख-घड़ियाल स्वर्ण-वंशी-वीणा-स्वर,
गए आरती-वेला को शत-शत लय से भर;
जब था कलकंठों का मेला,
विहंसे उपल तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो!
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली, प्रणत शिरों के अंक लिए चंदन की दहली, झरे सुमन बिखरे अक्षत सित, धूप-अर्घ्य-नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अंतर्हित,
सब की अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो!
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया, प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीज खो गया, सांसों की समाधि-सा जीवन,
मणि सागर-सा पंथ गया बन,
रुका मुखर कण-कण कर स्पंदन,
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो!
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

झंझा है दिग्भ्रांत रात की मूर्च्छा गहरी, आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
जब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल,
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो!
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!
इस जीवन की ऊर्जा का एक दीया बनाओ, मंदिर का दीप बनाओ ताकि यह तुम्हें
कम से कम सुबह तक तो पहुंचा दे; ताकि रात तो कटा दे; ताकि प्रभात से तो मिला दे!

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

रजत-शंख-घड़ियाल स्वर्ण-वंशी-वीणा-स्वर,
गए आरती-वेला को शत-शत लय से भर;
जब था कलकंठों का मेला,
विहंसे उपल तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो! यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

तुम्हारे भीतर चेतना का दीया जलना चाहिए, ध्यान का दीया जलना चाहिए। कौन जलाएगा? कौन विधि देगा? जले हुए दीप के पास जाओ तो तुम्हारा बुझा दीया भी जल सकता है। बस, पास जाते-जाते एक ऐसी घड़ी आ जाती है, एक ऐसी नैकट्य, सामीय की घड़ी, जब जलते दीये से बुझे दीये में छलांग लग जाती है ज्योति की। ऐसे गुरु से शिष्य तक पहुंचती है रोशनी। ऐसे ही पहुंचती है। एक जीवित स्रोत से दूसरे जीवित स्रोत तक।
किताबों में रोशनी के संबंध में लिखा है, रोशनी नहीं है। किताबों में
जल के संबंध में लिखा है, तुम्हारी प्यास को तृप्त करने वाले जल सरोवर नहीं हैं। शास्त्रों में प्यारे और सुंदर शब्द हैं मगर केवल शब्द हैं। उन शब्दों को न तो पी सकोगे, न पचा सकोगे, न ओढ़ सकोगे, न बिछा सकोगे। उन शब्दों में मत भटक जाना।
दुनिया में दो भटकनें हैं। एक अज्ञानी की भटकन है। और एक पंडित की, तथाकथित ज्ञानी ही भटकन है। अज्ञानी की भटकन से भी बचो और ज्ञानी की भटकन से भी बचो तो कहीं तुम अंतर्यात्रा पर निकल पाओगे। अज्ञानी सोचता है चूंकि मैं शास्त्र को नहीं जानता इसलिए अज्ञानी हूं और ज्ञानी सोचता है चूंकि मैं शास्त्रों को जानता हूं इसलिए ज्ञानी हूं। दोनों शास्त्र में अटके हैं। उनमें भेद कम ज्यादा का है, मात्रा का है, गुण का नहीं है। दोनों बाहर भटके हैं। दोनों में कोई भी अभी भीतर नहीं आया है।
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय। क्या उपाय करें कि शाश्वत जीवन उपलब्ध हो, कि प्यारा मिले, कि हम सुहागिन बनें!
सब संतन मिलि इकमत कीजै, चलिए पिए के देस
और जो जानते हैं वे चकित होकर हैरान हो जाते हैं यह बात देख कर कि सारे संतों का उपदेश एक है। सबै सयाने एक मत। अगर भेद कहीं हो तो पंडितों में होगा। अगर भेद कहीं हो तो शस्त्रज्ञों में होगा। संतों की सीख एक है। क्या है वह सीख? दो शब्दों में उस सीख को बांधा जा सकता है। ऐसे तो सारा आकाश भी छोटा है और उसे बांधा नहीं जा सकता। नहीं तो दो शब्द! एक शब्द है ध्यान और एक शब्द है प्रेम। बस, ये दो छोटे शब्द! इन दो में सारे संतों की सीख समा गई है। भीतर मौन हो जाओ तो ध्यान। और मौन सूखा-सूखा न हो, रस-भीगा हो, प्रीति- पगा हो, प्रेम की वीणा बजती हो, प्रेम की रुन-झुन चलती हो, प्रेम की बयार बहती हो। ध्यान का शून्य हो और प्रेम का फूल खिला हो बस, फिर कुछ और पाने को नहीं है। परमात्मा तुम्हें खोजता आ जाएगा। कब किस घड़ी आ जाएगा। किस अनजान घड़ी में तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे देगा, कहना कठिन है।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय
बिना गुरु के माला फेरै, जनम अकारथ जाय
सब संतन मिलि इकमत कीजै, चलिए पिय के देस
पिया मिलैं तो बड़े भाग से, नहिं तो कठिन कलेस
बिना गुरु के भी लोग मालाएं फेरते हैं। बिना गुरु के भी लोग साधन करते, विधि करते, योग करते, तप करते, भक्ति करते। मगर बिना गुरु के करते हैं तो कुछ चूक हो जाती है। कुछ बुनियादी बात चूक जाती है। जब तक तुमने किसी जीवंत गुरु को ध्यानस्थ न देखा हो, प्रेम में डुबकी लगाते न देखा हो, तब तक तुम जो भी करोगे, उथला-उथला होगा, थोथा-थोथा होगा।
छोटे से पक्षी को उड़ना सीखने के पहले कम से कम अपने मां-बाप को उड़ते हुए देखना पड़ता है। अगर किसी पक्षी को तुम अंडे से निकलने के बाद सम्हाल कर रख लो और उसे कभी देखने को न मिले और पक्षी पंख फैला कर आकाश में उड़ता हुआ तो वह पक्षी कभी अपने पंख न फड़फड़ाएगा और कभी आकाश में न उड़ेगा। उसे याद ही न आएगी कि मेरे पास भी पंख हैं; कि मेरे पास भी क्षमता है दूर आकाश की यात्रा की; कि चांद-तारों से मैं भी मुलाकात करूं यह मेरा भी अधिकार है, ऐसी उसे याद ही न आएगी।
तो छोटा सा पक्षी बैठता है अपने घोसले की कगार पर, देखता है मां को उड़ते पिता को उड़ते, आते-जाते। धीरे-धीरे पंख फड़फड़ाने लगता है। भरोसा आने लगता है। फिर फुदकता है एक डाल से दूसरी डाल पर। भरोसा और सघन हो जाता है। फिर और जरा लंबी छलांग भरता है एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर। चकित हो जाता

है, चमत्कृत हो जाता है। तो मैं भी उड़ सकता हूं? बस, जिस दिन यह भरोसा आ गया कि मैं भी उड़ सकता हूं, फिर गुरु की कोई जरूरत नहीं रह जाती। मगर तब तक गुरु की अनिवार्यता है, अपरिहार्यता है। उसके बिना तुम माला भी फेर लोगे, मगर फेरना मुर्दा होगा।
मधुप ने की जाकर गुंजार,
"अरी, सुन री, कलिका सुकुमार,
खोल दे अंध-गंध के द्वार!
देख री, आया है मधुमास,
लिए नव हर्ष, नया उल्लास।
सुरभि के कोष खोल री, खोल, नयन के मोती जी भर रोल!
बिछा दे चरणों में सत्कार!" मधुप ने की जाकर गुंजार
"अरी, सुन री, कलिका सुकुमार!"

उठा रे कवि, भावों की बीन,
ढाल स्वर आतुर, मदिर नवीन!
और फिर होकर उनमें लीन,
छेड़ दे एक नई झंकार!
शिथिलता छोड़, छेड़ दे तार! स्वरों में हृदय, हृदय में प्यार, प्यार में भर संचित उद्गर!
और उद्गरों से भर साध!
और फिर उनमें आश अगाध!
डाल दे, प्रिय चरणों पर दीन!
उठा रे कवि, भावों की बीन,
ढाल स्वर, आतुर मदिर, नवीन!
कोई कहे, कोई पुकारे, कोई झकझोरे। मधुप ने की जाकर गुंजार। कोई भौंरा
आए और कली से कहे, खुल! कली को पता भी कैसे हो? कभी खुली हो तो पता हो। पहले कभी खुली तो नहीं। कभी उसने अपनी पंखुरियां खोली तो नहीं। कभी हवाओं के साथ खेली तो नहीं। राग-रंग नहीं किया। कभी सूरज को देखा तो नहीं।
कभी चांद-तारों से मुलाकात भी तो नहीं की। उसे पता भी क्या, अज्ञात में कदम कैसे रखे!

मधुप ने की जाकर गुंजार,
अरी, सुन री, कलिका सुकुमार,
खोल दे अंध-गंध के द्वार!
देख री, आया है मधुमास,
लिए नव हर्ष, नया उल्लास।
सुरभि के कोष खोल री, खोल,
नयन के मोती जी भर रोल!
बिछा दे चरणों में सत्कार!
मधुप ने की जाकर गुंजार
अरी, सुन री, कलिका सुकुमार!
ऐसे कोई गुरु आकर शिष्य के कान में कहता है--

खोल दे अंध-गंध के द्वार,
अरी, सुन री, कलिका सुकुमार!
ऐसे कोई गुरु जब शिष्य के कान में कहता है, शिष्य की कली जब सुनती है
यह खबर कि गंध मेरे भीतर भरी है, खोल दूं, उडूं। कली के भीतर जब सपने जगते हैं... कौन जगाएगा ये सपने? अज्ञात के सपने, असंभव के सपने! कौन सुगबुगाएगा ये सपने?
उठा रे कवि, भावों की बीन,

ढाल स्वर आतुर, मदिर नवीन!
और फिर होकर उनमें लीन,
छेड़ दे एक नई झंकार!
शिथिलता छोड़, छेड़ दे तार! स्वरों में हृदय, हृदय में प्यार, प्यार में भर संचित उद्गार!
और उद्गारों में भर साध!
और फिर उनमें आश अगाध!
डाल दे, प्रिय चरणों पर दीन!
उठा रे, कवि, भावों की वीन,
ढाल स्वर, आतुर मदिर, नवीन!
कोई कहे तुम्हारे कान में। कोई झकझोरे तुम्हें नींद से। कोई पुकारे तुम्हें। तुम दूर खो गए हो विस्मृति में। तुम्हें अपनी भी याद नहीं रही। कोई पुकारे, कोई आवाज दे। और जो सुन ले वही शिष्य। और जो आवाज के साथ एक नये उन्मेष से भर जाए वही शिष्य। और जिसके भीतर एक नई कल्पना अपने पंख फैला दे। और जिसके भीतर एक नया स्वर गुनगुन करने लगे। और जो अज्ञात में कदम रखे। और कभी छेड़ी नहीं गई जो वीणा उसके तार छेड़ दे। और कभी खोले नहीं गए गंध के जो द्वार, वे द्वार खोल दे। नहीं, सदगुरु के बिना यह नहीं हो सकेगा। दूलनदास ठीक कहते हैं--

बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय
बिना गुरु के माला फेरै, जनम अकारथ जाए
माला फेरते रहो बिना गुरु के, राम-राम जपते रहो बिना गुरु के, सब अकारथ चला जाएगा।
कुछ लोग सीखने से डरते हैं कुछ लोग सीखने में झुकना पड़ता है उससे डरते हैं। सीखने में किसी के सामने झोली फैलानी पड़ती है उससे उन्हें दीनता मालूम होती है। ऐसे अभागे वंचित ही रह जाएंगे। जीवन-कोष लुट जाएगा और भिखमंगे के भिखमंगे रह जाएंगे। उनकी झोली में एक दाना भी न पड़ेगा। सीखने के लिए झुकने की सामर्थ्य चाहिए। और ध्यान रखना, सिर्फ शक्तिशाली लोग ही झुक सकते हैं, कमजोर नहीं। कमजोर तो झुकने में बहुत डरता है क्योंकि उसे पता है मैं कमजोर हूं। झुका तो सारी दुनिया को मेरी कमजोरी का पता चल जाएगा। वह अपनी कमजोरी को छिपाता है।
इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को खूब समझ लो। अक्सर लोग समझते हैं कि जो झुकता है वह कमजोर है; जो समर्पित होता है वह कमजोर है; जो श्रद्धा करता है वह बुद्धिमान नहीं है। हालात ठीक उलटे हैं। असलियत ठीक उलटी है। मनोविज्ञान से पूछो! धर्म ने तो सदा यही कहा है लेकिन अब मनोविज्ञान भी इसके समर्थन में है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो व्यक्ति झुकता है वह संकल्पवान है। तभी झुकता है झुकने के लिए बड़ा संकल्प चाहिए। बड़ा विरोधाभास है। समर्पण के लिए बड़ा संकल्प चाहिए। वही झुक सकता है जिसको यह पक्का भरोसा है कि मैं झुकूं तो भी मेरी दीनता प्रकट नहीं होती। झुककर भी मैं दीन नहीं हो जाऊंगा। झुकने से मेरा आत्मगौरव नष्ट नहीं होता है। जिसे अपने आत्मगौरव पर इतनी श्रद्धा है वही किसी के चरणों में सर रख पाता है। जो कमजोर है, जिनके भीतर हीनता की ग्रंथि है, जो सदा डरे हुए हैं कि कहीं कोई झुका न दे; कि कहीं किसी के सामने झुकना न पड़े; जो सदा अकड़े खड़े हैं, जो सदा अपनी सुरक्षा किए हुए हैं ऐसे व्यक्ति कमजोर हैं, वस्तुतः समृद्ध नहीं हैं। वस्तुतः उनके भीतर आत्म-गौरव नहीं है, आत्म-भाव नहीं है।
वही झुक सकता है जो जानता है कि झुक कर भी मैं मिटूंगा नहीं। वही झुक सकता है जो जानता है कि झुक कर भी मैं रहूंगा। मेरा होना इतना है, इतना सघन है कि झुकने से मिटने वाला नहीं है।
इसलिए दुनिया में एक चमत्कार देखा जाता है। इस दुनिया में सबसे ज्यादा आत्मगौरववान व्यक्ति सबसे कम अहंकारपूर्ण होता है। इस दुनिया में सबसे ज्यादा आत्मगौरवहीन व्यक्ति सर्वाधिक अहंकारी होता है। इसलिए जिनको हमने संत कहा है वे तो निर-अहंकारी थे। महावीर कि बुद्ध कि कबीर कि नानक कि

मुहम्मद कि जलालुद्दीन--ये सारे लोग निर-अहंकारी थे। मगर यह मत समझना कि इनमें आत्मगौरव नहीं था। इनमें ही आत्म-गौरव था। इन्होंने ही निअर्हंकार भाव से अपने फूल को खोल दिया अपनी पंखुड़ियां खोल दीं। इनके भीतर से ही आत्मगौरव की गंध उठी। ये बड़े बलशाली लोग थे।
कमजोर तो झुकते ही नहीं। कमजोर तो धर्म के रास्ते पर ही नहीं चलते। कमजोर तो राजनीति के रास्ते पर चलते हैं। जिनके भीतर जितनी हीनता की ग्रंथि है वे उतने ही राजनीति के रास्ते पर चलते हैं। क्योंकि राजनीति में झुकाना है, झुकना नहीं है। दूसरों पर कब्जा करना है, दूसरों के सिर पर चढ़ना है। ये कमजोरों के, रुग्णचित्त लोगों के लक्षण हैं। राजनीति में स्वस्थ आदमी उत्सुक होता ही नहीं; हो ही नहीं सकता।
जा तू अपनी राह बटोही!
गाता क्या जीवन के गाने?
जीवन को तू क्या पहचाने?
जा तू अपनी राह बटोही!

भौंरों सा रस लेता रहता
गाता फिरता तू राहों में। रूप और रस राग भरी इस
जीवन की जल्वागाहों में।

जहां गिरे पत्ते सड़ते हैं, उन सायों को तू क्या जाने? तू क्या जीवन को पहचाने!
जा तू अपनी राह बटोही!

ऊपर-ऊपर का दर्शन कर
जीवन-युक्ति सिखाएगा क्या? डूबा नहीं अतल तल में जो
रत्न भला वह लाएगा क्या?

झूठे रत्नों से भर झोली
समझ इन्हें मत सच्चे दाने,
जीवन को तू क्या पहचाने?
जा तू अपनी राह बटोही!
जीवन में सिर्फ रास्ते के किनारे खड़े होकर तमाशा देखने वाले मत रह जाना, तमाशबीन मत रह जाना; नहीं तो तुम्हारे हाथ कूड़ा-करकट लगेगा, हीरे नहीं लगेंगे; झाग लगेगी लहरों की, हीरे नहीं लगेंगे। और दुनिया में अधिक लोग बस राहगीर हैं, तमाशबीन हैं। कोई भी मूल्य चुकाना नहीं चाहता। कोई भी गहरे नहीं जाना चाहता। किनारे पर बैठे-बैठे झाग समेटते हैं। हां, झाग कभी- कभी सुबह सूरज की किरणों में चमकती है और ऐसी लगती है जैसे इंद्रधनुष छाए हों। और झाग कभी-कभी रात की चांदनी में ऐसी लगती है जैसे चांदी के ढेर लगे हों। मगर दूर से ही। जब मुट्ठी में झाग को लोगे तो सिवाय समुद्र के खारे जल के हाथ में कुछ भी न छूट जाएगा। हीरे के लिए गोताखोरी करनी होती है, डुबकी मारनी होती है। बटोहियों के हाथ कुछ भी नहीं लगता। तमाशबीन न रहो। दर्शक न रहो।
यहां भी लोग आते हैं, मुझसे कहते हैं कि ध्यान पहले हम देखेंगे; दूसरों को करते देखेंगे। जब हमें जंचेगा तो हम करेंगे। दूसरों को करते ध्यान कैसे देखोगे? ध्यान अंतर्भाव है। तुम किसी के अंतर्भाव में प्रवेश नहीं कर सकते। उपाय ही नहीं है। ध्यान की तो बात दूर, .जरा किसी के सपने में प्रवेश करके तो देखो! किसी के सपने में भी प्रवेश नहीं कर सकते जो कि झूठा है, तो ध्यान तो सत्य है, उसमें तो कैसे प्रवेश करोगे?
मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र के साथ बात कर रहा था। मुल्ला ने मित्र से कहा कि रात बड़ा मजा आया! मैं कुंभ के मेला गया था। बड़ी भीड़-भाड़,

बड़े तमाशे! तमाशों पर तमाशें देखे। दूसरा मित्र चुपचाप सुनता रहा लेकिन जैसे प्रभावित नहीं हुआ। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम प्रभावित नहीं मालूम हो रहे। मैंने इतना प्यारा सपना देखा, ऐसे मजे लूटे कुंभ के मेले में, ऐसी धक्का-मुक्की! तुम प्रभावित नहीं मालूम हो रहे। उसने कहाः मैं क्या खाक प्रभावित होऊं! मैंने भी रात एक सपना देखा कि हेमामालिनी को लेकर हिमालय पर चला गया हूं--एकांत, बिल्कुल एकांत। हेमामालिनी का नाम सुना मुल्ला ने तो कहा, यह किस तरह की दोस्ती! मुझे क्यों नहीं बुलाया? उसने कहाः मैंने तो बुलाया था लेकिन तुम्हारी पत्नी ने कहा कि तुम तो कुंभ के मेला गए हो। किसी के सपनों में तुम जा सकते हो? किसी के अंतर्भाव में प्रवेश कर सकते हो? ध्यान तो तुम्हारे भीतर की गहरी से गहरी स्थिति है। सपने तो ऊपर की झाग! वह भी हाथ नहीं लगती। लेकिन लोग कहते हैं, हम दूसरों को ध्यान करते देखेंगे।
हां, यह हो सकता है, तुम मीरां को देखो, मीरां नाच रही है तो नाच दिखाई पड़ेगा। मगर मीरां के नृत्य में और किसी नर्तकी के नृत्य में कैसे भेद करोगे? क्या भेद करोगे? वही हाव-भाव होंगे, वही अंगोपांग होंगे, वही नृत्य की भाव-भंगिमाएं होंगी, भेद क्या करोगे? मीरां में ध्यान है और नर्तकी में ध्यान नहीं है यह कैसे पहचानोगे? मीरां के नृत्य के भीतर ध्यान की घटना घट रही है यह तुम्हारी समझ में कैसे आएगा देख कर? तुम सोचते हो बुद्ध को बैठे देख कर तुम समझ जाओगे ध्यान क्या है? हां, बुद्ध दिखाई पड़ेंगे, बैठे हैं पद्मासन में, आंख बंद किए बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बने। मगर और क्या दिखाई पड़ेगा?
लेकिन लोग कहते हैं, ध्यान हम पहले लोगों को करते देखेंगे। लोगों के तमाशबीन होने की आदत हो गई है। इस सदी की बड़ी से बड़ी बीमारियों में अगर कोई बीमारी है तो वह है, तमाशबीनी। यह सदी सबसे बड़ी तमाशबीन सदी है। यहां लोग करते नहीं सिर्फ देखते हैं। कुश्ती खुद नहीं लड़ते, दो पहलवान लड़ रहे हैं, वे देखने जा रहे हैं। क्या खाक तुम्हें मजा मिलेगा! खुद नहीं नाचते, नृत्य होता है उसे देखते हैं। खुद वीणा पर तार नहीं छेड़ते, कोई वीणा बजाता है कोई पेशेवर, उसको सुन आते हैं। अब तो वहां तक जाने की जरूरत नहीं है, घर में ही रिकॉर्ड बजा लिया और बड़े कला-पारखी हो गए।
फिल्म देख आते हैं... और देखते हो तुम, फिल्म में भी लोग कैसे देखते हैं! जानते हैं कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है। मगर तमाशबीनी ऐसी गहरी घुस गई है कि भूल-भूल जाते हैं। पर्दे पर कुछ नहीं है। पता है कि पर्दा कोरा है। देखा है कि पर्दा कोरा है। और पर्दे पर केवल धूप-छाया का खेल चल रहा है, कुछ भी नहीं है वहां; लेकिन पर्दे पर घटनाएं घटती हैं और तुम्हारा हृदय आंदोलित होने लगता है। अगर कोई बहुत सनसनीखेज घटना घट रही हो, कि किसी डाकू को पकड़ने के लिए पुलिस की कारें उसके पीछे लगी हों और पहोड़ियों के किनारों से और गोलाइयों पर भाग रही हों, दौड़ रही हों और तेज आवाज हो रही हो, तो फिर तुम टिके नहीं बैठे रहते कुर्सी से। फिर तुम एकदम सम्हल कर बैठ जाते हो, कोई चीज चूक न जाए।
तमाशबीनी बढ़ती जाती है। और जिन देशों में टेलीविजन फैल गया है वहां
तो और ही हालत बिगड़ गई है। अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति पांच घंटे औसत दिन में टेलीविजन देख रहा है। चौबीस घंटे में आठ घंटे सोने में चले गए। आठ घंटे दफ्तर जाना, दफ्तर से आना, दफ्तर में काम करने में चले गए। कुछ थोड़ा- बहुत खाने पीने में--सिगरेट पीना, दाढ़ी बनाना, इस सब में चला गया। जो बाकी समय बच जाता है पांच घंटे का, लोग बैठे हैं। लोग ऐसे बैठते हैं जैसे गोंद से चिपका दिए गए हों कुर्सियों से; उठते ही नहीं। अपने-अपने टेलीविजन के सामने बैठे हैं।
यह दिखाऊ, यह देखने की वृत्ति बड़ी घातक है क्योंकि इसका अर्थ तो यह हुआ कि अनुभव तुम कब करोगे? कोई फुटबॉल खेलता है वह भी तुम देखने चले; कोई हाकी खेलता है वह भी देखने तुम चले; कोई कुश्ती लड़ता है वह भी देखने चले, कोई नाचा वह भी देखने चले। फिल्म में किसी ने किसी को प्रेम किया वह भी देख आए। सब देखते ही रहोगे? कभी अनुभव भी कुछ करोगे? ध्यान को भी देखने आ जाते हो! और सब देखो तो देखो, कम से कम ध्यान तो अनुभव करो। मगर बस, लोग तमाशबीन

हैं। और तब ऐसे देख-देख कर तुम जो सीख लेते हो और उसको सीख-सीख कर जो करने लगते हो उसमें प्राण नहीं होते, वह निष्प्राण होता है। माला हाथ फेरता रहता है, मन में और हजार बातें चलती रहती हैं।
बिना गुरु के माला फेरै, जनम अकारथ जाय
खूब सावधान हो जाओ। अगर जीवन को अकारथ ही खो देना हो तो बस, ऐसे ही देख-देखकर, बिना झुके, बिना समर्पण किए, बिना सत्संग किए, बिना किसी सद्गुरु से जुड़े करते रहना! इसमें होशियारी मालूम पड़ती है। कुछ लोग किताबें पढ़ कर कर लेते हैं ध्यान। किताबों में से खोज लेते हैं। यह भी पक्का नहीं जिसने किताब लिखी है उसने कभी ध्यान भी किया?
मैंने बहुत किताबें देखी हैं। सौ किताबों में से शायद एक किताब ध्यान
पर नहीं लिखी जाती जो कि करने वाले लिखते हों। निन्यानबे तो उनके द्वारा लिखी जाती हैं जो बाकी और लोगों की लिखी हुई किताबों को पढ़कर लिखते हैं। क्योंकि मेरे पास ऐसे लोग आ जाते हैं जिन्होंने ध्यान पर किताबें लिखी हैं और जिनकी किताबें बड़ी प्रसिद्ध हैं; और मुझसे पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें? मैं उनसे पूछता हूं, तुम तो कम से कम न पूछो! तुमने तो इतनी सुंदर किताब लिखी। उन्होंने कहाः किताब तो सुंदर लिखी क्योंकि किताब तो सुंदर लिखी जा सकती है। वह तो दस-पच्चीस किताबें पढ़ीं और लिख दी। लिखना तो एक कला है। मगर ध्यान मुझे अभी नहीं आया।
न तो ध्यान किताबों से सीखा जा सकता है, न दूसरे लोगों को करते देख कर सीखा जा सकता है। ध्यान इतनी सूक्ष्म प्रक्रिया है कि किसी से भाव का मिलन हो, किसी से प्रीति का संबंध हो, किसी से नाता जुड़े ऐसी गहराई का कि जिसमें भेद-भाव न रह जाए, तब सीखा जा सकता है।
पिया मिलैं तो बड़े भाग से, नहिं तो कठिन कलेस
और एक बात को ही कसौटी मान लेना--परम प्यारा मिल जाए तो समझना कि जीवन सार्थक हुआ, नहीं तो जीवन सिर्फ एक दुख की लंबी यात्रा थी। कथा नहीं थी, सिर्फ व्यथा थी।
या जग ढूढूं वा जग ढूढूं, पाऊं अपने पास
और बड़े रहस्यों की बात यह है कि यहां ढूंढो वहां ढूंढो लेकिन जब पाया जाता है परमात्मा तो बिल्कुल अपने पास पाया जाता है; अपने से भी ज्यादा पास पाया जाता है। दूर है ही नहीं। यही कारण कि हम चूक रहे हैं। हम खोजते हैं दूर और परमात्मा है पास। शायद पास कहना भी ठीक नहीं, खोजने वाले में ही परमात्मा है। पास कहना भी ठीक नहीं, खोजनेवाला ही परमात्मा की एक तरंग है। अपने में ही झांक लोगे तो पा लोगे। मगर हमारी आंखें बाहर देखने की आदी हो गई हैं। आंख बंद भी करते हैं तो भी बाहर ही देखते हैं।
तुम आंख बंद करके देखना! आंख बंद कर लो फिर भी दुकान दिखाई पड़ती है, खाते-बही दिखाई पड़ते हैं। आंख बंद कर लो फिर भी वही लोग--पत्नी-बच्चे, घर, बाजार, मित्र। आंख बंद कर लो, वही संसार! रात सो जाते हो तब भी सपने में वही संसार।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात उठ कर जोर से अपनी चादर फाड़ दी। उसकी पत्नी ने रोका, अरे, अरे! यह क्या करते हो? मुल्ला ने कहाः तो तू अब दुकान पर भी आने लगी? तब होश उसे आया। कपड़ा बेचने का काम करता है, दिन भर कपड़े फाड़ता है। रात आ गया होगा कोई ग्राहक सपने में। आ गया जोश, फाड़ दी चादर। और नाराज बहुत हुआ पत्नी पर एक क्षण को तो। कि घर में बाधा डालती है वह तो ठीक है। घर में नहीं जीने देती। इधर न बैठो, उधर न बैठो, यह न करो, वह न करो। हद हो गई! तो तू अब दुकान पर भी आने लगी, कि कपड़ा भी न फाड़ो, कपड़ा भी न बेचो! नींद में भी तुम देखोगे क्या? तुम्हारी नींद भी तुम्हारे ही दिन की झलक है। तुम्हारी नींद में भी वही बाहर की भीड़, वही बाजार! वे ही काम थोड़े हेर-फेर से चलते रहते हैं। नींद की स्थिति में भी तुम भीतर नहीं जाते। और भीतर जाए बिना कोई अनुभव न कर पाएगा जीवन के सत्य का, अपना, स्वयं का, परमात्मा का।
या जग ढूढ़ं वा जग ढूढूं, पाऊं अपने पास
सब संतन के चरन-बंदगी, गावै दूलनदास

दूलनदास कहते हैं कि जब से यह जाना है कि अपने पास, जब से यह पहचाना है
कि अपने पास तब से सब संतों के चरण में बंदगी है। सब संतों के! ख्याल रखना। अगर तुम्हारे मन में सिर्फ महावीर के प्रति बंदगी है तो तुमने अभी पाया नहीं, जाना नहीं। अगर बुद्ध के सामने झुकने में तुम्हें संकोच है क्योंकि तुम जैन! कैसे बुद्ध के सामने झुको? कि राम के सामने झुकने वाला कैसे कृष्ण के सामने झुके? कि मोहम्मद के सामने झुकने वाला कैसे क्राइस्ट के सामने झुके? कि गीता पर फूल चढ़ाने वाला कैसे कुरान पर दो फूल रखे? अगर ऐसी कंजूसी है तुम्हारे भीतर अभी भी, समझ लेना कि पाया नहीं है अभी। जिसने पा लिया उसके लिए मंदिर और मस्जिद एक। मस्जिद पास होगी तो मस्जिद में जाकर ध्यान कर लेगा और मंदिर पास होगा तो मंदिर में जाकर ध्यान कर लेगा। इतनी सामर्थ्य होती है उसकी जिसने पा लिया; जिसे अनुभव हो गया है कि मैं कौन हूं, जिसने जान लिया कि मेरे भीतर कौन बैठा है। फिर कहीं भी बैठ गए! वह कुरान भी पढ़ लेगा और गीता भी और बाइबिल भी; और एक ही सदभाव से।
सब संतन के चरन-बंदगी गावै दूलनदास
तुमने जैनों का प्रसिद्ध मंत्र णमोकार सुना है न! जैन उसका बड़ा गलत अर्थ करते हैं। जैनों का मंत्र है--णमो अरिहंताणं। जिन्होंने पा लिया है, जो अरिहंत हो गए हैं उनको नमस्कार। लेकिन अगर किसी जैन पंडित से पूछो तो वह कहेगा, अरिहंतों को नमस्कार। अरिहंत यानी जैन सिद्ध। उसमें बुद्ध नहीं आएंगे, उसमें क्राइस्ट नहीं आएंगे, उसमें जरथुस्त्र नहीं आएंगे। जैसे सिद्ध होने का ठेका सिर्फ जैनों ने ले लिया हो! जैसे परमात्मा इतना कंजूस है कि उसने एक छोटी-सी गली बनाई है, बस, उसमें से जो गुजरेगा वही उसके मंदिर तक पहुंचेगा।
सारी गलियां उसकी हैं। यह सारा वृंदावन उसका है। अरिहंत का अर्थ जैन सिद्ध नहीं होता, अरिहंत का अर्थ होता है, जिसने अपने सारे शत्रु मार डाले। अरि यानी शत्रु, हंत यानी मार डाले। जिसने अपने सारे शत्रु मार डाले। न काम रहा न क्रोध रहा, न लोभ रहा न मोह रहा, न अहंकार रहा--ऐसा है जो उसको नमस्कार। णमो अरिहंताणं।
णमो सिद्धाणं--उनको सबको जिन्होंने अपनी आत्मा को सिद्ध कर लिया है। क्या तुम सोचते हो जिन्होंने यह मंत्र बनाया था उनको समझ नहीं थी कि इसमें जैन शब्द जोड़ देते! कहीं एकाध जगह जोड़ देते। एक जगह भी नहीं जोड़ा। णमो आयरियाणं--आचार्यो को नमस्कार, गुरुओं को नमस्कार, जिन्होंने बोध दिया उन्हें नमस्कार। णमो उव्ज्झायाणं--उपाध्यायों को नमस्कार। जिनके चरणों में बैठ कर कुछ सीखा उनको नमस्कार। और अंतिम वचन तो बहुत अदभुत हैः णमो लोए सब्ब साहूणं। सब साधुओं को नमस्कार--सब्ब साहूणं। इससे ज्यादा स्पष्ट क्या बात होगी? सब्ब साहूणं--सब साधुओं को नमस्कार।
लेकिन अगर जैन पंडित से पूछो तो वह कहता है, साधु का मतलब ही जैन साधु होता है। और बाकी तो असाधु हैं, कुसाधु हैं। गुरु का अर्थ ही जैन गुरु होता है, बाकी तो कुगुरु हैं। शास्त्र का अर्थ ही जैन शास्त्र होता है बाकी तो सब कुशास्त्र हैं। इस जगत में जाननेवालों ने अगर अमृत भी बरसाया है तो पंडितों ने उसे जहर कर दिया। णमो लोये सब्ब साहूणं!
दूलनदास कहते हैं, सब संतन के चरन-बंदगी, गावै दूलनदास।
जोगी जोग जुगत नहिं जाना
पहले ठीक से युक्ति सीख लो, विधि सीख लो, अनुशासन सीख लो। किसी से अनुशासित होओ।
जोगी जोग जुगत नहिं जाना
गेरू घोरि रंगे कपरा जोगी...
पहले किसी से हृदय तो रंगा लो, फिर कपड़े रंग लेना। हृदय पहले रंगना चाहिए।
गैरिक वस्त्र सनातन से संन्यास के वस्त्र हैं। गैरिक रंग प्रकाश का रंग है, सुबह उगते सूरज का रंग है। गैरिक रंग अग्नि का रंग है। गैरिक रंग फूलों का रंग है। ये तीनों बातें इसमें छिपी हैं--भीतर प्रकाश को जगाना है कि सुबह हो जाए; कि प्राची लाली हो उठे। कि भीतर आग जलानी है, जिसमें कि अहंकार भस्मीभूत हो जाए और तुम्हारा अस्तित्व शुद्ध कुंदन होकर प्रकट

हो। कि भीतर फूल खिलाने हैं। कली ही नहीं रह जाना है। कि भीतर सुगंध उड़ानी है।
मगर कपड़े ही रंगने से नहीं हो जाएगा। रंगना चाहिए हृदय फिर हृदय के पीछे कपड़े रंग जाएं तो ठीक। मगर यह मत सोचना कि कपड़े ही रंग लिए तो सब हो जाएगा। हृदय के रंग जाने से कपड़े तो रंग जाते हैं मगर कपड़े के रंग जाने से हृदय नहीं रंगता।
जोगी जोग जुगत नहिं जाना...
पहले युक्ति तो सीखो कि भीतर पहले बदलना होता है, फिर बाहर की बदलाहट। गेरु घोरि रंगे कपरा जोगी, मन न रंगे गुरु-ग्याना
गुरु के ज्ञान में अभी मन न रंगा, अभी भीतर प्राची लाली न हुई, अभी भीतर फूल न खिले, अभी भीतर मधुमास न आया, अभी भीतर ध्यान का जन्म न हुआ, अभी भीतर रंगे ही नहीं और बाहर-बाहर रंग लिया तो बहुत अड़चन ही नहीं है, बड़ी आसान बात है। कोई भी दो पैसे की गेरू ले ले। गेरू से सस्ती चीज और दुनिया में है भी क्या? कपड़े रंग लो और जोगी हो गए। काश, जोगी होना इतना सस्ता होता!
पढ़ेहु न सत्तनाम दुइ अच्छर...
नाम में दो ही अक्षर हैं। वे दो अक्षरों का भी तुम्हें पता न हो और तुम सोचते हो कि तुम सयाने हो जाओगे? सीखहु सो सकल सयाना। बिना प्रभु-स्मरण के तुम सोचते हो, सयाने हो जाओगे--शास्त्रों से शब्दों से सिद्धांतों से? तो किसको धोखा दे रहे हो? आत्मवंचना न करो।
सांची प्रीति हृदय बिनु उपजै, कहुं रीझत भगवाना
जब तक तुम्हारे हृदय में सच्ची प्रीति न उपजेगी, क्या तुम सोचते हो भगवान तुम पर रीझ सकेंगे?
सांची प्रीति हृदय बिनु उपजै, कहुं रीझत भगवाना
मिट जाती हैं स्रष्टा की,
जब-जब रचनाएं सुंदर।
तब-तब वह और बनाता,
उनसे भी अनुपम सत्वर।

कब जाना आहें भरना,
उसने असफल होने पर?
वह कब चुप हो बैठा है,
सिर को घुटनों में देकर?

क्यों छोड़ूं फिर मैं भी सखि,
नित नूतन जगत बनाना?
यह लाख बार बुझ जाए,
क्यों छोडूं दीप जलाना?
बहुत कठिनाई है हृदय को रंगने में इसलिए लोगों ने कपड़े रंगने में आसानी पाई। हृदय रंगने में कठिनाई है; रंग उतर-उतर जाता है, चढ़ता नहीं। भीतर का दीया जलाना कठिन है; बुझ-बुझ जाता है, जलता नहीं। ध्यान पकड़ में आता नहीं, आते-आते छिटक-छिटक जाता है। वर्षो लग जाते हैं तब कहीं ध्यान पकड़ में आता है। वर्षो लग जाते हैं जब कभी प्रेम पकड़ में आता है। मगर घबड़ाना मत। जब परमात्मा नहीं थका है और बनाता है जगत को रोज-रोज, नये-नये लोगों को जगत में जन्म देता है, तुम भी क्यों थको? हम भी उसी के अंग हैं। हम भी क्यों थकें?
क्यों छोड़ूं फिर मैं भी सखि,
नित नूतन जगत बनाना?
यह लाख बार बुझ जाए,
क्यों छोड़ूं दीप जलाना?
छोड़ना मत प्रयास। लगे ही रहना, लगे ही रहना, लगे ही रहना। एक दिन घटना सुनिश्चित है, घटेगी। तिथि तो नहीं बताई जा सकती। इसलिए हम पुराने दिनों में परमात्मा को अतिथि कहते थे। हम देवता को भी अतिथि कहते थे, अतिथि को भी

देवता कहते थे इसलिए। अतिथि और देवता का एक ही अर्थ करते थे। अतिथि का मतलब समझते हो? बिना तिथि बताए जो आ जाए।
आजकल जो अतिथि आते हैं, हमें कोई नया शब्द बना लेना चाहिए। वे तो तिथि बताकर आते हैं। वे तो तार कर देते हैं कि फलां गाड़ी से आ रहे हैं। अब उनको अतिथि कहना ठीक नहीं है। अतिथि शब्द का अर्थ चला गया। अतिथि का तो अर्थ पुराने दिनों में था। न कोई तार थे न कोई चिट्ठी थी, कोई खबर नहीं देता था। एकदम अचानक आकर मेहमान द्वार पर खड़ा हो जाता था। एकदम चौंका ही देता था। तैयारी करने का मौका भी नहीं देता था। पति-पत्नी को लड़ने-झगड़ने का कि फिर आ रहा है यह कमबख्त! अब फिर पता नहीं कितने दिन सताएगा! कि चलो मोहल्ले-पड़ोस से कुछ फर्नीचर मांग कर इकट्ठा कर लें। मौका ही नहीं था। अतिथि बिना तिथि बताए आ जाता था।
अतिथि को देवता कहते थे। क्यों? क्योंकि देवता भी बिना तिथि बताए ही आता है। वह भी अचानक एक दिन द्वार पर खड़ा हो जाता है। बस तुम्हारी तैयारी जिस दिन पूरी हो जाती है।
सांची प्रीति हृदय बिनु उपजै, कहुं रीझत भगवाना
दूलनदास के साईं जगजीवन, मो मन दरस दिवाना
दूलनदास कहते हैं, दीवाना हो गया हूं, पागल हो गया हूं, मस्त हो गया हूं। गुरु क्या मिले, दूलनदास के साईं जगजीवन। मुझे जगजीवन के मिलने में ही साईं मिल गया। तो जगजीवन मेरे साईं हो गए। उनसे मेरी क्या पहचान हो गई, परमात्मा से मेरी पहचान हो गई। अब तो बस एक दीवानगी छाई है। कैसे उसके दरस हो जाएं! गुरु तो मिल गया, द्वार तो मिल गया, अब मंदिर में कैसे प्रवेश हो जाए! भक्त रोता है, पुकारता है, .जार-.जार रोता है--आ जाने दो मंदिर में। खोलो द्वार।
जब पंचम में पिक बोला,
ऋतुराज आज हैं आए!
हंस कर कलियों ने अपने,
तब मधु के कोष लुटाए!

नीड़ों में चहक उठे तब,
अगनित खग-बालों के स्वर!
उन्मत्त हुईं किन्नरियां,
स्वागत के गाने गा कर!

पर ओस-बिंदु को जाने,
क्या बात कह गई आकर!
सिहरी, ढुल पड़ी निमिष में,
नयनों से नीर बहा कर!
फूल खिलते हैं और भक्त रोता है। पक्षी गाते हैं और भक्त रोता है। झरने बहते हैं और भक्त रोता है। वसंत आता है और भक्त रोता है। सावन की घटाएं घिरती हैं और भक्त रोता है। लेकिन उसका रोना मस्ती का रोना है। वह प्यारे के लिए रो रहा है। आंसुओं के सिवाय और हमारे पास चढ़ाने को भी क्या है! आंसू ही तो हमारे पास एकमात्र संपदा हैं जो हमारी अपनी है; जो हमारी आत्मा से आती है; जो हमारी गहराइयों से उतरती है; जो हमारा निचोड़ है; जो हमारे प्राणों की पुकार है; जो हमारा मंत्र-जाप है।
अगर सदगुरु के पास सीखा तो माला फेरना नहीं सीखोगे, आंसू झरेंगे। आंसुओं के मोतियों की माला फिरेगी। अगर सदगुरु के पास सीखा तो ये राम-राम राम-राम की तोता-रटंत नहीं होगी। भीतर निस-बासर, रोएं-रोएं में, कण-कण में, धड़कन-धड़कन में, बिना शब्द के निःशब्द और मौन एक अहर्निश प्रार्थना गूंजती रहेगी। फिर किसी मंदिर में पूजा के थाल नहीं सजाने होते, प्राणों के ही थाल सज जाते हैं। तब आता है, जरूर आता है अतिथि। मगर कब, किस घड़ी, कोई भी नहीं जानता है।
पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही।

मगर धन्यभागी हैं वे जिन्हें यह अंदेसा लग गया कि कब प्रभु का आना होगा! उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी मालूम होता है। मालूम होता है पहली खबरें आने लगीं, संदेश पहुंचने लगे। उसकी सुगंध उड़-उड़ कर आने लगी। उसकी शीतलता झरने लगी। उसके अमृत की बूंदा-बांदी होने लगी। जल्दी ही घनघोर वर्षा होगी। जल्दी ही अनंत सूरज निकलेंगे। मगर कब? कोई सुनिश्चित घड़ी नहीं हो सकती। कोई पहले से भविष्य-वाणी नहीं कर सकता। इतना कहा जा सकता है कि जो पुकारेगा वह पाएगा। जो प्यासा होगा उसकी प्यास बुझाई जाएगी।
जीसस ने कहा है, खटखटाओ और द्वार खुलेंगे; मांगो और मिलेगा। देर कितनी लगेगी द्वार खटखटाने में, यह तुम पर निर्भर है। तुम्हारे खटखटाने में कितनी त्वरा है, कितनी प्राणवंतता है, कितनी सजीवता है, कितनी समग्रता है! खटखटाओ, द्वार खुलेंगे। मांगो, मिलेगा। उस द्वार से न कोई कभी खाली गया है, न कभी कोई खाली जा सकता है।

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया छठवां प्रवचन

दूर जाना है मुझे

पहला प्रश्नः ओशो! दूलनदास एक ओर तो जीवन की क्षणभंगुरता का राग अलापते हैं और दूसरी ओर प्रेम-रस पीकर अल्हड़ मस्ती में डूब जाते हैं, जहां समय अनंत हो जाता है! कृपा करके उनके इस विपर्यास को हमें समझाएं।

नरेंद्र! क्षण भी शाश्वत का अंश है, वैसे ही जैसे बूंद सागर का; जैसे अणु विराट का। एक छोटे से पत्ते में भी समग्र वृक्ष का ही रस प्रवाहित हो रहा है। एक छोटे से फूल में भी सारे अस्तित्व ने अपना सौंदर्य, अपना रंग, अपना रस, सब कुछ डाल दिया है।
महाकवि टेनिसन के प्रसिद्ध वचन हैं कि अगर हम एक छोटे फूल को भी पूरा- पूरा समझ लें तो सारा अस्तित्व समझ में आ जाएगा। क्योंकि एक छोटा फूल भी ऊपर से ही छोटा मालूम पड़ता है, अनंत-अनंत मार्गों से समस्त से जुड़ा है। इस फूल में गंध न होती अगर पृथ्वी का अंग न होता। इस फूल में रंग न होते अगर सूरज से न जुड़ा होता। इस फूल में जीवन न होता अगर वायु इसमें श्वास न लेती होती। इसको जितना गहरे में खोजोगे उतना ही पाओगे कि फूल तो कब का खो गया, धीरे-धीरे सारा ब्रह्मांड तुम्हारे हाथ में आ गया है।
जैसे अणु पदार्थ के सबसे छोटे अंश का नाम है, ऐसे ही क्षण शाश्वतता के सबसे छोटे अंश का नाम है। क्षण शाश्वत का विरोधी नहीं है लेकिन क्षण में तुम जीते कहां हो? तुम तो जीते हो भविष्य में या जीते हो अतीत में। अतीत शाश्वत का हिस्सा नहीं है और न भविष्य। अतीत और भविष्य तो तुम्हारे मन के ही स्वप्न हैं। या तो स्मृतियां हैं या कल्पनाएं हैं; या तो मन पर जमी धूल है अनुभवों की, अतीत की या भविष्य की आकांक्षाएं, वासनाओं, तृष्णाओं का जाल है। क्षण तो दोनों के बीच में है। जब तुम अतीत में नहीं होते और वर्तमान में होते हो, भविष्य में भी नहीं होते और वर्तमान में होते हो, तब तुम क्षण में होते हो। मगर उसी क्षण से तो तुम सरक जाओगे शाश्वत में। जो क्षण में आ गया वह शाश्वत में आ गया।
संसार को क्षणभंगुर कहते हैं क्योंकि संसार समय का नाम है। संसार का अर्थ है, मैं जो कल था उसकी याद और जो मैं कल होना चाहता हूं उसकी वासना। संसार बनता है अतीत और भविष्य से, वर्तमान से संसार नहीं बनता। वर्तमान तो संसार से बिल्कुल बाहर है--होते हुए भी बिल्कुल बाहर है। वर्तमान से तो हम वंचित ही रहते हैं। अभी और यहां तो हम कभी होते ही नहीं। जब भी होते हैं, विचार से घिरे होते हैं। जब तुम निर्विचार, मौन, निःस्तब्ध, ठहरे हुए इस क्षण को अनुभव करोगे, द्वार खुल जाएगा मंदिर का; शाश्वत का द्वार खुल जाएगा।
और ऐसा भी नहीं है कि इस वर्तमान क्षण की कोई न कोई छाया तुम पर न पड़ी
हो, न पड़ती हो। कभी-कभी पड़ती है, तुम्हारे बावजूद पड़ती है। सुबह सूरज को उगते देख कर कभी तुम विस्मय-विमुग्ध खड़े रह गए हो। भूल गए थोड़ी देर को नोन-तेल-लकड़ी। भूल गए थोड़ी देर को तुम कौन हो, कहां हो, क्यों हो! थोड़ी देर को सन्नाटा हो गया। तुम्हारे और सूरज के बीच सेतु बन गया। थोड़ी देर को तुम सूरज हो गए, सूरज तुममें हो गया। थोड़ी देर को दृश्य और द्रष्टा में भेद न रहा। चाहे यह जरा से ही क्षण भर को क्यों न हो, क्षण के भी अंश में क्यों न हो, मगर जब यह होगा तभी सौंदर्य टूट पड़ेगा। सारे आकाश से सौंदर्य की वर्षा हो जाएगी, तुम अभिभूत हो उठोगे। या कभी संगीत को सुनते क्षणों में तार से तार मिल गए, भाव से भाव मिल गए और तुम सरक गए मन के बाहर। मन के बारह सरक गए तो संसार के बाहर सरक गए। संसार यानी मन। मन के बारह सरक गए यानी क्षण में डुबकी मार दी। और जिसने क्षण में डुबकी मारी उसने शाश्वत का स्वाद ले लिया।
प्रेमी जानते हैं इन क्षणों को झलकों की तरह। और भक्त जानते हैं इन क्षणों को स्थिर अनुभव की तरह। प्रेमियों को कभी-कभी जैसे बिजली कौंध जाए

ऐसे अनुभव होते हैं, और भक्तों को ऐसे जैसे सूरज निकल आया जो कभी डूबेगा नहीं।
तुम्हारा प्रश्न लेकिन सार्थक है क्योंकि तुम्हारे तथाकथित साधु-संत संसार को क्षणभंगुर कह कर संसार की निंदा कर रहे हैं। संसार क्षणभंगुर है इसका केवल इतना ही अर्थ है कि टिकेगा नहीं। इसलिए जो टिकेगा नहीं उससे अपने को बहुत मत जोड़ लेना और तुम उसी से अपने को जोड़े हो। अतीत जा चुका, टिका नहीं, फिर भी तुम जुड़े हो। कल किसी ने तुम्हारे गले में फूलमालाएं डाली थीं, न तो फूलमालाएं डालने वाले रहे, न फूलमालाएं रहीं, कब के फूल कुम्हला गए और मुर्झा गए और फेंक दिए गए। न तुम कल के अब रहे, कल का अब कुछ भी नहीं बचा है। मगर फूलमालाएं अब भी तुम्हारे गले में पड़ी हैं। अभी-अभी भी तुम आंख बंद कर के रस ले लेते हो उस प्रशंसा का जो कल तुम्हें मिली थी; वह सम्मान जो कल तुम्हें दिया था--क्षणभंगुर था; आया और गया। पानी का बबूला था, मगर तुम अभी भी पकड़े बैठे हो। हाथ में कुछ भी नहीं है लेकिन मुट्ठी डर के कारण खोलते नहीं कि कहीं ऐसा न हो कि दिखाई पड़े कि हाथ में कुछ भी नहीं है तो मुट्ठी बांधे बैठे हो। डर तुम्हें भी लगता है आशंका तुम्हें भी है कि हाथ में बबूला है भी या नहीं? खोलते भी नहीं मुट्ठी डर के कारण, बांधे ही रखते हो। कहीं साक्षात न हो जाए, कहीं अपने भीतर की रिक्तता दिखाई न पड़ जाए। और आने वाले कल को भी पकड़े हो जोर से। कल यह मिले, वह मिले, ऐसा हो जाऊं वैसा हो जाऊं।
क्षणभंगुर पर इतनी जोर से अगर मुट्ठियां कसोगे--यही संसार है। क्षणभंगुर क्षणभंगुर है ऐसा जानना, जब आए तब जी लेना और जब जाए तब चले जाने देना, यही संन्यास है। संन्यासी भी यहीं रहता है जहां संसारी रहता है। और तो रहोगे कहां! और तो जगह कहां है और तो स्थान कहां है, अवकाश कहां है? है तो यही एक जगत्। यही तारे, यही चांद, यही सूरज, यही वृक्ष, यही लोग! इन्हीं के बीच बुद्ध होकर रहोगे, इन्हीं के बीच कृष्ण होकर रहोगे, इन्हीं के बीच रोशन होकर रहोगे, इन्हीं के बीच अंधेरे होकर रह सकते हो। रहने का ढंग तुम्हारा होगा। मगर जहां तुम रहोगे, वह स्थान तो यही है। भेद क्या है? बुद्ध भी क्षण में रहते हैं, क्षणभंगुर में रहते हैं मगर यह बोध है कि किसी चीज पर मुट्ठी न बंधे। मुट्ठी बंधी कि पीड़ा हुई। आसक्ति न हो, हाथ खुले रहें। आए समय की धार और बहती रहे। अनुभव उतरें और जाते रहें, दर्पण पर धूल न जमे। दर्पण साफ रहे। जो गया सो गया और जो आया सो नहीं आया। जो है बस वही दर्पण में झलकता रहे। इधर गया कि उधर दर्पण से भी खाली हो जाए। दर्पण पकड़े न।
जाग्रत पुरुष बिना पकड़े जीता है। सोया हुआ पुरुष जो नहीं है उसको भी पकड़े रहता है। जागृत पुरुष जो है उसे भी पकड़ता नहीं। बस इतना ही भेद है। जानने वालों ने अगर कहा है कि क्षणभंगुर है संसार तो इसलिए कहा है कि ताकि तुम पकड़ो न। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संत भी तुम्हें दोहरा रहे हैं कि क्षणभंगुर है संसार। वे इसलिए कह रहे हैं ताकि तुम संसार छोड़ कर भाग खड़े होओ, पलायनवादी हो जाओ। उन दोनों के प्रयोजन अलग हैं। साधु-संत तुम्हें समझा रहे हैं, क्षणभंगुर है संसार। तुम्हारे लोभ को जगा रहे हैं। वे तुमसे यह कह रहे हैं, अगर पाना है तो उसको पाओ जो कभी छूटे न। वे तुम्हें और भी लोभी बना रहें हैं। वे कहते हैं स्वर्ग को पाओ, मोक्ष को पाओ, यहां क्या रखा है पाने में? एक ही वक्तव्य है लेकिन अलग-अलग लोगों के द्वारा दिए जाने पर अलग-अलग अर्थ का हो जाता है; उसकी भाव-भंगिमा बदल जाती है, उसकी मुद्रा बदल जाती है। तथाकथित साधु-संत तुम्हें संसार के विरोध में समझा रहा है। वह जीवन-विरोधी है। वह जीवन-निषेधक है, नकारात्मकता उसकी मौलिक स्थिति है। वह तुम्हें भी नकार में डाल रहा है। वह तुम्हारे पैरों को उखाड़ने की कोशिश कर रहा है। वह तुम्हें घबड़ा रहा है और तुम्हारे लोभ को प्रज्ज्वलित कर रहा है। और तुम्हें भयभीत कर रहा है।
यही वचन क्षणभंगुरता का दूलनदास जैसे बुद्धपुरुष भी उपयोग करते हैं।
वे भी कहते हैं जगत क्षणभंगुर है। उनका प्रयोजन? वे यह कह रहे है, जीओ; मौज भर कर जियो। पकड़ना मत। वे संसार-विरोधी नहीं हैं--हो नहीं सकते। संसार परमात्मा का है। इसके विरोध में होना परमात्मा के विरोध में हो जाना है।

यह तो उसी का साज बज रहा है। ये तो उसी चितेरे ने रंग भरे हैं। इनके विपरीत हो जाओगे, इनके शत्रु हो जाओगे, इनसे पीठ कर लोगे तो इनके मालिक के भी विपरीत हो जाओगे, याद रहे। इनके चितेरे के भी दुश्मन हो जाओगे, याद रहे। अगर इस संगीत की तुमने निंदा की तो तुमने संगीतज्ञ की भी निंदा की, यह भूल न जाए। फिर तुम लाख करना प्रार्थनाएं, तुम्हारी प्रार्थनाएं सार्थक नहीं हो सकेंगी। तुम्हारी मौलिक दृष्टि गलत हो गई, नकार की हो गई, निषेध की हो गई, विरोध की हो गई।
दूलनदास भी कहते हैं संसार क्षणभंगुर है, जागो। लेकिन यह नहीं कहते
कि संसार क्षणभंगुर है, भागो। उतना ही फर्क है। पंडित-पुरोहित कहता है, भागो! जागृत पुरुष कहते हैं, जागो! भगोड़ेपन से क्या होगा? भागोगे कहां? भागने को कोई स्थान कहां छोड़ा है परमात्मा ने; वह तो सब जगह भरा है। वहां भी उसकी कोयल गीत गाएगी जहां तुम भाग कर जाओगे। वहां भी उसका ही सूरज निकलेगा जहां तुम भाग कर जाओगे। वहां भी उसी की दूब हरी होगी जहां तुम भाग कर जाओगे। वहां भी उसके पक्षी और वहां भी उसके पौधे और वहां भी उसके लोग होंगे जहां तुम भाग कर जाओगे। ऐसे ही लोग, ऐसे ही पौधे, ऐसे ही पक्षी, ऐसे ही पशु, सब ऐसा ही होगा। यह सारा आकाश उसका है और इस आकाश से अन्यथा कोई आकाश नहीं है।
नहीं, भागा तो नहीं जा सकता लेकिन जागा जा सकता है। और जागने की कीमिया बिल्कुल अलग है, शास्त्र अलग है। जागने का अर्थ है, जीओ। दूलनदास कहते हैं, खूब प्रेम-रस पीकर जीओ, अल्हड़-अलमस्त होकर जीओ। प्रेमरंग-रस ओढ़ चदरिया। ओढ़ लो चादर प्रेम की, रंग की, रस की। बना लो जीवन को एक शाश्वत दीवाली--कि जलते ही रहें दीये; कि शाश्वत होली--कि रंग-गुलाल उड़ती ही रहे। इसे एक महोत्सव बना लो। मगर इतना ही स्मरण रहे, जो जाए, जाने देना, पकड़ना मत। जो अभी आया न हो, उसकी सोचना मत, अपेक्षा मत करना। जो सामने हो उसे जी लेना धन्यवाद से, प्रभु-अनुग्रह से। उसकी भेंट है! सूरज उगा है उसे नमस्कार कर लेना। जो सूरज डूबे गए उनकी तस्वीरें मत टांगे बैठे रहो और जो सूरज अभी उगे नहीं हैं, उनकी प्रशंसाओं में, स्तुतियों में गीत मत रचो। जो है वही परमात्मा है जो अभी उगा है, जो अभी मौजूद है। इस मौजूद के साथ तुम भी मौजूद हो जाओ उसी मौजूदगी का नाम प्रार्थना है। मौजूद के साथ मौजूद हो जाने का नाम प्रार्थना है।
इन दोनों बातों में विरोध नहीं है दूलनदास के वक्तव्य में। हालांकि
ये दोनों बातें इस तरह से कही गई हैं, इस तरह के लोगों ने कही हैं कि जिनकी बातों में विरोध की झलक मालूम होती है। मगर सचमुच जो जाग गया है उसके विरोधी वक्तव्यों में भी तारतम्य होता है, एकता होती है। उसके विरोध में दिखने वाले वचन भी एक ही तरफ इशारा करते हैं। उसके वक्तव्यों में विरोध हो ही नहीं सकता क्योंकि उसके भीतर विरोध नहीं है; वह अविरोध है, अद्वैत है तो उसके प्रत्येक वक्तव्य में अविरोध होगा, अद्वैत होगा।
कवियों ने भी गीत गाए हैं क्षण में जीने के, मगर उनके गीत केवल आकांक्षाएं हैं। बुद्धों ने भी गीत गाए हैं क्षण में जीने के, मगर उनके गीत उनकी अनुभूतियां हैं। प्रेमियों ने भी क्षण के महोत्सव को मनाना चाहा है, मनाया भी है, मगर प्रेमी की सामर्थ्य छोटी है, उसका प्रेम-पात्र छोटा है। कोई किसी स्त्री के प्रेम में है, कोई किसी पुरुष के प्रेम में है, कोई मित्र के प्रेम में है। प्रेम-पात्र ही छोटी है तो प्रेम भी छोटा हो जाएगा। पात्र में उतना ही तो भर सकोगे न जितना भर सकता है! भक्त का प्रेम-पात्र यह सारा अस्तित्व है, वह सारा आकाश है, यह सारा अनंत। और जब भक्त प्रेम से भरता है तो उसका प्रेम भी इतना बड़ा होता है, इतना विराट होता है, सभी को अपने में समाहित कर लेता है।
उफ ये पूरब की हवा, हाय ये काले बादल
रस भरी बूंदों से भीगा हुआ शब का आंचल
ला मेरा जाम, कहां है मेरी मै की बोतल?
आज पीने का मजा है मुझे पी लेने दे।
मौत की छांओं में एक रात तो जी लेने दे।

रात अपनी है मेरी जान, सहर हो कि न हो, फिर कोई लम्हा मुहब्बत का बसर हो कि न हो, और जुबारे-तरब शोला-ए-तर हो कि न हो,

कल खुदा जाने कहां जुस्तजू ले जाएगी? अजनबी वादियों में ठोकरें खिलवाएगी

मैं मुसाफिर हूं बहुत दूर है मेरी मंजिल, राह में सैकड़ों तूफाने-हवादिस हायल मैं कहां और कहां फिर ये निशाते-महफिल

सुबह होते ही उखड़ जाएगा डेरा अपना। जाने कल रात कहां होगा बसेरा अपना।

गम का मारा हुआ आलम का तड़पाया हुआ, नासाजा सूरते-हालात का सहमाया हुआ,
और इस कश-म-कशे-जीस्त से उकताया हुआ,

तोड़ कर बंदे-कफस आज यहां आया हूं।
अपने पहलू में दहकता हुआ दिल लाया हूं।।

बज्म में धूम मचाने के लिए आया हूं,
तलखी-ए-गम को भुलाने के लिए आया हूं,
आज मैं पीने-पिलाने के लिए आया हूं,

तू भी पी ले मेरी जां, मुझको भी पी लेने दे।
मौत की छांओं में इक रात तो जी लेने दे।।
ऐसा वक्तव्य कवि का है, ऐसा वक्तव्य प्रेमी का है। इस वक्तव्य की सीमा
है मगर इस वक्तव्य में भी शाश्वत की थोड़ी झलक है, सचाई के थोड़े आसार हैं।
यही झलक अपनी परिपूर्णता में बुद्धपुरुषों के वचनों में प्रकट होती है।
वे भी पीने-पिलाने का ही निमंत्रण दे रहे हैं। वे भी पीने-पिलाने को ही चले आए हैं यद्यपि उनकी शकाब बड़ी और है; और उनकी मधुशाला और, और उनका साकी भी और है, उनका प्रेमी और है। लेकिन मूल-सूत्र कहीं मेल खाता है।

आज पीने का मजा है मुझे पी लेने दे।
मौत की छांओं में इक रात तो जी लेने दे।।
कल का तो कोई भरोसा नहीं, कल तो मौत है। आज है हाथ में--आज की रात, आज का
दिन, आज का क्षण। और पी सकता हूं तो अभी पी सकता हूं।
आज पीने का मजा है मुझे पी लेने दे।
मौत की छांओं में इक रात तो जी लेने दे।।

उफ ये पूरब की हवा, हाय ये काले बादल
रस भरी बूंदों से भीगा हुआ शब का आंचल
ला मेरा जाम, कहां है मेरी मै की बोतल?
जिन्होंने खोजा है उन्होंने भी शाश्वत का जाम ही खोजा है। उन्होंने
भी मधुशाला की तलाश की है। कवियों की बातों में भीनी-भीनी भनक है, दूर की आवाज है, बहुत दूर की रोशनी झलक रही है लेकिन उस रोशनी में एक सच्चाई तो है।

रात अपनी है मेरी जान, सहर हो कि न हो
सुबह का क्या भरोसा!

रात अपनी है मेरी जान, सहर हो कि न हो,

फिर कोई लम्हा मुहब्बत का बसर हो कि न हो, और जुबारे-तरब-शोला-ए-तर हो कि न हो,

कल खुदा जाने कहां जुस्तजू ले जाएगी?
अजनबी वादियों में ठोकरें खिलवाएगी।।
कल का तो कुछ भी पक्का नहीं है।

सुबह होते ही उखड़ जाएगा डेरा अपना।
जाने कल रात कहां होगा बसेरा अपना।।
और इस कश-म-कशे-जीस्त से उकताया हुआ,

तोड़कर बंदे-कफस आज यहां आया हूं।
अपने पहलू में दहकता हुआ दिल लाया हूं।।

बज्म में धूम मचाने के लिए आया हूं,
तलखी-ए-गम को भुलाने के लिए आया हूं,
आज मैं पीने-पिलाने के लिए आया हूं,

तू भी पी ले मेरी जां, मुझको भी पी लेने दे।
मौत की छांओं में इक रात तो जी लेने दे।।
कवियों के इन निमंत्रणों में, तुम्हें बाहर की शराब की गंध आए तो आश्चर्य नहीं; बाहर के प्रेमी की झलक मिले तो आश्चर्य नहीं। लेकिन इन्हीं शब्दों को.जरा भीतर की तरफ उलटा दो, इन्हीं शब्दों को.जरा भीतर के प्यारे की तरफ पलटा दो। इन्हीं शब्दों को अंगूर की शराब से हटा लो और आत्मा की शराब की तरफ मोड़ दो। और फिर यही शब्द उपनिषद हो जाते हैं। यही शब्द भगवद्गीता बन जाते हैं। इन्हीं शब्दों से कुरान की आयतें उठने लगती हैं। जरा शब्दों को मोड़ देना सीखो।
ठीक तुमने पूछा कि एक तरफ तो जीवन की क्षणभंगुरता की बात कहते हैं दूलनदास और दूसरी ओर प्रेम-रस पीकर अल्हड़-मस्ती में डूब जाने का निमंत्रण भी देते हैं।
उनके शब्दों को वैसा ही मत समझना जैसा तुमने और कवियों के शब्द समझे हैं। ये कवि के शब्द नहीं हैं, नबी के शब्द हैं। ये ऋषि के शब्द हैं। इन शब्दों के साथ बहुत नाजुक नाता बनता है। ये शब्द बड़े कोमल हैं, इनको.जरा जोर से दबा दोगे, इनके प्राण निकल जाएंगे। इनको जरा इधर-उधर मोड़ दोगे, इनके अर्थ बदल जाएंगे। इनके साथ तो बड़ी होशियारी से पैर पूंक-पूंक कर रखना होगा।
क्षण भी शाश्वत का हिस्सा है--वह क्षण जो अभी मौजूद है। यह क्षण तुम मेरे पास बैठे हो, तुम मुझे सुन रहे हो, तुम एक शांति में हो, एक सन्नाटे में हो। पक्षी की धीमी सी आवाज भी आती है तो सुनाई पड़ती है। हवा भी गुजरेगी वृक्षों से, और सूखे पत्तों को खड़खड़ाएगी तो सुनाई पड़ेगा। तुम यहां ऐसे हो जैसे यहां कोई है ही नहीं। इस मौन में, इस आनंद में यह जो क्षण तुम्हारे सामने खड़ा है यह पृथ्वी पर है पर पृथ्वी का नहीं है। यह आकाश से उतरा है। इस क्षण को खूब जियो, प्रेम रंग-रस ओढ़ चदरिया! इस क्षण में मस्त होओ, डूबो, मगन होओ और तुम्हें इसी क्षण से परमात्मा का घर मिल जाएगा। यह द्वार है उसका। संसार क्षणभंगुर कहा जाता है ताकि तुम चीजों को पकड़ो मत। और क्षण में ठहरने का नाम ध्यान है ताकि तुम परमात्मा में प्रवेश कर जाओ।

दूसरा प्रश्नः ओशो! कृष्णमूर्ति ने गुरु और शिष्य का नाता न बना कर अपने लिए कोई मुसीबत खड़ी नहीं की; जबकि यहां आपको गुरु और शिशय का नाता बनाकर अपने लिए मुसीबतों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिल रहा है।
क्या बुद्धपुरुषों की करुणा में भेद है? अगर कोई भेद नहीं है तो भगवान आपने क्यों ऐसा असुविधापूर्ण रास्ता चुना?

मुकेश! ये बातें चुनने की नहीं हैं। ऐसा कोई चुनता नहीं है। ऐसा नहीं
कि कृष्णमूर्ति ने ऐसा चुना या मैंने ऐसा चुना। जब तक चुनने वाला है तब तक न तो कृष्णमूर्ति हो सकते हैं न मैं हो सकता हूं। जब तक चुनने वाला है तब तक बुद्धत्व घटता ही नहीं है। जब चुनने वाला विदा हो जाता है तब बुद्धत्व का अवतरण होता है। फिर जो होता है होता है, फिर जैसा होता है वैसा होता है-- चुनावरहित। जैसे वृक्ष के पत्ते हरे हैं उन्होंने कुछ चुना नहीं है, और गुलाब के फूल लाल हैं उन्होंने कुछ चुना नहीं है। जैसे कोई फूल सफेद है और कोई फूल पीला है, और कोई फूल ऐसी गंध से भरा और कोई फूल वैसी गंध से भरा। न तो चंपा ने चुना है न चमेली ने न जूही ने। चुनाव की बात ही नहीं है। जैसे जूही जूही है वैसे कृष्णमूर्ति कृष्णमूर्ति है, मैं मैं हूं, मलूक मलूक है, दादू दादू है, दूलन दूलन। यह बात चुनाव की होती तो संसार की ही हो जाती। संसार यानी चुनाव। जहां तुम चुनते हो वहां संसार है। और जहां तुम परमात्मा को अपने भीतर से बहने देते हो, जैसा बहे, जैसी उसकी मर्जी! तुम .जरा भी व्यवधान नहीं डालते, तुम जरा भी अपेक्षाएं नहीं करते, आकांक्षाएं नहीं करते। ऐसा हो, वैसा हो, .जरा भी नहीं सोचते; जैसा होता है होने देते हो। तुम बीच में आते ही नहीं। तुम द्वार दे देते हो, तुम हट जाते हो मध्य से। फिर परमात्मा तुम्हारे भीतर चमेली का फूल बने तो तुम क्या करोगे? या चंपा का फूल बने तो तुम क्या करोगे? फिर जो बने, बने। फिर जो बने, उसकी मौज! फिर जो बने वही तुम्हारी मौज, वही तुम्हारा आनंद।
मुकेश, इस तरह से मत सोचो कि कृष्णमूर्ति ने चुना कि शिशय और गुरु का नाता नहीं बनाना है। कि इससे उपद्रव खड़े होते हैं, कि इससे झंझटें आएंगी। क्यों मुसीबतों में पड़ना! क्यों झंझटों में पड़ना! ऐसा चुना नहीं, परमात्मा उनके भीतर इस ढंग से प्रकट हुआ। मैंने भी कुछ ऐसा चुना नहीं है कि शिशय हों। और शिशयों के साथ स्वाभावतः आने वाले उपद्रव होंगे। जहां भीड़ होगी वहां उपद्रव होंगे, कठिनाइयां होंगी, अड़चनें होंगी। एक आदमी आता है तो अकेला थोड़े ही आता है, अपने साथ हजार उपद्रव लाता है। जब एक आदमी को तुम अंगीकार करते हो तो तुम उसके भीतर के सारे उपद्रव अंगीकार करते हो। कोई आदमी अकेला-अकेला थोड़े ही आता है, हर आदमी एक भीड़ है। और जब एक आदमी आता है तुम्हारे पास सत्य की तलाश में, अंधेंरे में भटकता हुआ तो अंधे आदमियों की भीड़ इकट्ठी करोगे तो बहुत तरह के उपद्रव होंगे। अंधरे में भटके लोगों को इकट्ठा करोगे तो बहुत टकराहटें होंगी, लोग गिरेंगे, उठेंगे, यह सब होगा। विक्षिप्त लोगों को इकट्ठा करोगे तो शोरगुल तो मचेगा। सब तरह की मुसीबतें होंगी मगर यह मत सोचना कि ऐसा मैंने चुना है। यह मेरा चुनाव नहीं है। जैसी उसकी मर्जी! मेरे द्वारा उसकी यही मर्जी है तो यही हो। और तुम यह भी मत सोचना--जैसा कि तुम कह रहे हो कि आपको सिवाय मुसीबतों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिल रहा है। तुम्हें मुसीबतें दिखाई पड़ती होंगी, मुझे कोई मुसीबत नहीं दिखाई पड़ती। जब चुनते ही नहीं तुम तो फिर कैसी मुसीबत और कैसी नहीं मुसीबत! फिर जो है ठीक है, जो है सुंदर है, जैसा है शुभ है। मुझे कोई मुसीबत नहीं दिखाई पड़ रही है।
गुलाब बोओगे तो उसमें कांटे लगते हैं, इसमें मुसीबत क्या है? यह तो सीधा-साफ गणित है। गुलाब के फूल चाहते हो तो कांटे भी आते हैं साथ-साथ। और कांटों के बिना गुलाब के फूल पूरे-पूरे गुलाब के फूल नहीं होंगे। कुछ कमी रह जाएगी, उनमें धार न होगी, उनमें तलवार न होगी। उनके भीतर कुछ अप्रकट रह जाएगा। उनकी सहजता, स्वाभाविकता न होगी। तो मेरे लिए कोई मुसीबत नहीं है। तुम सोचते हो, मंसूर को सूली लगी तो मंसूर सोच रहा था कि बड़ी मुसीबत में पड़ा। क्यों न चुप रह गया! कितनी बार तो लोगों ने समझाया था कि मंसूर, मत घोषणा कर "अनलहक" की; मत कह कि मैं परमात्मा हूं, इससे झंझट खड़ी होगी। मंसूर के गुरु ने भी उससे बहुत बार कहा था कि मत कह यह बात। क्या तू सोचता है कि तुझी को पता है, मुझे पता नहीं? मुझे भी पता है, मैं भी जानता हूं मगर चुप हूं, कहता नहीं। तू भी मत कह। मंसूर वचन भी दे देता था कि नहीं कहूंगा, अब नहीं कहूंगा। जब आप कहते हैं तो अब नहीं कहूंगा और घड़ी नहीं बीती, और मंसूर अपनी मस्ती में आ गया है और फिर वही--अनलहक! फिर वही उदघोषणा--अहं- ब्रह्मास्मि।

तो गुरु कहता कि तू वायदे दे देकर वायदे क्यों तोड़ देता है? मंसूर कहताः वायदे मैं देता हूं, वायदे तोड़नेवाला दूसरा है। जब मैं मौजूद होता हूं और जब आप समझाते हैं तो बात बिल्कुल समझ में आती है। मगर वैसी घड़ियां आती हैं जब मैं मौजूद ही नहीं होता और जब वही मेरे भीतर से बोलने लगता है अनलहक, तो मैं क्या करूं, मैं कौन हूं? न वहां मैं हूं, न मेरा दिया वायदा है, न तुम्हारी याद है, न कोई और है। वहां वही अकेला है और वह मालिक है; वह मालिकों का मालिक है। उसके सामने मेरी चले भी क्या! वह जो कहना चाहता है, कहलवा लेता है। जबान उसकी है, ओंठ उसके है, कंठ उसका है, प्राण उसके हैं। मैं करूं तो क्या? जब अपने होश में होता हूं तो तुम्हें वायदा कर देता हूं लेकिन वैसी भी घड़ियां हैं जो मेरी नहीं हैं, उसकी हैं।
मंसूर को जब सूली लगी तो क्या तुम सोचते हो मंसूर दुखी था, कि मैंने यह झंझट क्यों ली, चुप रह जाता! नहीं, मंसूर हंस रहा था। खिलखिला कर हंस रहा था जब उसे मारा गया। और किसी ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर, तू क्यों हंसता है? तो मंसूर ने कहा मैं इसलिए हंसता हूं, परमात्मा की तरफ देख कर मैं हंस रहा हूं कि तू मुझे धोखा नहीं दे सकेगा। तू बहुत रूपों में आया है, आज तू हत्यारे के रूप में आया है, मगर तू मुझे धोखा नहीं दे सकेगा। मैं तुझे पहचान रहा हूं। मैं तेरे हाथ पहचानता हूं, मैं तेरे ढंग पहचानता हूं, मैं तुझे पहचानता हूं। आज तू तलवार लेकर मेरी गर्दन काटने आया है, शायद यह तू मेरी आखिरी परीक्षा ले रहा है। यह भी सही! मैं हंसते हुए मरूंगा। यह मेरी कसौटी है क्योंकि मैं कहता हूं तेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है तो हत्यारे में भी तू है और तलवार में भी तू है। और यह गर्दन गिरेगी तो तेरे कारण गिरेगी। पर तूने ही बनाई थी और तूने ही गिराई। तू जान, तेरा काम, तू समझ। मैं बीच में कौन! मैं खिलखिला कर हंस रहा हूं, सारा खेल देख कर हंस रहा हूं।
नहीं, मंसूर मुसीबत में नहीं था।
मुकेश, तुम्हें दिखाई पड़ता होगा कि मुझे हजार तरह की मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कोई मुसीबत नहीं है। उसका खेल है, वह जाने।
तुमने यह भी पूछा कि क्या बुद्धपुरुषों की करुणा में भेद है? करुणा में तो कभी भेद नहीं होता। करुणा में कैसे भेद होगा? करुणा यानी करुणा। कई तरह की करुणा नहीं होती मगर बुद्धपुरुषों के व्यक्तित्व में भेद होता है। समझो, कोई वीणावादक अगर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाए तो मेरे जैसा बोलेगा नहीं, वीणा बजाएगा। उसे जो अनुभव हुआ है, वीणा के स्वरों में ढालेगा। मैं वीणा नहीं बजा सकता हूं। मीरां को अनुभव हुआ, मीरां नाची; बुद्ध नहीं नाचे। बुद्ध को अनुभव हुआ, बुद्ध चुप बैठ गए। सात दिन तक बोले ही नहीं, शून्य हो गए। बुद्धों के व्यक्तित्व में भेद होता है। जैसे कि तुम बहुत तरह की लालटेनें बना सकते हो--और किसी में लाल रंग का कांच और किसी में नीले रंग का कांच और किसी में पीले रंग का कांच और कोई सोने की लालटेन, कोई चांदी की लालटेन और कोई पीतल की और कोई लोहे की, कोई मिट्टी की। लेकिन जब भीतर दीया जलाओगे तो रोशनी तो एक होती है। रोशनी अलग-अलग नहीं होती, मगर नीचले कांच की लालटेन से रोशनी जब बाहर आएगी तो नीली मालूम होगी, और पीले रंग की लालटेन से जब बाहर आएगी तो पीली मालूम होगी। जहां से जन्मती है स्रोत से, वहां तो एक ही रंग है उसका, एक ही ढंग है उसका लेकिन तुम तक पहुंचते-पहुंचते रंग-ढंग बदल जाएगा।
कृष्णमूर्ति से रोशनी एक रंग ले लेती, मुझसे एक रंग लेगी। नानक से एक रंग लिया, मोहम्मद से और रंग लिया। इसलिए तो दुनिया में इतना विवाद चलता है। कि लोग तय ही नहीं कर पाते कि कौन बुद्धपुरुष! अगर महावीर को बुद्ध मानो तो मोहम्मद को कैसे मानो? क्योंकि महावीर ने तो पैर पूंक-फूंक कर रखा। तलवार तो दूर, हाथ में डंडा भी नहीं रखा। और मोहम्मद के हाथ में तलवार है। अगर महावीर को बुद्ध मानो तो मोहम्मद को कैसे बुद्ध मानो? और अगर मोहम्मद को बुद्ध मानो--हाथ में तलवार, तो फिर राम हो सकते हैं बुद्ध-- धनुषबाण और कृष्ण भी हो सकते हैं बुद्ध, लेकिन फिर महावीर बुद्ध न हो सकेंगे।

मनुष्य-जाति के लिए बड़ी विवाद की स्थिति रही है क्योंकि हमने व्यक्तित्वों को पकड़ लिया और व्यक्तित्वों के पीछे छिपे हुए सार को नहीं पकड़ा। महावीर की नग्नता में जो झलक रहा है वही मोहम्मद की तलवार में चमकता है। यह देखने के लिए.जरा आंखें चाहिए। बुद्ध के शून्य में जो प्रकट हो रहा है, मीरा के घूंघर में वही बज रहा है; इसे देखने के लिए जरा गहरी आंख चाहिए। पंडित इसे नहीं देख पाएगा। पंडित के पास कोई आंख होती है? शब्दों और शास्त्रों का ज्ञाता इसे नहीं समझ पाएगा। इतने भेद हैं--कहां मीरां, कहां महावीर, कहां बुद्ध, कहां मोहम्मद, कितने भेद हैं! और भेद हो भी क्या सकते हैं ज्यादा?
अगर दुनिया के बारह बुद्धपुरुषों के नाम, और उनकी जीवनचर्या, और उनके ढंग, और उनकी अभिव्यक्तियां तुम विचार करने लगो तो विक्षिप्त हो जाओगे। तय ही न कर पाओगे कि किसको मानें, किसको न मानें! एक तरफ जीसस हैं सूली पर लटके हुए, और एक तरफ कृष्ण हैं बांसुरी बजाते हुए। कहां तालमेल! क्योंकि ईसाई कहता है कि क्राइस्ट तो वही है जिसने मनुशयता के उद्धार के लिए अपने प्राण दे दिए। अगर यह बात सच हो तो कृष्ण का बांसुरी बजाना तो.जरा अशोभन मालूम होगा। जहां दुनिया में इतना कष्ट है, लोग भूखों मर रहे हैं, लोग बीमार हैं, जहां मृत्यु है, जहां हजार-हजार दुर्दिन हैं, वहां कृष्ण को बांसुरी बजाने की सूझी? यह बात तो बड़ी विलासपूर्ण मालूम पड़ती है। वहां कृष्ण को मोरमुकुट बांधने की सूझी। ये कोई प्रबुद्धपुरुष के लक्षण मालूम होते हैं?
अगर क्राइस्ट को स्वीकार कर लो कसौटी की तरह तो कृष्ण बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। मगर यही बात क्राइस्ट के साथ हो जाएगी अगर कृष्ण को कसौटी मान लो। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, यह सारा अस्तित्व परमात्मामय है। अब हमारे पास बचा क्या, सिवाय नाचने के? यहां कहां दुख है? और अगर है तो तुम सिर्प स्वप्न देख रहे हो; सत्य में कोई दुख नहीं है, सिर्प स्वप्न में दुख है। तुम एक दुख-स्वप्न देख रहे हो। और तुमने दुख-स्वप्न देखे हैं तो तुम कितने घबड़ा जाते हो, कितने बेचैन, पसीने-पसीने हो जाते हो! सर्द ठंडी रात में भी पसीना छूट जाता है और जब आंख खुलती है तब भी थोड़ी देर तक छाती धड़कती रहती है। जानते हो तुम कि सपना था, अब तुम्हें पहचान में भी आ गया कि सपना था, मगर फिर भी थोड़ी देर तक शरीर को शांत होने में समय लगता है। तुम बहुत घबड़ा गए थे।
कृष्ण कहते हैंः यह सारा जगत्, अगर बंद आंख से देखो तो एक सपना है। और सपने में तुम बहुत दुख झेल रहे हो। चूंकि सपने के दुख ही झूठे हैं, इसलिए क्या रोना, क्या धोना! जागो! और बांसुरी बजाता हूं ताकि तुम जाग सको। उद्धार की जरूरत है ही नहीं, सिर्प जागरण की जरूरत है। और बांसुरी से ज्यादा प्यारा ढंग जगाने का और क्या होगा? और सुमधुर, और लालित्यपूर्ण और सुंदर जगाने का ढंग क्या होगा? कहां की सूली इत्यादि लगा रखी है! और किसी के सूली पर चढ़ने से कहीं किसी का उद्धार होता है! अगर ऐसा होता तो जीसस के बाद सबका उद्धार हो गया होता। मगर जो अंधेरे में पड़े हैं वे अंधेरे में ही पड़े हैं। जिनको सपना देखना है वे सपना ही देख रहे हैं। जिन्हें दुख भोगना है वे दुख भोग ही रहे हैं। कितने ही लोग सूली पर टंगें और न टंगें, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
अगर कृष्ण को कसौटी मानो, तो क्राइस्ट रुग्ण मालूम पड़ते हैं। अगर कृष्ण को नहीं, क्राइस्ट को कसौटी मानो, तो कृष्ण विलासी मालूम पड़ते हैं। क्या करो? और मैं तुमसे कहता हूंः इन सबके भीतर एक ही रोशनी प्रकट हो रही है--जो रोशनी क्रास पर प्रकट हुई थी जीसस के जीवन में, वही रोशनी जब बांसुरी बजती है कृष्ण की तो प्रकट होती है। मगर लालटेनों के रंग अलग-अलग हैं। ढंग अलग-अलग हैं। प्रकाश एक है। और यह कोई चुनाव की बात नहीं है। ऐसा नहीं कि कृष्ण ने चुना कि मैं तो बांसुरी ही बजाऊंगा; कि जीसस ने चुना कि मैं तो सूली पर लटक कर ही रहूंगा, क्योंकि दुनिया का उद्धार करना है!
जिन लोगों ने अपने अहंकार को छोड़ दिया है उनके लिए अब चुनाव का उपाय कहां है! अब तो वे उसके हाथ में हैं, जो उसकी मर्जी! बांसुरी बजवानी हो, बांसुरी बजवा ले; सूली पर लटकवाना हो, सूली पर लटकवा ले। जो उसकी मर्जी!

लेकिन बांसुरी बजाने में भी वही आनंद होगा, सूली पर लटकने में भी वही आनंद होगा। अब आनंद में भेद नहीं पड़ेगा।
और यह अच्छा है कि सारे बुद्धपुरुष एक जैसे नहीं होते, अन्यथा बड़ी बेरौनक बात हो जाती। यह दुनिया बड़ी नमक से खाली हो जाती। इस दुनिया में नमक है थोड़ा, थोड़ा स्वाद है, क्योंकि इस दुनिया में बुद्धपुरुष होते हैं भिन्न-भिन्न रंग-रूप के।.जरा सोचो एक दुनिया, जिसमें गुलाब ही गुलाब के फूल होते हैं, बस गुलाब ही गुलाब के फूल होते हैं, तो करोगे क्या--भैंसों को चराओगे, और करोगे क्या? घर पर घास-पात की तरह चढ़ाओगे, और करोगे क्या? और गुलाब की पूछ क्या रह जाएगी, उसका सम्मान क्या रह जाएगा, उसका अर्थ क्या रह जाएगा?
नहीं, दुनिया प्यारी है क्योंकि बहुत ढंग के फूल खिलते हैं, रंग-रंग
के फूल खिलते हैं। और बुद्धत्व तो चरम शिखर है फूल होने का; वहां तो बड़ी अद्वितीयता प्रकट होती है। बुद्धत्व बड़ा विरोधाभास है; वहां व्यक्ति एकदम अद्वितीय होता है, बेजोड़ होता है और साथ ही सार्वभौम होता है। एक तरफ से, परमात्मा की तरफ से तो सार्वभौम होता है; मनुष्य की तरफ से अद्वितीय होता है--उस जैसा न कभी कोई हुआ, न कोई कभी होगा।
तो तुम यह मत पूछो कि क्या करुणा में भेद है? करुणा तो एक ही है। लेकिन जिन-जिन व्यक्तित्वों से बहती है उससे भेद पड़ जाते हैं। करुणा में भेद नहीं होत, लेकिन व्यक्तित्वों से भेद पड़ जाते हैं, माध्यम से भेद पड़ जाते हैं।
और चुनाव की कोई बात ही नहीं है, जरा भी चुनाव की कोई बात नहीं है।
और मुकेश, कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रश्न के बहाने तुम खुद अपनी घबड़ाहट प्रकट कर रहे हो? पूछ तो रहे हो मेरे संबंध में कि मैंने क्यों मुसीबतें मोल ले ली हैं, कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम मुझसे जुड़ कर डर रहे हो, घबड़ा रहे हो अब? क्योंकि जो मुझसे जुड़ेगा उस पर भी कुछ तो छींटा-छांटी पड़ेगी ही, जब मुझ पर वर्षा होगी तो छींटे उस पर पड़ने ही वाले हैं। कहीं- कहीं अंतर में यह डर तो नहीं है कि मैं भी किस मुसीबत में पड़ गया संन्यासी होकर! और लोग तुम पर भी हंसेंगे, लोग तुमको भी पागल कहेंगे, लोग तुम्हारा भी विरोध करेंगे, तुम्हें भी अड़चनें डालेंगे। और स्वभावतः, मुझसे ज्यादा अड़चनें तुम्हें डाल सकते हैं, क्योंकि तुम बाजार में हो, दुकान में हो, दफ्तर में हो, काम-काज में हो। उन्हीं लोगों से दिनभर सुबह से सांझ तक काम है, उन्हीं से मिलना है, उन्हीं से जुलना है। उनसे हजार तरह के संबंध हैं, नाते-रिश्ते हैं। कहीं तुम्हारे भीतर कोई और भय तो नहीं है? अगर भय हो तो उसे सचेतन रूप से समझने की कोशिश करो।
अकसर ऐसा हो जाता है, तुम पूछते कुछ हो, तुम्हारा अचेतन पूछना कुछ और चाहता था। लोग प्रश्न भी सीधे-सीधे नहीं पूछते; लोग प्रश्नों को भी सुंदर ढंग दे देते हैं। जैसा प्रश्न होता है नंगा, वैसा नहीं पूछते; उसे सुंदर वस्त्र पहना देते हैं। अगर तुम्हें मुसीबतें मालूम होती हों तो अंगीकार करना उन्हें, क्योंकि बिना मुसीबतों से गुजरे कोई निखरता नहीं। स्वीकार करना उन्हें। सौभाग्य की भांति स्वीकार करना। क्योंकि कांटों पर चल कर ही चलना आता है। और चुनौतियों में ही प्रतिभा पर धार आती है। और जितनी ही चारों तरफ लपटें होंगी उतने ही तुम निखरोगे।
ताकते-रफ्तार "ताबां" आजमाना है मुझे,
मुश्किलाते-राह को आसां बनाना है मुझे,
कुछ भी हो लेकिन कदम आगे बढ़ाना है मुझे,
दूर जाना है मुझे।

गर्मी-ए-रफ्तारे-अहदे-नौजवानी की कसम, बर्क-गामी की कसम, तूफां-खरामी की कसम, इम्तियाजे-दूरी-ओ-कुरबत मिटाना है मुझे, दूर जाना है मुझे।

बढ़ चुका है जो कदम पीछे वो हट सकता नहीं,

चाहे कुछ हो जाए लेकिन मैं पलट सकता नहीं, अब तो बढ़ना है मुझे, बढ़ते ही जाना है मुझे, दूर जाना है मुझे।

डगमगाता, लड़खड़ाता, ठोकरें खाता हुआ,
मैं चला जाऊंगा कुर्बो-बोद पर छाता हुआ, जर्रा-ए-साबित को सइयारा बनाना है मुझे, दूर जाना है मुझे।

रास्ते में खशमगीं तूफान हायल ही सही, इक-इक जर्रा जफा-कोशी पे मायल ही सही,
हम नशीं फिर भी कदम आगे बढ़ाना है मुझे, दूर जाना है मुझे।

खार क्या तलवार सद्दे-राह बन सकती नहीं, आहनी दीवार सद्दे-राह बन सकती नहीं, इंकिलाबी अज्में-मुस्तहकम दिखाना है मुझे,
दूर जाना है मुझे।

राह की दुश्वारियों से खेलता जाऊंगा मैं,
सषत नाहमवारियों से खेलता जाऊंगा मैं,
आबला-पाई पे "ताबां" मुस्कराना है मुझे,
दूर जाना है मुझे।
मुकेश, संन्यास तो एक लंबी यात्रा का प्रारंभ है--एक शुरुआत मात्र, पहला कदम। अभी से डर मत जाना, अभी से घबड़ा मत जाना। एक बात हमेशा याद रहे कि सत्य की खोज में झेली गई कोई भी मुसीबत व्यर्थ नहीं जाती। वही तो कीमत है जो सत्य के लिए चुकानी पड़ती है। खुशी से चुकाना, हंसते हुए चुकाना, मुस्कुराते हुए चुकाना। क्योंकि रोकर चुकाई तो क्या चुकाई! हंसकर चुकाई तो ही चुकाई।
तो कहीं अचेतन में तुम्हारे भय न हो! होगा जरूर, उसी भय से यह प्रश्न
उठ आया है। इस प्रश्न ने सुंदर रूप लिया, मगर अपने भीतर तलाश करना। तुम इसके कुरूप रूप को भी अपने भीतर कुंडली मारे हुए पाओगे। और आदमी बड़ा चालबाज है; बड़ी बेईमानियां, बड़े तर्क और बड़े-बड़े हिसाब-किताब खोज लेता है अपने को बचाने के लिए, बड़ी आड़ें बना लेता है। और अपने को समझा लेता है कि जो मैं कर रहा हूं ठीक कर रहा हूं। मगर अगर जरा सजगता रखो तो ऐसा धोखा देना संभव नहीं हो पाएगा क्योंकि तुम भलीभांति जानते हो कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। और तुम भलीभांति जानते हो कि कब तुमने अपने घावों को छिपा लिया और कब तुमने अपनी कमजोरियों को दबा लिया और कब तुमने अपने झूठों के ऊपर सत्य के पर्दे डाल दिए। शब्दों के ही होंगे वे पर्दे, सिद्धांतों के ही होंगे वे पर्दे।
शायद तुम सोचते हो कि कृष्णमूर्ति ने सोच-विचार कर झंझट मोल नहीं ली,
तो तुम गलती में हो। जो हुआ है सहज हुआ है। और ऐसा भी नहीं है कि जो हुआ है उसमें झंझटें न आई हों। झंझटें आई थीं। अब काफी देर हो गई, लोग धीरे-धीरे भूल गए। झंझटों के दिन बीत गए। पचास साल पहले आई थीं। अब उनकी उम्र भी हो गई। पचास साल पहले झंझटें आई थीं, खूब आई थीं!
जैसे मैंने सारी दुनिया में संन्यासियों को फैला कर झंझट ले ली-- तुम्हें लगता है--ऐसे ही उन्होंने सारी दुनिया में फैले हुए अपने शिशयों को इंकार करके झंझट ले ली थी। वह झंझट भी कुछ छोटी नहीं थी, क्योंकि जो अपने थे वे दुश्मन हो गए। जो कल तक मरने को तैयार थे, वे मारने को तैयार हो गए। जिन्होंने कल तक आशाएं रखी थीं उनके ऊपर वे ही दुश्मन हो गए। मगर वह भी अपने-आप हुआ था। वह घटना तुम्हें स्मरण करने जैसी है।
आज से पचास साल पहले सारी दुनिया से कृष्णमूर्ति को प्रेम करने वाले उनके भक्त, उनके शिशयों का एक समूह हालैंड में इकट्ठा हुआ था। छह हजार लोग

सारी दुनिया से इकट्ठे हुए थे। जैसे आज सारी दुनिया सें मेरे पास लोग इकट्ठे हो रहे हैं, पचास साल पहले उनके पास इकट्ठे हो रहे थे। वह सम्मेलन एक विशेष आयोजन से किया गया था, कि उस सम्मेलन में वे घोषणा करनेवाले थे अपने जगतगुरु होने की। सारी तैयारियां हुई थीं। दूर-दूर से लोग बड़ी आशाएं लेकर आए थे। और किसी को सपने में भी कल्पना नहीं हो सकती थी कि क्या होगा! जो निकटतम थे कृष्णमूर्ति के उनको भी पता नहीं था क्या होगा। एनीबीसेंट, जिन्होंने कृष्णमूर्ति को मां की तरह पाला और बड़ा किया था, उनको भी पता नहीं था कि क्या होगा! कृष्णमूर्ति को खुद भी पता नहीं था कि कल क्या होगा। और कल सुबह उठ कर जब वे गए सम्मेलन में और मंच पर खड़े हुए तो जो हुआ दूसरे तो चौंके ही चौंके कृष्णमूर्ति भी चौंक गए। क्योंकि जो वक्तव्य निकला वह बहुत अनूठा था। वह वक्तव्य यह था कि मैं इनकार करता हूं, मैं किसी का गुरु नहीं हूं। जगतगुरु की तो बात ही अलग, मैं किसी का भी गुरु नहीं हूं। और न किसी को शिशय होना है, न किसी को गुरु होना है।
तुम थोड़ा सोचो, वे छह हजार लोग दूर-दूर से आए थे इसीलिए। वर्षों से इसकी तैयारी की गई थी।.जरा बेचारी बूढ़ी एनीबीसेंट की सोचो, जिसने हर तरह की मुसीबत उठाई थी। हर तरह की मुसीबत उठाई गई थी! कृष्णमूर्ति को तैयार किया गया था वर्षो तक, योग्य बनाया गया था कि वे ठीक-ठीक माध्यम बन सकें विश्वचेतना के प्रकट होने के लिए। एक बुद्धत्व का जन्म हो सके इसके लिए उनके पात्र को सब तरह से शुद्ध किया गया था, सब तरह के प्रशिक्षण जो संभव थे, दिए गए थे। और इसमें बहुत अड़चनें आई थीं। खुद कृष्णमूर्ति के पिता ने बहुत अड़चनें डाली थीं। क्योंकि कृष्णमूर्ति के पिता... जैसे कि हमेशा उपद्रव खड़े हो जाते हैं, खड़े हो गए थे। गरीब आदमी थे तो कृष्णमूर्ति को दे दिया था एनीबीसेंट को कि यह पालेगी, पढ़ाएगी, लिखाएगी, यूरोप में पढ़ेगा मेरा बेटा। लेकिन यह नहीं सोचा था कि एनीबीसेंट उसे जगतगुरु बनाएगी। ब्राह्मण थे पिता तो ब्राह्मण पीछे पड़ गए, राजनीति खड़ी हो गई कि यह तो जगतगुरु बनने का मतलब है कि हिंदू धर्म से विपरीत एक धर्म खड़ा हो रहा है। बेटे को वापस ले लो। अदालत में मुकदमा चला। नाबालिग थे कृष्णमूर्ति इसलिए बाप को हक था कि बेटे को अदालत से ले सकता था। और ऐसे-ऐसे आरोप किए थे कि जिन आरोपों के कारण अदालत को देना ही पड़ता कृष्णमूर्ति को।
लीडबीटर जो कि कृष्णमूर्ति का शिक्षक था और जिसके माध्यम से ही कृष्णमूर्ति की तैयारी की जा रही थी उस पर यह आरोप लगाया गया था कि वह कृष्णमूर्ति का कामुक रूप से उपयोग कर रहा है, होमोसेक्सुअल है वह। इस-इस तरह के आरोप थे अदालत में। मुकदमा चला और आखिर में हालत ऐसी हो गई कि यह साफ हो गया कि अदालत तय करेगी कि कृष्णमूर्ति को उनके पिता को वापस लौटा दिया जाए। तो एनीबीसेंट को कृष्णमूर्ति को लेकर भारत से भाग जाना पड़ा, भारत छोड़ देना पड़ा ताकि भारत के कानून की सीमा के बाहर कृष्णमूर्ति को बड़े होने का मौका मिल जाए। वे कम से कम बालिग हो जाएं ताकि फिर खुद कह सकें कि मैं कहां रहना चाहता हूं, किसके पास रहना चाहता हूं।
ये सारी मुसीबतें, ये सारे उपद्रव, बहुत अदालतें, अदालतेंबाजी, झगड़े- झांसे सब चले थे। उतनी सारी तैयारी के बाद कृष्णमूर्ति को खड़ा किया गया था। और उस सुबह कृष्णमूर्ति ने कह दियाः मैं न किसी का गुरु हूं और न कोई मेरा शिशय है। मुझे क्षमा कर दें। तुम सोचते हो यह बात आसानी से हल हो गई? वे जो लोग मित्र की तरह आए थे, दुश्मन होकर गए। उनका अपमान किया गया था। कृष्णमूर्ति ने गद्दारी की थी--उनकी नजरों में गद्दारी थी। तो थियोसाफिस्ट, जो कृष्णमूर्ति को तैयार किए थे वही दुश्मन हो गए। कृष्णमूर्ति के रास्तों पर हर तरह से बाधाएं डाली गयीं।
तुम सोचते हो जो मुसीबतें मेरे लिए हैं वे कुछ नई हैं? इस समाज में, अंधे लोगों के समाज में, आंख वाले आदमी को इस तरह की मुसीबतें बिल्कुल स्वाभाविक हैं। आज कृष्णमूर्ति पर कोई झंझट नहीं है क्योंकि किसी को कृष्णमूर्ति से डर नहीं मालूम होता। क्योंकि कृष्णमूर्ति का बल क्या है! एक अकेला आदमी कहता फिरता है जो कहना है। कहते फिरो! क्या तुमसे बनता- बिगड़ता है! मैं भी जब अकेले आदमी की तरह लोगों से कहता फिर रहा था, लोगों को कोई चिंता नहीं थी। एक अकेला आदमी क्या करेगा! इस भयंकर शोरगुल में एक

अकेले आदमी की आवाज का क्या प्रयोजन! ठीक है, कुछ लोग सुन लेंगे, समझ लेंगे, बात खत्म हो जाएगी। आज अड़चन शुरू हुई है क्योंकि अब मैं अकेला नहीं हूं और उनको लगता है कि मेरी बात का बल बढ़ता जाएगा। लोग इस बात के पीछे खड़े होते जाएंगे। तो अब चिंता पैदा होनी स्वाभाविक है। हिंदू नाराज हैं क्योंकि हिंदू संन्यासी हो गए; वे उनके घेरे के बाहर हो गए। मुसलमान नाराज हैं क्योंकि मुसलमान संन्यासी हो गए। ईसाई नाराज हैं क्योंकि ईसाई संन्यासी हो गए। जैन नाराज हैं क्योंकि जैन संन्यासी हो गए। सच तो यह है कि एक आदमी इससे ज्यादा और लोगों को नाराज कर ही नहीं सकता जितना मैं कर रहा हूं। लेकिन यह मैं कर रहा हूं ऐसा मत मानना। यह मैं कर नहीं रहा हूं, इसमें कोई चेशटा नहीं है। जैसी उसकी मर्जी! इस बार उसका यही इरादा है तो यही होने दो। और मैं जिस मौज से ले रहा हूं उसी मौज से मेरे प्रत्येक संन्यासी को भी लेना है।
बढ़ चुका है जो कदम पीछे वो हट सकता नहीं,
चाहे कुछ हो जाए लेकिन मैं पलट सकता नहीं,
अब तो बढ़ना है मुझे, बढ़ते ही जाना है मुझे,
दूर जाना है मुझे।

तीसरा प्रश्नः धर्म के वास्तविक स्वरूप के संबंध में कुछ कहें।

धर्म का अर्थ होता है स्वभाव। धर्म का अर्थ होता है तुम्हारी सहजता। जैसे गुलाब में गंध है और जैसे अग्नि उत्तप्त है और जैसे जल शीतल है, ऐसे ही तुम्हारा भी एक स्वभाव है; उस स्वभाव में जीने का नाम धर्म है, उस स्वभाव से विपरीत जीने का नाम अधर्म है।
फिर प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में थोड़ा सा भेद होगा--होना ही चाहिए क्योंकि परमात्मा एक जैसे लोग नहीं बनाता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के धर्म में भी थोड़ा सा भेद होगा। जो एक के लिए दवा है, दूसरे के लिए जहर हो सकता है और जो एक के लिए जहर है, दूसरे के लिए दवा हो सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान की गहराइयों में अपने स्वभाव की तलाश करनी होती है। कोई दूसरा तुम्हें तुम्हारे स्वभाव के संबंध में सुस्पष्ट निर्वचन नहीं दे सकता। तुम्हें ही ध्यान की गहराइयों में धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविकता को पहचानना पड़ता है और फिर उसी स्वाभाविकता के अनुसार जीने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। हिम्मत इसलिए जुटानी पड़ती है क्योंकि जब तुम स्वभाव के अनुसार जीओगे तो जरूरी नहीं है कि जिसको धर्म माना जाता है समाज के द्वारा, तुम वैसे ही जियो। उससे भिन्न भी जी सकते हो। ठीक तो यह है कि तुम ठीक बिल्कुल वैसे तो जी ही नहीं सकते।
वह जिसको धर्म समाज कहता है, वह तो औसत धर्म है। और औसत के संबंध में
एक बात ख्याल ले लेना--औसत से बड़ी झूठ दुनिया में दूसरी और कोई चीज नहीं होती। जैसे समझो कि पूना में दस लाख लोग हैं और अगर तुम पूछो कि औसत आदमी की ऊंचाई क्या? तो पता चले कि तीन फीट साढ़े तीन इंच। इसका अर्थ होता है गणित की भाषा में कि सारे दस लाख लोगों की ऊंचाई नाप ली गई है--कोई सात फीट है, कोई छह फीट है, कोई पांच फीट है, कोई चार फीट है, बच्चे हैं छोटे कोई अभी बारह ही इंच का बच्चा है। सबकी ऊंचाइयां नाप ली गईं और फिर उसमें दस लाख का भाग दे दिया गया, फिर जो आया परिणाम वह औसत ऊंचाई--तीन फीट साढ़े तीन इंच। अब अगर हर आदमी को औसत ऊंचाई के अनुसार जीना पड़े तो मुसीबत समझ लो किस तरह की हो जाएगी। अगर यह नियम हो जाए कि हर आदमी औसत ऊंचाई के अनुसार जिए तो फिर पूना में जीना असंभव हो जाएगा। क्योंकि जो छह फीट का है वह क्या करे? वह झुका-झुका इस तरह चले कि तीन फीट तीन इंच मालूम पड़े, या हाथ-पैर काटे, या पहलवानों से कहे कि दबाओ और दोनों तरफ से धक्के मारो--सिर की तरफ से भी पैर की तरफ से भी, कि किसी तरह तीन इंच साढ़े तीन फीट, या कोई भी औसत ऊंचाई पर मुझे ले आओ। या जो दो ही फीट का बच्चा है वह क्या करे? जाए, मालिश करवाए, खिंचवाए शरीर को कि किसी तरह तीन फीट साढ़े तीन इंच का हो जाए।
बड़ी मुसीबत हो जाएगी, पूना में लोग एकदम पागल हो जाएंगे। औसत ऊंचाई का नियम भर लागू करो और तुम पाओगे कि लोग पगलाने लगे। और हर आदमी अपराधी हो

जाएगा। क्योंकि कोई भी तीन फीट साढ़े तीन इंच का हो नहीं पाएगा। शायद कभी एकाध आदमी मिल जाए औसत ऊंचाई का; वह भी मुश्किल ही है। शायद दस लाख में एकाध आदमी संयोग से ऐसा मिल जाए जो अभी ठीक तीन फीट साढ़े तीन इंच का हो, मगर वह भी ज्यादा दिन नहीं रह पाएगा। साल भर बाद वह हो जाएगा चार फीट का, कि आगे बढ़ेगा।
औसत ऊंचाई अगर नियम हो जाए जीवन का तो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अपराध-भाव पैदा हो जाएगा कि मैं गलत हूं कि मैं पापी हूं कि मैं ठीक नहीं हूं कि मुझे जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हूं। और यही हो गया है। सारी दुनिया में धर्म के कारण अपराध-भाव पैदा हो गया है। हर आदमी को लग रहा है मैं पापी हूं क्योंकि मुझे जैसा होना चाहिए वैसा मैं नहीं हूं। मैं भिन्न हूं, मैं धार्मिक नहीं हूं क्योंकि धार्मिक आदमी को तो ऐसा होना चाहिए... । कौन निर्णय करता है धार्मिक आदमी का? किस तरह से पता चलता है कि धर्म क्या है? औसत से पता चलाया जाता है। और औसत झूठ होता है। औसत से बड़ा झूठ कोई भी नहीं है।
इसलिए पहली बात तुमसे मैं कहना चाहता हूं, प्रत्येक व्यक्ति को अपना निज धर्म खोजना पड़ता है। वही अर्थ है कृष्ण का--स्वधर्मे निधनं श्रेयः। उसका वैसा अर्थ नहीं है जैसा हिंदू पंडित-पुजारी करते रहते हैं कि हिंदू धर्म में ही मरना श्रेयस्कर है; उसका यह मतलब नहीं है। हिंदू शब्द की तो बात ही नहीं की कृष्ण ने। वे तो कहते हैं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः परमधर्मो भयावहः। अपने धर्म में मर जाना श्रेयस्कर है दूसरे के धर्म में जीने की बजाय। क्योंकि दूसरे के धर्म में जीने में भी भय है, अपने धर्म में मरने में भी अभय है।
इसका अर्थ समझे? यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। इसका अर्थ हुआ, दूसरों से धर्म मत सीखना। अब दूसरों का मतलब क्या? अगर तुम हिंदू पंडित से पूछोगे, गीता पर टीका लिखने वाले लोग हैं जो, उनसे पूछोगे, वे क्या कहेंगे? वे कहेंगे, परधर्म यानी मुसलमान, ईसाई। ईसाई, मुसलमान मत हो जाना। अब कृष्ण के वक्त में न तो ईसाई थे और न मुसलमान थे, ख्याल रखना। इसलिए परधर्म का यह तो अर्थ हो ही नहीं सकता।
कृष्ण के समय में जैन भी हिंदुओं से अलग नहीं हुए थे। कृष्ण के एक चचेरे भाई नेमिनाथ जैन तीर्थंकर थे। अभी जैन शाखा अलग नहीं टूटी थी। नेमिनाथ को जब ज्ञान उपलब्ध हुआ तो स्वयं कृष्ण उनका सम्मान करने गए थे। अभी जैनों के आदि तीर्थंकर आदिनाथ का नाम वेदों में सम्मानपूर्वक लिया जा रहा था। अभी तो पृथ्वी पर कोई दूसरा धर्म था ही नहीं इस अर्थो में। जैन थे नहीं, अभी बुद्ध को पैदा होने में बहुत देर थी। अभी मूसा भी नहीं पैदा हुआ था, जरथुस्त्र भी पैदा नहीं हुआ था, लाओत्सु भी पैदा नहीं हुआ था। अभी क्राइस्ट तो बहुत दूर थे, मोहम्मद तो और बहुत दूर, नानक और कबीर का तो अभी कोई हिसाब ही लगाना ठीक नहीं। कृष्ण ने जब यह वचन कहा--स्वधर्मे निधनं श्रेयः, तब इसका एक ही अर्थ हो सकता था जो मैं कर रहा हूं--कि निज में, निजता में अपने स्वभाव में ही जीना श्रेयस्कर है, वही निःश्रेयस को लाएगा।
और परधर्मो भयावहः। दूसरे के धर्म में जीना--दूसरे से किसका प्रयोजन है? और किसने कही थी यह बात? यह भी ख्याल कर लो। क्या तुम सोचते हो अर्जुन मुसलमान होने की सोच रहा था, कि अर्जुन को किसी ईसाई मिशनरी ने चक्कर में डाल लिया था, प्रलोभन इत्यादि देकर? कि तेरे बच्चों को स्कूल में पढ़वा देंगे और अस्पताल खुलवा देंगे तेरे गांव में, घबड़ा मत! अर्जुन न तो ईसाई होने की सोच रहा था न मुसलमान होने की सोच रहा था, अर्जुन क्या सोच रहा था? अर्जुन संसार छोड़कर संन्यासी होने की सोच रहा था। मेरे ढंग के संन्यासी होने की नहीं, अभी इस ढंग के संन्यास को आने में तो बहुत देर थी, पुराने ढंग का संन्यास। कृष्ण अर्जुन को कह रहे थे कि संन्यास तेरा स्वभाव नहीं है अर्जुन, तू स्वभाव से क्षत्रिय है। तू स्वभाव से योद्धा है। तू स्वभाव से संघर्षशील है। मरना-मारना, युद्ध के मैदान पर चमकती तलवारों के बीच जीना, आग से गुजरना, वह तेरा स्वभाव है। अगर तू भाग भी गया जंगल में यह सोच कर कि चलो संन्यासी हो जाएं, क्यों झगड़े-झांसे में पड़ना, क्यों अपनों को मारना, क्यों युद्ध करना! ... अगर तू भाग भी गया जंगल में तो मैं तुझे कहे देता हूं,

तू मुश्किल में पड़ेगा। तू जंगल में बैठा नहीं रह सकेगा आसानी से। और मुझे भी लगता है कि अगर अर्जुन जंगल चला जाता तो कुछ न कुछ उपद्रव खड़ा करता जंगल में। आदिवासियों को इकट्ठा करके उनका राजा हो जाता या कुछ करता। और नहीं तो कम से कम शिकार तो करता ही। धनुष-बाण तो ले ही जाता वह अपने साथ, वह छोड़ जानेवाला नहीं था। जानवरों को मारता अगर आदमी मारने को न मिलते तो। कृष्ण उससे यह कह रहे हैं कि तू अपनी निजता को पहचान, फिर तुझे अगर ऐसा लगता हो कि शांत किसी वृक्ष के नीचे हिमालय की गुफा में बैठकर तू आनंदित हो सकेगा, मग्न हो सकेगा, तेरा फूल खिल सकेगा, तेरा गीत प्रकट हो सकेगा तो तू जा। मगर तू सोच ले ठीक से कि यह तेरा निजधर्म है, स्वधर्म है? अगर नहीं तो फिर किन्हीं और कारणों से भागने से... तेरे भागने के कारण सब झूठे हैं। तू कहता है ये मेरे प्रियजन, इनको मुझे मारना पड़ेगा अगर ये प्रियजन न होते तो? तो तू ऐसे काट देता जैसे किसान जाकर खेत में मूली काट देता है। तू बिल्कुल फिकर न करता। तू घबड़ा क्यों रहा है? तू इसलिए नहीं घबड़ा रहा है कि तुझे हिंसा में कुछ डर है, तू इसलिए डर रहा है कि उस तरफ मेरे गुरु (ोण, कि भीशम पितामह, कि सब सगे संबंधी खड़े हैं। इनको कैसे मारूं? इन्हीं के साथ तो बड़ा हुआ, खेला, इन्हीं के साथ तो जिंदगी का सब राग-रंग था। सच तो यह है अगर मैं विजेता हो गया इन सबको मारकर तो मुझे मजा ही नहीं आएगा क्योंकि विजय की घोषणा किसके सामने करूंगा? यही तो लोग थे जिनको मैं दिखाना चाहता था कि देखो कि अर्जुन ने चने चबवा दिए! मगर ये सब खत्म हो जाएंगे। इनके बिना मैं बैठ भी जाऊंगा सिंहासन पर तो प्रयोजन क्या होगा? जिनकी प्रशंसा का मैं सदा आकांक्षी रहा हूं, जिनकी आंखों की मैंने सदा आशा की है कि जो कहेंगी कि हां अर्जुन, अब कुछ बात हुई! यही उठ जाएंगे तो मेरी जीत का क्या प्रयोजन है? यह जीत दो कौड़ी की है, इसमें कोई सार नहीं है। इससे मैं जंगल चला जाता हूं।
जंगल यह इसलिए नहीं जा रहा है कि इसको कोई अहिंसा का उदय हुआ है, कि इसके भीतर कोई ध्यान की भावना जगी है, कि चित्त-वृत्ति निरोध इसको करना है, कि इसने कोई पतंजलि की निर्विकल्प समाधि का इसको कोई स्मरण आ गया है। इसे इन सब बातों से कोई प्रयोजन नहीं है। इसका कारण ही गलत है। यह कह रहा है कि अपनों को क्या मारना! इनको मारकर क्या जीतना! जीत कर फिर सार भी क्या है! फिर घोषणा भी किसके सामने करूंगा? यह मुर्दों की बस्ती में डुंडी पीटता फिरूंगा कि मैं जीत गया, बहुत बुद्धू मालूम पडूंगा। इसमें कोई सार नहीं है। ये जिंदा रहें और मैं जीतूं, तो कुछ मजा है। यही उठ गए तो मेरी जीत और हार का कोई प्रयोजन नहीं। यह जीत तो बड़ी महंगी पड़ जाएगी।
इस अर्जुन से कह रहे हैं कृष्ण--स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने धर्म में, निजता में मर जाना श्रेयस्कर है। क्यों? क्योंकि जो निज के अनुकूल चलता है वही आनंद को उपलब्ध होता है, निःश्रेयस को उपलब्ध होता है। निज के अनुकूल होने का नाम ही आनंद है और निज के प्रतिकूल होने का नाम दुख है। जो तुम्हारे अनुकूल आता है वही स्वास्थ्यदाई है, जो तुम्हारे प्रतिकूल जाता है वही रोग लाता है।
तुम पूछ सकते हो चिकित्सकों से, रोग की परिभाषा क्या है! रोग की जो परिभाषा है वही अधर्म की परिभाषा है। अधर्म यानी आत्मिक रोग। रोग का अर्थ होता है, जो तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नहीं है। किसी ऐसी चीज को पकड़ लिया है जो तुम्हें स्वभाव के बाहर खींच रही है, उसको छोड़ते ही तुम स्वभाव में आ जाओगे और स्वास्थ्य अपने आप फलित हो जाएगा। हमारा शब्द स्वास्थ्य बड़ा प्रीतिकर है। इसका अर्थ होता है, स्वयं में स्थित हो जाना; निज में स्थित हो जाना--स्वस्थ। स्वधर्म में ठहर जाने में ही स्वास्थ्य है, स्वास्थ्य में ही आनंद है, स्वास्थ्य में ही जीवन का अहोभाव है।
तुम मुझसे पूछते हो, धर्म के वास्तविक स्वरूप के संबंध में कुछ कहूं।
तो पहली बात कि न तो हिंदू, न ईसाई, न मुसलमान, न जैन--ये शब्द धर्मो की सूचनाएं नहीं देते। ये अलग-अलग देशों में निकाले गए अलग-अलग औसत की सूचना देते हैं, इनसे सावधान रहना। ये तुम्हारे ऊपर सदियों में निकाले गए औसत को थोप देते हैं। ये कहते हैं, महावीर ऐसे जीए, तुम भी ऐसे जियो तो जैन हो जाओगे। मगर तुम महावीर नहीं हो और न समय यह महावीर का है। पच्चीस सौ साल

बीत गए, गंगा में बहुत पानी बह गया है। अब महावीर के ढंग से जीना एकदम ही अप्रासंगिक है। न तुम महावीर हो, न समय महावीर का है, न हवा महावीर की बची। इसमें तुम महावीर की तरह जीने की कोशिश करोगे, तुम एकदम ही व्यर्थ और छूंछे हो जाओगे। इसलिए जैन मुनि व्यर्थ और छूंछे हो गए, थोथे हो गए। और वही दशा औरों की है क्योंकि कोई बुद्ध को मानकर नहीं जी रहा है, कोई शंकराचार्य को मान कर जी रहा है। सदियां गईं, सदियों में कितना जीवन रूपांतरित हुआ है! हम कहां से कहां आ गए! और तुम किस तरह की बातें कर रहे हो!
तो धर्म से अर्थ नहीं है परंपरा का। ये परंपराएं हैं--हिंदू, जैन, बौद्ध। ये संप्रदाय हैं, धर्म नहीं।

ये मुसलमां है, वो हिंदू, ये मसीही, वो यहूद
इस पे ये पाबंदियां हैं, और उस पर ये कयूद
शैखो-पंडित ने भी क्या अहमक बनाया है हमें
छोटे-छोटे तंग खानों में बिठाया है हमें
कस्रे-इंसानी पे जुल्मो-जहल बरसाती हुई झंडियां कितनी नजर आती हैं लहराती हुई कोई इस जुल्मत में सूरत ही नहीं है नूर की मुहर हर दिल पे लगी है इक-न-इक दस्तूर की घटते-घटते महरे-आलमताब से तारा हुआ
आदमी है मजहबो-तहजीब का मारा हुआ
कुछ तमद्दुन के खलफ कुछ दीन के फर्जंद हैं कुलजमों के रहने वाले बुलबुलों में बंद हैं काबिले-इब्रत है ये महदूदियत इंसान की चिट्ठियां चिपकी हुई हैं, मुषतलिफ अदयान की फिर रहा है आदमी भूला हुआ भटका हुआ
इक-न-इक लेबिल हर इक माथे पे है अटका हुआ
आखिर इन्सां तंग सांचों में ढला जाता है क्यों
आदमी कहते हुए अपने को शर्माता है क्यों
क्या करे हिंदोस्तां, अल्लाह की है ये भी देन
चाय हिंदू, दूध मुस्लिम, नारियल सिख, बेर जैन
अपने हमजिंसों के कीने से भला क्या फायदा
टुकड़े-टुकड़े होके जीने से भला क्या फायदा
थोड़ा आदमी की तरफ देखो! हमने कैसे कबूतरों के खानों में आदमियों को बंद कर दिया है!

कोई इस जुल्मत में सूरत ही नहीं है नूर की
मुहर हर दिल पे लगी है इक-न-इक दस्तूर की
यहां प्रकाश की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। ऐसी अंधेरी रात छाई, ऐसी अमावस आई कि कोई तारा भी नहीं टिमटिमाता, कोई एक छोटा सा मिट्टी का दीया भी जलता हुआ मालूम नहीं पड़ता।

कोई इस जुल्मत में सूरत ही नहीं है नूर की
मुहर हर दिल पे लगी है इक-न-इक दस्तूर की
और हर आदमी के दिल पर दस्तूरों की, रीति-रिवाजों की, परंपराओं की अंधविश्वासों की मुहरें लगी हैं। उन मुहरों के भीतर प्रेम बंद हो गया है। उन मुहरों के भीतर तुम्हारा स्वभाव बंद हो गया है। उन मुहरों के भीतर तुम्हारा धर्म है। वे मुहरें टूटें तो तुम्हारा धर्म बहे। वे मुहरें उखड़ें तो तुम्हारा धर्म का पौधा पनपे।

घटते-घटते महरे-आलमताब से तारा हुआ
कहां तो हम सूरज होने को बने थे, और कहां हम छोटे-छोटे टिमटिमाते तारे
हो गए!

आदमी है मजहबो-तहजीब का मारा हुआ
कुछ तमद्दुन के खलफ कुछ दीन के फर्जंद हैं
कुलजमों के रहने वाले बुलबुलों में बंद हैं
सागरों में जिन्होंने रहना था वे बुलबुलों में बंद हो गए हैं।
हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख, पारसी--इन नामों से धर्मो का कोई संबंध नहीं है। धर्म का कोई विशेषण नहीं है। धर्म तो प्रत्येक व्यक्ति की निजता है। और तुम्हारी निजता के संबंध में कोई शास्त्र निर्णायक नहीं हो सकता। हां, निजता को खोजने में शास्त्र, सदगुरु, सत्संग सहयोगी हो सकते हैं। मगर निजता का निर्णय तो तुम्हारे अंतर ध्यान में ही होगा। स्मरण रखना जो बात बहुत लोग करते रहें हों जरूरी नहीं है कि तुम्हें मुक्त कर दे। बहुत लोग मानते हैं इसलिए मानने से तुम मुक्त न हो जाओगे, जब तक कि तुम्हारे भीतर अपने जानने की ज्योति न जगे।
धर्म मानना नहीं है, जानना है; अंधविश्वास नहीं है, अनुभव है। किसी और
का हाथ पकड़ कर चलना नहीं है बल्कि अपने भीतर की रोशनी को जगाना है। और सद्गुरु वही है जो तुम्हारी निजता के दीये को जलाने में सहयोगी हो; जो तुम्हें, नकली आदमी न बनाए; जो तुम्हें औसत आदमी न बनाए; जो तुम्हें किन्हीं पाबंदियों, किन्हीं लेबलों, किन्हीं विशेषणों में आबद्ध न करे; जो तुम्हें साहस दे, सिद्धांत नहीं; जो तुम्हें अभियान की अभीप्सा दे, शास्त्र नहीं; जो तुम्हें अज्ञात और अनंत की यात्रा पर जाने के लिए बुलावा दे, चुनौती दे। सदगुरु, तुम्हारी निजता को तुम कैसे पहचान लो इसकी विधि देता है। फिर अपनी निजता से जीना। और बहुत बार ऐसा हो जाता है कि जो भी व्यक्ति अपनी निजता से नहीं जीते उनकी जिंदगी अकारण ही दुःखों, विषादों से भर जाती है।
एक युवक को मेरे पास लाया गया, उसकी हालत बड़ी खराब हो रही थी। मैंने पूछा, कि मामला क्या है, तुझे हुआ क्या? उसके मां-बाप साथ आए थे, उन्होंने कहा कि यह बड़ा धार्मिक है। यह अतिशय धार्मिक है। इसलिए हम कह भी नहीं सकते कि यह कुछ गलत करता है, गलत यह करता भी नहीं। गलत ही नहीं करता बिल्कुल। न सिगरेट पीता, न चाय पीता, न काफी पीता, न सिनेमा जाता। तो मैंने कहाः इसे तो फिर बहुत आनंदित होना चाहिए था, जब इतना धार्मिक है। उन्होंने कहा, लेकिन आनंदित यह बिल्कुल नहीं है, यह विक्षिप्त हुआ जा रहा है। यह उठता भी तीन बजे रात है--ब्रह्ममुहूर्त में। सोता भी पांच घंटे से ज्यादा नहीं है। गलती तो यह कुछ करता ही नहीं है। इसमें गलती तो हम बता ही नहीं सकते। मगर हालत इसकी बिगड़ती जा रही है। पहले तो साग-सब्जी भी लेता था, अब तो सिर्प दूध ही दूध पीता है, दुग्धाहारी हो गया है। गलती तो कुछ भी नहीं है क्योंकि ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दूध तो शुद्ध आहार है, शुद्धतम आहार है।
उसकी हालत इतनी खराब थी, शरीर भी उसका सूख गया, आंखें उसकी विक्षिप्त जैसी मालूम पड़ें क्योंकि अभी जवान था, कम से कम आठ घंटे सोना जरूरी था। नींद पूरी न हो तो आंखें जलती रहें और नींद पूरी न हो तो दिन भर नींद आती रहे। और दिन भर नींद आती रहे तो वह कैसे पढ़े, कैसे लिखे? विश्वविद्यालय में दो साल से फेल हो रहा था। भोजन पूरा नहीं लेता था, सिर्प दूध! कितना दूध पियोगे?
फिर दूध आदमी को छोड़ कर कोई भी जानवर, एक उम्र के बाद नहीं पीता। वह तो अच्छा हुआ कि जानवरों को ऋषि-मुनियों की बात पता नहीं चली। तुम जिस गाय का दूध पी रहे हो उस गाय का बछड़ा भी एक उम्र के बाद दूध नहीं पीता। दूध तो तभी तक है जब और भोजन पचाने की क्षमता न आए। वह तो प्रारंभिक तैयारी है बच्चों के लिए है। तो ठीक है, शायद बच्चों के लिए ठीक हो और शायद बुढ़ापे में फिर ठीक हो जाए, मगर जवान आदमी को तो और भी सब पचाना चाहिए। उसने सब खाना-पीना बंद कर दिया है। अब बहुत से तत्वों की कमी हो गई होगी। अब उन सब तत्वों की कमी के कारण वह बिल्कुल जीर्ण-जर्जर हुआ जा रहा है, उसकी प्रतिभा भी मरती जा रही है, बुद्धि भी क्षीण होती जा रही है।
और हालत जब बहुत बिगड़ गई, जब वह अकेले में बैठे-बैठे अपने से बातें करने लगा तब उसके मां-बाप मेरे पास लाए। मैंने कहा, इसने बातें अपने से कब

से शुरू की हैं? उन्होंने कहा कि अभी कुछ-कुछ दिन से शुरू की हैं। पहले भी करता था, मगर पहले तो यह राम-राम, राम-राम इत्यादि जपता था, तब ठीक था। अब तो यह बातचीत करता है। कोई दूसरा है ही नहीं और बातचीत करता है। मैंने कहा, पहले भी यही पागलपन था लेकिन वह धार्मिक आवरण में था; राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहा था। तुम समझे कि बिल्कुल ठीक है, धार्मिक काम कर रहा है। अब अगर यह दूसरे शब्द उपयोग करने लगा तो तुम्हें लगता है कि यह पागल हो गया है। पागल यह पहले से हो रहा था। नहीं तो कोई बैठ कर राम-राम, राम-राम किसलिए करेगा? विक्षिप्त चित्त का लक्षण है। कोई बैठ कर माला किसलिए फेरेगा? बुद्धि है या नहीं? माला के गुरिए किसलिए सरकाओगे? लेकिन धार्मिक आवरण में कोई बात छिपी रहे तो पता नहीं चलता।
मैंने उससे पूछा कि तू अपनी सारी कथा कह। उसने कहा, कि मैं स्वामी शिवानंद-ऋषिकेश वालों का शिष्य हूं। तब शिवानंद जिंदा थे, तब की यह बात है। उनकी ही किताब मैंने पढ़ी। उसमें पांच घंटे ही सोना चाहिए, पांच घंटे से जो ज्यादा सोता है वह तामसी है... । अब यह बड़े मजे की बात हो गई। चौबीस घंटे सोना पड़ता है बच्चे को मां के पेट में। भयंकर तामस हो गया यह! फिर बच्चा पैदा होगा, फिर तेईस घंटे सोएगा, फिर बाईस घंटे। फिर बीस घंटे। यह तामस ही तामस चल रहा है। फिर एक उम्र आएगी जब आठ घंटे के करीब ठहर जाता है। एक तिहाई समय नींद के लिए जरूरी है। सिर्प जब बूढ़े होने लगोगे, जब मौत करीब आने लगेगी, तब नींद कम होगी। और नींद इसलिए कम होगी बुढ़ापे में कि अब शरीर को अपने को बनाने का काम बंद कर देना पड़ा है। नींद में शरीर निर्मित होता है। तुम जो खाते हो, पीते हो, पचाते हो वह सब नींद में शरीर निर्मित होता है। अब मौत करीब आ रही है, अब शरीर को निर्मित होना नहीं है इसलिए बूढ़े आदमी को नींद कम होने लगती है। जरूर शास्त्रों में जिन्होंने लिखा है कि पांच घंटे सात्विक निद्रा! वे बूढ़ों ने लिखी होंगी किताबें--बूढ़ों ने ही लिखी हैं। उनको नींद आ ही नहीं रही है वह तो पांच घंटे भी बड़ी कृपा की जो लिख दी! नहीं तो तीन ही घंटे बहुत हैं। जो और भी ज्ञानी हैं ऊपर वे तो तीन ही घंटे बताते हैं।
तो मैंने कहा कि तू अभी जवान है, आठ घंटे तो तुझे सोना ही चाहिए। उसने कहा, वह तो मैं नहीं कर सकता, गुरुदेव का कथन नहीं है। उन्होंने तो पांच घंटे बताया था। और पांच घंटे जब से सोने लगा तब से दिन-भर नींद आने लगी। आएगी ही। पूछा तो उन्होंने कहा कि तामस का लक्षण है। इसका अर्थ है कि तू तामसी भोजन करता है। देखते हैं कि तर्क कैसे गलत रास्तों पर यात्रा करता है! सीधी-साफ बात है कि यह कम सो रहा है इसलिए दिन में नींद आ रही है। मगर तर्क कैसे चलते हैं, मूढ़तापूर्ण बातें कैसी चलती रहती हैं। अगर दिन में नींद आती है तो इसका मतलब है कि तू तामसी भोजन कर रहा है। तू भोजन में बदल कर ले। उसने धीरे-धीरे बदल ऐसी की कि अब वह दूध ही पीता है। अब दूध ही पीता है तो देह क्षीण होने लगी। और मस्तिष्क की भी जो ताजगी थी, प्रतिभा थी, वह भी मरने लगी। क्योंकि मस्तिष्क के लिए कुछ विटामिन एकदम जरूरी हैं, अगर वे न मिलें तो मस्तिष्क सिकुड़ना शुरू हो जाता है, प्रतिभा मरनी शुरू हो जाती है।
जब से यह हालत उसकी हो गई कि प्रतिभा क्षीण होने लगी और बुद्धि क्षीण होने लगी तो उसको मंत्र दे दिया कि राम-राम, राम-राम जप क्योंकि अब तो परमात्मा को पुकारे बिना कोई चारा नहीं। यह भी खूब रहा! इसको खूब असहाय बना दिया, अब परमात्मा को पुकरवाओ। अब परमात्मा भी इससे बचेगा। परमात्मा तक भी इसकी आवाज नहीं पहुंचेगी, यह विक्षिप्त हो गई आवाज। उस तक स्वस्थ आवाज पहुंचती है। जो स्वयं में स्थिर हो गया उसकी आवाज पहुंचती है। यह आदमी तो अपने स्वास्थ्य के बिल्कुल बाहर हो गया, यह तो अपने स्वभाव के विपरीत चला गया।
इसको मुझे बड़ी मेहनत करनी पड़ी, बामुश्किल इसको मैं राजी कर पाया। क्योंकि धर्म के खिलाफ किसी को राजी करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। उसको लगता है कि मैं पाप करवाने की कह रहा हूं। मैंने उससे कहा कि तू आठ घंटे सो। वह कहे, यह पाप! कि तू ठीक से भोजन कर वह कहे यह पाप!

सदियों-सदियों में, न मालूम किस-किस तरह के भिन्न-भिन्न लोगों ने धर्म
के संबंध में भिन्न-भिन्न वक्तव्य दिए हैं। वे उनके संबंध में सही रहे होंगे। तुमसे उनका कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हें अपना धर्म स्वयं खोजना होगा। हां, उनकी बातें सुन लो, उनकी बातें समझ लो, उनकी बातों से प्यास ले लो लेकिन उनकी बातें मत ले लेना। प्रत्येक व्यक्ति को अपना दीया स्वयं जलाना है। और तब ही तुम्हारे जीवन में उमंग होगी--प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया! तब तुम नाच सकोगे जब स्वस्थ होओगे, स्वयं में स्थित होओगे। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। जब तुम्हें यह अनुभव में आने लगेगा कि यह मेरा स्वधर्म, यह मेरा निःश्रेयस, यह मुझे प्रीतिकर, रुचिकर, यह मेरे अनुकूल। बस, ऐसे मैं जीऊंगा। तुम फिकर ही मत करना और सब औसत सिद्धांतों की। तुम अपने निर्णायक स्वयं हो। और तुम्हारे पास निर्णय का सूत्र है, कसौटी है--जिस चीज से तुम्हें सुख मिले, शांति मिले, आनंद मिले-- वही धर्म है। आनंद को मानो, निर्णायक, परीक्षा का सूत्र। जैसे सुनार सोने को कसने के लिए कसौटी का पत्थर रखता है ऐसे आनंद को तुम कसौटी का पत्थर मानो। हर चीज को इस पर कस लेना। अगर आनंद मिले तो धर्म, अगर आनंद न मिले तो अधर्म।
फूल मुट्ठी में अगर कुछ देर तक रहते हैं बंद
हाथ में होती है पैदा इक मुअत्तर-सी नमी
यूं ही जब कुछ देर करता हूं तसव्वुर हुस्न का
सांस में होती है खुशबू, और आंखों में तरी
और ये महसूस होता है, कि जानां ने मुझे
भींच कर आगोश में ता-देर छोड़ा है अभी
अगर क्षण भर को भी तुम अपने भीतर डूब जाओ तो ऐसा लगेगा कि परमात्मा से आलिंगन करके लौटे हो।
फूल मुट्ठी में अगर कुछ देर तक रहते हैं बंद
हाथ में होती है पैदा इक मुअत्तर सी नमी
देखा नहीं, फूल को हाथ में रख लो तो एक सुगंधित गीलापन हाथ से छूट जाता है। फूल छूट भी जाए फिर, तो भी हाथ में गंध रह जाती। बगीचे से गुजर जाओ, फूल छुओ भी मत, तो भी हवाओं में उड़ती पराग तुम्हारे वस्त्रों को पकड़ लेती। तुम सुगंधित हो उठते हो। ऐसे ही जब कोई अपने भीतर क्षण भर को भी डुबकी लगाता है तो उसके जीवन में सुगंध ही सुगंध फैल जाती है।
फूल मुट्ठी में अगर कुछ देर तक रहते हैं बंद
हाथ में होती है पैदा इक मुअत्तर-सी नमी
यूं ही जब कुछ देर करता हूं तसव्वुर हुस्न का
सांस में होती है खुशबू, और आंखों में तरी
और अगर तुम्हारे भीतर प्यारे की तुम्हें एक झलक भी मिल जाए, उसके सौंदर्य की जरा सी लहर भी तुम्हारे आस-पास कौंध जाए तो तुम्हारी सांस में खुशबू होगी। तुम्हारी आंखों में तरावट, तुम्हारी आंखों में एक गहराई, तुम्हारी आंखों में एक नीलिमा, एक आकाश।

और ये महसूस होता है, कि जानां ने मुझे
भींचकर आगोश में ता-देर छोड़ा है अभी
एक डुबकी भीतर लगे तो लगेगा यूं, जैसे कि प्यारे ने बांहों में ले लिया था और अभी-अभी बड़ी देर तक बांहों में भींचकर छोड़ा है।
जिससे ध्यान, जिससे आनंद, जिससे प्रेम, जिससे सुगंध, सौंदर्य जन्मे, जानना वह धर्म है। धर्म तुम्हें सुखाने को नहीं है, धर्म तुम्हें हजार-हजार फूलों को खिलाने का अवसर है। धर्म मधुमास है, पतझड़ नहीं। धर्म आनंद-उत्सव है। और उसकी याद एक बार बैठ जाए तो फिर मिटती नहीं है। एक बार भीतर का स्वाद आ जाए तो तुम फिर छोड़ना भी चाहो तो छूटता नहीं है।

नक्शे-ख्याल दिल से मिटाया नहीं हनोज
बेदर्द मैंने तुझको भुलाया नहीं हनोज
वो सर जो तेरी राहे-गुजर में था सिज्दारेज

मैंने किसी कदम पे झुकाया नहीं हनोज महराबे-जां में तूने जलाया था खुद जिसे
सीने का वो चिराग बुझाया नहीं हनोज
बेहोश होके जल्द तुझे होश आ गया
मैं बदनसीब होश में आया नहीं हनोज
मरकर भी आएगी ये सदा कब्रे-"जोश" से--
"बेदर्द! मैंने तुझको भुलाया नहीं हनोज"
एक बार उस प्यारे की झलक मिल जाए तो उसे भुलाया ही नहीं जा सकता। मर जाओ, मगर भुलाया नहीं जा सकता।
मरकर भी आएगी ये सदा कब्रे-"जोश" से--
"बेदर्द! मैंने तुझको भुलाया नहीं हनोज"
मैंने तुझे आज तक भुलाया नहीं है।

नक्शे-ख्याल दिल से मिटाया नहीं हनोज
बेदर्द मैंने तुझको भुलाया नहीं हनोज
और एक बार जिसे उसका अनुभव हो गया फिर सिर और नहीं झुकता। फिर सब मंदिर-मस्जिद व्यर्थ, फिर सब काबा-कैलास व्यर्थ।

मैंने किसी कदम पे झुकाया नहीं हनोज
वो सर जो तेरी राहे-गुजर में था सिज्दारेज
मैंने किसी कदम पे झुकाया नहीं हनोज
महराबे-जां में तूने जलाया था खुद जिसे
सीने का वो चिराग बुझाया नहीं हनोज
धर्म एक चिराग है जो तुम्हारे भीतर जलने को बैठा है, तैयार है। धर्म
एक आत्म-अनुभव है; न शास्त्र से मिलेगा, न सिद्धांत से मिलेगा। इसलिए मेरा सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान का अर्थ है अपने भीतर रुको, ठहरो। अपने भीतर जितनी गहराई तक जा सको, जाने के प्रयास करो। कितनी बार हार जाओ, हराना मत, चेशटा जारी रखना। द्वार खटखटाए जाना। एक न एक दिन भीतर का द्वार खुलेगा। और एक क्षण को भी अगर झलक मिल गई--बस, उस क्षण के बाद तुम्हारा जीवन दूसरा है। फिर तुम पृथ्वी पर हो और पृथ्वी पर नहीं। फिर तुम संसार में रहोगे और संसार में नहीं क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर रहेगा, तुम कहीं भी रहो।
तुम्हें घेरे रहेगा। फिर खिलेंगे हजार-हजार फूल।
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया!

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
सातवां प्रवचन

गुरुमत अगम अगाध

गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु है, गुरु संकर गुरु साध।
दूलन गुरु गोविंद भजु, गुरुमत अगम अगाध।।

श्री सतगुरु-मुखचंद्र तें, सबद-सुधा-झरि लागि।
हृदय-सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि।।

दूलन गुरु तें विषै-बस, कपट करहिं जे लोग।
निर्पल तिनकी सेव है, निर्पल तिनका जोग।।

दूलन यहि जग जनमिकै, हरदम रटना नाम।
केवल राम-सनेह बिनु, जन्म-समूह हराम।।

सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं।
दूनलदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिं।।

चितवन नीची, ऊंच मन, नामहि जिकिर लगाय।
दूलन सूझै परम-पद, अंधकार मिटि जाय।।

गुरुवचन बिसरै नहीं, कबहुं न टूटै डोरि।
पियत रहौ सहजै दुलन, राम-रसायन घोरि।।

विपति-सनेही मीत सो, नीति-सनेही राउ।
दूलन नाम-सनेह दृढ़, सोई भक्त कहाउ।।

राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोइ।
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीति जो होइ।।

सत्य की यात्रा में तीन सीढ़ियों को समझ लेना जरूरी है। एक है सीढ़ी विद्यार्थी की। विद्यार्थी का संबंध गुरु से नहीं हो सकता। गुरु मिल भी जाए तो भी विद्यार्थी का संबंध उससे हो नहीं पाएगा। विद्यार्थी का संबंध तो केवल शिक्षक से हो सकता है। विद्यार्थी की भूमिका ही शिक्षक के ऊपर नहीं जाती। विद्यार्थी की आकांक्षा भी सत्य के संबंध में जानने की है, सत्य जानने की नहीं; ईश्वर के संबंध में जानने की है, ईश्वर को जानने की नहीं।
विद्यार्थी सूचनाएं इकट्ठा करने में उत्सुक है। विद्यार्थी कुतूहल
की एक अवस्था है; बचकानी अवस्था है। और अभागे हैं वे लोग जो वृद्धावस्था तक भी विद्यार्थी ही बने रहते हैं; जो शास्त्र से ही जुड़े रहते हैं, शब्द से और सिद्धांत से। शास्त्र, शब्द और सिद्धांत विद्यार्थी के जगत के हिस्से हैं।
दूसरी भूमिका है शिष्य की। शिष्य की भूमिका में गुरु का आविर्भाव होता है। विद्यार्थी तो केवल सत्य के संबंध में जानना चाहता है, शिष्य सत्य को जानना चाहता है। उसकी तृप्ति सूचना से नहीं है। उसकी तृप्ति उधार वचनों से नहीं है, वह अनुभव चाहता है। उसके भीतर कुतूहल ही नहीं है, जिज्ञासा जगी है; गहन जिज्ञासा जगी है। विद्यार्थी कुछ भी दांव पर लगाने का राजी नहीं होगा, मुफ्त जितना मिल जाए ले लेगा। शिष्य दांव पर लगाने को राजी होगा। विद्यार्थी कीमत नहीं चुका सकता है। और बिना कीमत चुकाए इस जगत में क्या मिलता है? कौड़ियां ही बटोर सकते हो, हीरे-जवाहरात नहीं। शिष्य कीमत चुकाने को राजी है।

विद्यार्थी बिना झुके सीखना है। और अगर झुकता भी है तो झुकना उसका औपचारिक होता है। शिष्य की तो पूरी भाव-भंगिमा प्रणाम की है। शिष्य तो एक प्रणाम है। शिष्य का तो भाव ही झुके होने का है। शिष्य तो एक झोली है। शिष्य में जरा भी अहंकार नहीं है। विद्यार्थी तो अहंकार के ही केंद्र से सक्रिय होता है। शिष्य अहंकार को विसर्जित करता है, झुकता है, गुरु के चरण पकड़ता है।
विद्यार्थी शब्द ही सुन पाएगा, शिष्य के कानों में निःशब्द भी पड़ने लगता है। विद्यार्थी विचारों से जुड़ पाएगा, शिष्य निर्विचार से भी जुड़ने लगता है। विद्यार्थी स्थूल को पकड़ सकता है, शिष्य के भीतर सूक्ष्म का भी अवतरण होने लगता है। विद्यार्थी पढ़ता है पंक्तियों को, शिष्य पंक्तियों के बीच में खाली, रिक्त स्थानों को भी पढ़ने लगता है। विद्यार्थी रंगता नहीं; सूचना बटोर लेता है, स्वयं रंगने से बच जाता है; शिष्य अपने को रंगता है। बिना रंगे अनुभव हो भी नहीं सकता। प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया! विद्यार्थी का शिक्षक से जो नाता है, व्यावसायिक है, बाजारू है। शिष्य का नाता प्रीति का है, प्रेम का है; वह बाजार की घटना नहीं है। शिष्य का नाता हृदय का है, विद्यार्थी का नाता मस्तिष्क का है। विद्यार्थी उत्सुक है गुरु की जानकारी में, गुरु में नहीं; शिष्य उत्सुक है गुरु में, जानकारी गौण बात है। जब वृक्ष ही हाथ लग गया तो उसके सब फूल अपने आप हाथ लग जाएंगे।
विद्यार्थी फूल चुन लेता है, वृक्ष को छोड़ देता है। ये फूल वृक्ष से टूटते ही मर जाते हैं। और ये फूल कितनी देर गंध देंगे? जल्दी ही बासे हो जाएंगे। विद्यार्थी बासे फूल के ही ढेर लगाता रहता है! उसके भीतर से सुगंध आनी तो जल्दी ही बंद हो जाती है, दुर्गंध आने लगती है। हर पंडित से दुर्गंध आएगी, आना अनिवार्य है। सड़े हुए शास्त्र और सड़े हुए शब्द और सदियों पुराना कूड़ा-कचरा उसने इकट्ठा कर लिया है। पंडित तो एक तरह का गुदड़ी बाजार है, जहां गंदगी बिकती है। हालांकि गंदगी के ऊपर अच्छे-अच्छे नाम लगाए गए हैं, सुंदर-सुंदर शब्द चिपकाए गए हैं, मगर लेबिल को उखाड़ो और भीतर तुम लाश पाओगे, जीवन नहीं।
शिष्य गुरु में उत्सुक है, वृक्ष को ही पकड़ लेता है। फूल तो वृक्ष में खिलते ही रहे, खिलते ही रहेंगे। फूलों को क्या पकड़ना! पत्तों-पत्तों को क्या पकड़ना! शिष्य जड़ को ही पकड़ लेता है। फूलों का राज उसके हाथ में आ जाता है। फूलों का जीवन स्रोत उसके हाथ में आ जाता है।
विद्यार्थी सूचना से ही तृप्त होकर लौट जाता है, शिष्य के जीवन में ज्ञान का पदार्पण होता है। ज्ञान वह जो तुम्हें रूपांतरित करे, सूचना वह जो तुम्हारी स्मृति को भरे। सूचना तुम्हारी जानकारी को बढ़ाती है, ज्ञान तुम्हें बढ़ाता है। सूचना संसार में काम की हो सके शायद, लेकिन ज्ञान परमात्मा में काम आएगा। सूचना की नौका से तुम बाजार में शायद थोड़ा सुविधा पाओगे लेकिन ज्ञान की नौका तुम्हें उस परम प्यारे के तट तक ले जा सकती है। ज्ञान और सूचना एक जैसे मालूम पड़ते हैं, एक जैसे नहीं हैं। जैसे लाश
भी मालूम तो ऐसे ही पड़ती है जैसे जिंदा हो। पास आओगे तब दुर्गंध आएगी। जांच-पड़ताल करोगे तब समझ में आएगा कि प्राण-पखेरू तो उड़ चुके। सूचना ऐसी है जिसमें से प्राणों का हंस कभी का उड़ चुका। ज्ञान ऐसा है जिसमें हृदय अभी धड़कता है, श्वास अभी चलती है, देह अभी उत्तप्त है, अभी प्राणों ने वास किया है, अभी मिट्टी अमृत से भरी है।
विद्यार्थी एक शिक्षक, दूसरे शिक्षक, तीसरे शिक्षक--हजार शिक्षक के पास भटकता रहेगा। उसे तो जहां से मिल जाए; जैसे मिल जाए! उसे सूचनाओं से प्रयोजन है। उसके हार्दिक लगाव कहीं बनते ही नहीं। उसकी आत्मीयता कहीं निर्मित नहीं होती। जैसे कोई बाजार में दुकानों से चीजें खरीदता है, ऐसे विद्यार्थी शिक्षकों से ज्ञान खरीदता फिरता है।
शिष्य का नाता बन जाता है, भांवर पड़ जाती है। और ऐसी भांवर जिसके टूटने का फिर कोई उपाय नहीं। अगर टूट जाए तो यही समझना कि पड़ी ही न थी। भ्रांति समझ ली होगी। मान लिया होगा कि पड़ गई। गांठ बंधी न थी। यह गांठ ऐसी जो खुलती नहीं। संसार में जो भांवर पड़ती है वह खुल सकती है; उसमें तलाक का

उपाय है। लेकिन यह जो आध्यात्मिक भांवर है--गुरु और शिष्य के बीच पड़ती है, इसके खुलने का कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि यह स्थूल की गांठ नहीं है जो खुल जाए, यह सूक्ष्म की गांठ है। और सूक्ष्म की गांठ अदृश्य होती है, उसे खोलोगे कैसे? पड़ कैसे जाती है यह भी पता नहीं चलता तो खोलोगे कैसे? पड़ जाती है। घट जाती है घटना। यह प्रेम की घटना है।
जैसे तुम किसी के प्रेम में गिर जाते हो, कुछ करते थोड़े ही हो! पहली नजर में भी प्रेम हो जाता है। तुम्हारे वश की थोड़े ही बात होती है, तुम अवश होते हो। शिष्य और गुरु के बीच इसी प्रेम की आत्यंतिक घटना घटती है। अवश होकर शिष्य गुरु में लीन होने लगता है। अवश होकर! चाहे भी तो भी अब भागने का उपाय नहीं। अपने बावजूद भी उसे जाना ही पड़ेगा इस यात्रा पर। यह ऐसी अनिवार्य यात्रा है, यह प्रेम की ऐसी अनिवार्य पुकार है जो ठुकराई नहीं जा सकती; जिसे इनकारा नहीं जा सकता।
विद्यार्थी और शिक्षक भिन्न-भिन्न होते हैं। गुरु और शिष्य के बीच तादात्म्य बनने लगता है। वे एक-दूसरे में लीन होने लगते हैं। एक-दूसरे का आकाश एक-दूसरे के आकाश में प्रवेश करने लगता है।
और तीसरी भूमिका है--आत्यंतिक, अंतिम भूमिका, जब कि शिष्य गुरु को गुरु ही नहीं देखता, वरन परमात्मा का द्वार देखने लगता है। गुरुर्ब्रह्मा। वह आत्यंतिक अवस्था है, जहां शिष्य के लिए गुरु भगवान हो जाता है। गुरु तो मिट जाता है। गुरु तो रह ही नहीं जाता, गुरुद्वारा बचता है। एक द्वार--जिसके पार परमात्मा खड़ा है।
यह आत्यंतिक भूमिका है। यहां शिष्य भक्त हो जाता है। जब विद्यार्थी होता है तो गुरु शिक्षक होता है। जब विद्यार्थी शिष्य बनता है तो शिक्षक गुरु होता है। और जब शिष्य भक्त हो जाता है तो गुरु भगवान हो जाता है। यह तो वैसी ही बात है जो जिनको हो जाए उनको ही समझ में आए। क्योंकि जिन्होंने बुद्ध में भगवान को देखा, जिन्होंने देखा उन्होंने देखा; जिन्होंने नहीं देखा उन्होंने कहा, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। मांस-मज्जा-हड्डी के बने हुए मनुष्य को भगवान कहते हो? उसे भी भूख लगती है, प्यास लगती है। वह भी बीमार होता है। जरा आ रही है, बुढ़ापा आ रहा है, मृत्यु भी आएगी; उसे भगवान कहते हो?
पूछने वाले चूक गए। वे जो भक्त हो गए थे बुद्ध के, वे इस मांस-मज्जा की बनी देह को भगवान नहीं कह रहे थे। उन्हें इस द्वार के पार भगवान दिखाई पड़ रहा था। मांस-मज्जा से द्वार बना था यह तो चौखट थी इस चौखट के पार अनंत आकाश दिखाई पड़ रहा था, उस अनंत आकाश को भगवान कह रहे थे।
विद्यार्थी और शिक्षक तो बड़े दूर होते हैं। दो अलग लोक! शिष्य और गुरु करीब आ जाते हैं, बंद जाते हैं, एक-दूसरे में आबद्ध हो जाते हैं, संयुक्त हो जाते हैं। और भक्त और भगवान एक ही हो जाते हैं, संयुक्त भी नहीं। द्वैत ही गिर जाता है।
दूलनदास के आज के पदों में उसी तीसरी भूमिका से चर्चा की गई है। उसी प्रेम की आत्यंतिक स्थिति की बात कही गई है। उसे समझना तुम्हें कठिन तो होगा लेकिन अगर कभी जीवन में प्रेम किया हो तो शायद उस प्रेम से थोड़ा-थोड़ा सुराग मिले।

कुछ सुन लें, कुछ अपना कह लें!
जीवन-सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहां प्रिये!
संयोग-क्षणिक! --फिर क्या जानें
हम कहां और तुम कहां प्रिये?
पल भर तो साथ-साथ बह लें;
कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें;

आओ कुछ ले लें औ" दे लें!
हम हैं अजान पथ के राही,
चलना--जीवन का सार प्रिये!

पर दुःसह है, अति दुःसह है एकाकीपन का भार प्रिये!

पल-भर हम-तुम मिल हंस-खेलें; आओ कुछ ले लें औ" दे लें!

हम-तुम अपने में लय कर लें! उल्लास और सुख की निधियां,
बस इतना इनका मोल प्रिये! करुणा की कुछ नन्हीं बूंदें कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये!

सौरभ से अपना उर भर लें;
हम-तुम अपने में लय कर लें!

हम-तुम जी-भर खुल कर मिल लें! जग के उपवन की यह मधु-श्री,
सुषमा का सरस वसंत प्रिये!
दो सांसों में बस जाए और
ये सांसें बनें अनंत प्रिये!

मुरझाना है आओ खिल लें,
हम-तुम जी भर खुल कर मिल लें।
जैसे प्रेमी एक-दूसरे से मिल जाना चाहते हैं, क्षण भर को ही सही! क्योंकि जगत का मिलन तो क्षण भर का ही हो सकता है। जैसे क्षण भर को प्रेमी और प्रेयसी एक-दूसरे में डूब जाना चाहते हैं, और क्षणभर को भी सुख की एक पुलक, एक उल्लास, एक झलक, एक किरण उतरती है। वह तो किरण ही होगी--आई और गई! पहचान भी न पाओगे कि कब आई, कब गई! बस, भनक कान में पड़ेगी और जाना भी हो जाएगा।
लेकिन भक्त और सदगुरु के बीच जो मिलन की घटना घटती है वह शाश्वत के तल
पर है क्योंकि समाधि के तल पर है। मैंने कहा, विद्यार्थी मिलता है शिक्षक से बुद्धि के तल पर। शिष्य मिलता है गुरु से हृदय के तल पर। भक्त मिलता है भगवान से समाधि के तल पर। हृदय से भी एक और गहरी जगह है तुम्हारे भीतर, वहीं तुम हो, वहीं तुम्हारी आत्मा है। आत्मा के तल पर जब मिलन होता है तब मिलन शाश्वत है। बुद्धि का मिलन तो बनता है, टूटता है। हृदय का मिलन टूट नहीं सकता, मगर जो मिले हैं वे अभी दो होते हैं। आबद्ध हैं, आलिंगनबद्ध हैं, पर हैं अभी भिन्न! टूट नहीं सकते--सच, निश्चय ही। मगर अभी दो हैं, अभी एक नहीं हो गए हैं।
भत्त और सदगुरु का मिलन मिलन नहीं है, सम्मिलन है। एक हो गए, संगम हो गया, तीर्थराज निर्मित हुआ। और इस संबंध में यह समझ लेना जरूरी होगा कि जहां भक्त और सदगुरु का मिलन होता है वहां एक तीसरा और आ मिलता है जिसकी किसी को भी कानोंकान खबर न पड़ेगी। इसी को प्रतीक रूप में समझाने के लिए प्रयाग को तीर्थराज कहा है। गंगा दिखाई पड़ती है, यमुना दिखाई पड़ती है, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। दो नदियां दिखाई पड़ती हैं, एक अदृश्य है। दो मिलती हैं, उन दोनों के मिलते हुए जल को भी तुम देख सकते हो क्योंकि दोनों का रंग अलग है। होगा ही। शिष्य का रंग और गुरु का रंग अलग होगा, भेद होगा। मिल जाने के बाद भी तुम देख सकोगे कि दोनों की धाराएं अलग हैं। मगर एक और सरस्वती आ मिली जो दिखाई नहीं पड़ती।
यह तो प्रतीक है। यह उस अंतस के मिलन का प्रतीक है। जहां शिष्य और गुरु मिलते हैं वहीं भगवान भी आ मिलता है भगवान सरस्वती है; अदृश्य है। शिष्य और गुरु का मिलन कोई साधारण घटना नहीं है, इस जगत की सबसे असाधारण घटना है। क्योंकि उसी घटना में परमात्मा का प्रवेश होता है! इस जगत की

सबसे ऊंचे... सबसे ऊंचा शिखर है, गौरीशंकर है, क्योंकि वहीं उसी ऊंचाई पर परमात्मा का प्रारंभ है।
दूलनदास के शब्दों को हृदय में लेना। शब्द तो सीधे-सादे हैं, उनके भाव गहरे हैं।
गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु है, गुरु संकर गुरु साध
दूलन गुरु गोविंद भजु, गुरुमत अगम अगाध
गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु शंकर। त्रिमूर्ति की इस धारणा को ठीक से समझो। ऐसी धारणा केवल भारत में ही जन्मी। और इस अनूठे अर्थ के साथ जन्मी कि जैसा अर्थ दुनिया के किसी भी देश में, किसी भी धर्म ने परमात्मा को देने की हिम्मत नहीं की।
ब्रह्मा परमात्मा का एक चेहरा, विष्णु दूसरा चेहरा, महेश तीसरा चेहरा! परमात्मा एक, उसके चेहरे तीन। क्योंकि परमात्मा एक लेकिन उसकी अभिव्यक्तियां तीन। ब्रह्मा है उसकी सृष्टि की अभिव्यक्ति, विष्णु है सम्हालने की अभिव्यक्ति, शंकर या महेश हैं उसके विनाश करने की क्षमता। ब्रह्मा से जगत का निर्माण, विष्णु से जगत का अवधान, महेश से जगत का अवसान। दुनिया का कोई भी धर्म इतनी हिम्मत नहीं कर सका कि परमात्मा को मृत्यु-रूप भी मान ले। जीवन-रूप तो माना। यहूदी हैं, ईसाई हैं, मुसलमान हैं उन्होंने परमात्मा का ब्रह्मा रूप स्वीकार किया, सिर्फ ब्रह्मा-रूप। एक ही चेहरा स्वीकार कर सके वे। परमात्मा ने जगत बनाया इतना माना। परमात्मा का विष्णु-रूप भी स्वीकार नहीं कर सके क्योंकि जगत में इतनी भूल-चूकें दिखाई पड़ती हैं; अगर परमात्मा ही सम्हाल रहा है तो ये भूल-चूकें नहीं होनी चाहिए। इतनी बीमारी, इतना रोग, इतने युद्ध, इतना उपद्रव! अंधे बच्चे पैदा होते हैं, लंगड़े बच्चे पैदा होते हैं, कोढ़ी बच्चे पैदा होते हैं। अगर परमात्मा अभी भी सम्हाल रहा है तो ये भूल-चूकें कैसी हो रही हैं?
तो तीनों धर्मो ने जो भारत के बाहर पैदा हुए, परमात्मा का ब्रह्मा-रूप स्वीकार किया कि उसने छह दिन में दुनिया बना दी और फिर हट गया। फिर दुनिया अपने से चल रही है। फिर इसमें जितनी विकृतियां हैं वे शैतान पर थोप दीं। मगर इसमें एक बड़ी तार्किक भ्रांति हो गई, भूल हो गई। इसका अर्थ हुआ कि
इस जगत के दो नियामक हैं--परमात्मा और शैतान। और इसका यह भी अर्थ हुआ कि शैतान परमात्मा से ज्यादा बलशाली मालूम होता है। क्योंकि शांति तो कभी- कभी, युद्ध रोज। प्रेम तो कभी-कभी, घृणा रोज। करुणा तो कभी-कभी, क्रोध रोज। बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट तो कभी-कभी, और विकृत, अस्वस्थ, रुग्ण-चित्त लोगों की इतनी बड़ी भीड़! शैतान जीतता मालूम पड़ता है, परमात्मा हारता मालूम पड़ता है। लेकिन एक छोटी सी कमजोरी के कारण यह अड़चन खड़ी हुई। संसार में जो भूल-चूक है उसकी कोई व्याख्या न खोज पाए, तो परमात्मा को दूर हटा कर रखा। लेकिन परमात्मा ने छह दिन में दुनिया बना दी, फिर दूर हट गया। फिर दुनिया परमात्मा से खाली और हीन हो गई। जैसे किसी बच्चे ने अपने खिलौनों से कुछ दिन खेला और उन्हें कोने में फेंक दिया, धूल जमने लगी उन पर। और बच्चा उनकी फिकिर लेना भूल गया। न अब उन्हें धुलाता है, न नहलाता है, न सुलाता है। जगत उपेक्षित! तो हमारी प्रार्थना भी क्या उस परमात्मा तक पहुंचेगी! जो न मालूम कब जगत को बना कर दूर हट गया! शायद भूल ही चुका हो कि उसने जगत बनाया भी था। हमारी प्रार्थना उस तक कैसे पहुंचेगी? हमारे उदगार उस तक कैसे पहुंचेंगे?
नहीं, भारत ने हिम्मत की; उसका दूसरा रूप भी स्वीकार किया--विष्णु- रूप। ब्रह्मा की तरह उसने बनाया, विष्णु की तरह वही सम्हाल रहा है। और भूल-चूक अगर है तो उसका कारण है, अकारण नहीं है। क्योंकि यहां बिना अंधेरे के प्रकाश नहीं हो सकता; क्योंकि यहां बिना मृत्यु के जन्म नहीं हो सकता; क्योंकि यहां बिना बीमारी के स्वास्थ्य नहीं हो सकता। अस्तित्व के होने का ढंग द्वंद्वात्मक है। अभिव्यक्ति द्वंद्व से ही हो सकती है। जहां द्वंद्व नहीं वहां अभिव्यक्ति नहीं।
जब जगत नहीं था तो कोई बुराई न थी क्योंकि कोई भलाई भी न थी। जैसे ही जगत हुआ, भलाई भी हुई, बुराई भी हुई; समान अनुपात में हुई। यह वैज्ञानिक बात मालूम पड़ती है। इसके पीछे गणित साफ मालूम पड़ता है। तुम सोचते हो कि

दुनिया में गर्मी ही गर्मी हो, ठंड न हो, यह कैसे होगा? ठंडक और गर्मी दो चीजें थोड़े ही हैं! एक ही थर्मामीटर से दोनों नाप लिए जाते हैं तो दो नहीं हो सकते। एक ही रूप है, अभिव्यक्ति दो है। और अभिव्यक्त होने के लिए दो होना जरूरी ही है। अगर पुरुष ही पुरुष हों तो जगत नहीं चल सकता। स्त्रियां ही स्त्रियां हों तो जगत नहीं चल सकता।
अब तो विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि अगर विद्युत में सिर्फ
धन विद्युत हो, ऋण विद्युत न हो तो विद्युत नहीं होगी। ऋण और धन दोनों साथ-साथ होने चाहिए। पश्चिम के बड़े दार्शनिक हीगल ने इसी को द्वंद्वात्मक विकास कहा है, डाइलेक्टिकल एवोल्यूशन कहा है। और इसी को कार्ल मार्क्स ने अपने समाजवाद का आधार बनाया--इसी सिद्धांत को कि द्वंद्व जगत का स्वभाव है। यहां दो के बीच संघर्ष चल रहा है।
जरा सोचो ऐसी राम-कथा जिसमें राम तो हों और रावण न हो। राम-कथा बनेगी नहीं। लाख उपाय करो, न बनेगी। कोई तरह से राम-कथा बिना रावण के नहीं बन सकती। इसलिए रावण राम की कथा का अनिवार्य अंग है। और न ही रावण हो सकता है बिना राम के। राम और रावण दोनों मिल कर राम-कथा में रंग भरते हैं। काली पृष्ठभूमि पर सफेद रेखाएं उभर कर प्रकट होती हैं। इसलिए तो दिन में तारे नहीं दिखाई पड़ते हैं। हैं तो जरूर, मगर दिखाई नहीं पड़ते; रात के अंधेरे में दिखाई पड़ते हैं। अंधेरे में उनकी रोशनी स्पष्ट हो जाती है।
विपरीत चाहिए अभिव्यक्ति के लिए। इस विपरीतता के सिद्धांत को स्वीकार करते ही जगत की भूल-चूकों को शैतान के ऊपर थोपने की कोई जरूरत न रही। भारत अकेला देश है जिसने शैतान को गढ़ने की आवश्यकता नहीं समझी, परमात्मा काफी है। और भारत अकेला देश है जिसने यह हिम्मत की कि परमात्मा फूल भी है और कांटा भी है। तब हमने कांटे को भी गौरव दे दिया। फूल को तो गौरव कोई भी दे देता है, हमने कांटे को भी गौरव दे दिया। हमने राम को ही सन्मान नहीं दिया, हमने रावण को भी सन्मान दे दिया क्योंकि राम ही रावण के भीतर ही हैं।
एक ही परमात्मा विपरीत रूपों में प्रकट हुआ है तो ही जगत का विस्तार फैलाव विकास संभव हुआ। वही अनंत-अनंत रूपों में प्रकट हुआ है। विष्णु सम्हालते हैं। तुमने एक बात देखी कि ब्रह्मा का सिर्फ एक ही मंदिर है भारत में। विष्णु के सब मंदिर हैं क्योंकि बाकी सब अवतार विष्णु के हैं। राम का मंदिर बनाओ तो विष्णु का मंदिर बनता है और कृष्ण का मंदिर बनाओ तो विष्णु का मंदिर बनता है। बाकी सब मंदिर विष्णु के हैं।
ब्रह्मा का एक ही मंदिर? क्योंकि ब्रह्मा का काम तो पूरा हो चुका। वह
तो बनाने के साथ ही पूरा हो गया। अब तो प्रार्थना करनी है। मंदिर तो प्रार्थना के लिए बनता है इसलिए विष्णु का होगा। पुकारना तो उस तक होगा जो संभाल रहा है। परमात्मा के उस रूप को पुकारना होगा जो संभाल रहा है। इसलिए विष्णु की सारी प्रार्थनाएं हैं।
और इससे भी अद्भभुत एक बात भारत ने की, कि निर्माण तो ठीक है लेकिन निर्माण कभी न कभी विध्वंस होना ही चाहिए। जो चीज शुरू होती है उसका अंत होगा। हम बड़े वैज्ञानिक विचार से चले। हमने अपनी वैज्ञानिकता में जरा भी समझौता नहीं किया। धर्म के नाम पर हमने वैज्ञानिकता को इनकार नहीं किया। हमने धर्म और वैज्ञानिकता के बीच भी एक सेतु बना लिया। जो चीज शुरू होती है वह अंत होगी। जन्म होगा तो मृत्यु होगी। और सृष्टि हुई है तो एक दिन विनाश होगा, प्रलय होगा तो फिर प्रलय का भी एक रूप होना चाहिए परमात्मा का, जो मिटाएगा। वे ही हाथ जिन्होंने बनाया, वे ही हाथ जिन्होंने सम्हाला, एक दिन मिटाएंगे भी। उस मिटाने वाले रूप को हमने महेश कहा है।
ये तीन अभिव्यक्तियां हैं परमात्मा की--सृजन, सम्हाल; प्रलय, अंत ये तीनों उसके चेहरे हैं। हमने मौत में भी उसको पहचान लिया। जीवन में पहचानने में ही कई लोगों को मुश्किल पड़ती है। इसी कारण तो हजारों-हजारों लोग नास्तिक हैं। वे जीवन में भी परमात्मा को नहीं पहचान पाते हैं। और ऐसे अदभुत लोग भी हुए जिन्होंने मृत्यु में भी उसे पहचान लिया। कुछ हैं जिन्हें जीवन में भी दिखाई नहीं पड़ती उसकी रोशनी। जीवन में भी उसकी धड़कन नहीं सुनाई पड़ती। जीवन में भी उसकी सांसें चलती नहीं मालूम पड़तीं। इतना

विराट, अपूर्व जीवन चारों तरफ छाया हुआ है और फिर भी लोग कहते हैं, परमात्मा कहां है?
लेकिन अदभुत थे वे लोग, गहरी थी उनकी प्रतिभा, आंखों जैसी आंखें थीं उनके पास--इसको कहना चाहिए अंतर्दृष्टि, कि उन्होंने मृत्यु में भी परमात्मा के हाथ देखे। क्योंकि सभी कुछ उसका है; जन्म भी उसका, मृत्यु भी उसकी। आधुनिक विज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि पृथ्वियां बनती हैं, मिटती हैं; तारे बनते हैं, मिटते हैं। बड़ा लंबा समय लगता है बनने और मिटने के बीच लेकिन इस अनंत काल में बड़े लंबे समय का भी क्या मूल्य है! प्रति रात सैकड़ों तारे विसर्जित हो जाते हैं और सैकड़ों नये तारे निर्मित हो जाते हैं। प्रतिपल यह घटना घट रही है। सृजन भी हो रहा है, सम्हालना भी हो रहा है, विनाश भी हो रहा है। जैसे कोई बच्चे पैदा हो रहे हैं, कोई जवान हैं और कोई मृत्यु के करीब मरणशय्या पर पड़े हैं। ये तीनों प्रक्रियाएं एक साथ चल रही हैं अस्तित्व में।
कहीं ब्रह्मा कार्य में संलग्न हैं, कोई नया तारा रचा जा रहा है। कहीं विष्णु कार्य में संलग्न हैं; जो रच दिया गया है उसे सम्हाला जा रहा है। फूल-फूल पर रंग भरा जा रहा है। तितली-तितली पर रंग डाला जा रहा है। तारों की दीप-मालिका सजाई जा रही है। लोगों के प्राणों में जीवन का स्वर बजाया जा रहा है। पक्षी गीत गा रहे हैं, वृक्षों में फूल खिल रहे हैं। जहां जीवन बन गया है वहां जीवन को संभाला जा रहा है। और जहां जीवन थक गया है और जहां ऊर्जा विश्राम में जाना चाहती है वहां कोई तारा मृत्यु के करीब पहुंच रहा है, कोई पृथ्वी मृत्यु के करीब पहुंच रही है।
पिछले दस वर्षों में वैज्ञानिकों ने एक नई शोध की है जिसको वे कहते हैंः ब्लैक होल्स। अब तक उनके बाबत पूरी जानकारी नहीं हो सकी। शायद कभी नहीं हो सकेगी क्योंकि मामला ही कुछ ऐसा है। वैज्ञानिकों ने आकाश में कुछ ऐसे रिक्त स्थान खोजे हैं जिनमें कोई तारा अगर चला जाता है तो समाप्त हो जाता है, एकदम विलुप्त हो जाता है। जैसे बूंद को तुमने पानी की गरम तवे पर उड़ते देखा हो, धुन से उड़ जाती है एक क्षण पहले थी, एक क्षण बाद नहीं है। वाष्पीभूत हो गई। या सुबह के सूरज में तुमने किसी पत्ते पर उड़ती ओस की किरण को देखा हो, ऐसे तारे भी उन रिक्त स्थानों में प्रवेश करते ही विलीन हो जाते हैं। उनको ब्लैक होल कहते हैं--काले छिद्र। काले क्योंकि उनमें मृत्यु घटती है। और अभी-अभी दो साल के भीतर इस बात की भी खोज होनी शुरू हुई कि जैसे काले छिद्रों को खोजा गया, काले छिद्रों की दूसरी तरफ, दूसरा पहलू जैसे सिक्के का दूसरा पहलू होता है, शुभ्र छिद्र हैं--व्हाइट होल्स। जैसे काले छिद्रों में चीजें विलीन हो जाती हैं वैसे ही उन शुभ्र छिद्रों से चीजें निकलती हैं, निर्मित होती हैं।
यह तो एक छोर पर ब्रह्मा और दूसरे छोर पर महेश को खोज लिया गया। और दोनों के मध्य में विष्णु। ब्रह्मा का तो मंदिर ही एक है क्योंकि कौन पूजा करे उसकी जिसका काम ही पूरा हो गया? पूजा का प्रयोजन भी नहीं है। इसलिए ब्रह्मा को कोई पूजन नहीं मिलती। अधिकतम पूजन मिलती है विष्णु को। और विष्णु से भी ज्यादा मंदिर तुम्हें मिलेंगे शंकर के। इतने ज्यादा, इतने लोगों ने बनाए कि फिर मंदिर बनाना जरूरत न रही। किसी भी मंदिर के नीचे, किसी भी छप्पर के नीचे या किसी वृक्ष के नीचे भी शंकर की पिंडी रख दी मंदिर खड़ा हो गया। गांव-गांव, चौपाल-चौपाल, राह-राह पर शंकर के मंदिर फैल गए क्योंकि शंकर के हाथ में मृत्यु है, विनाश है। जिसके हाथ में मृत्य है और विनाश है, उसकी प्रार्थना उठे यह स्वाभाविक है। क्योंकि हमारा भविष्य उसके हाथ में है। आज नहीं कल हम उसके हाथ में होंगे।
ये तीन परमात्मा की ऊर्जाएं हैं। और दूलनदास कहते हैं कि तीनों मुझे मेरे गुरु में दिखाई पड़ते हैं।
गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु है, गुरु संकर गुरु साध
ये तीनों मुझे मेरे गुरु में दिखाई पड़ते हैं। मैंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को, तीनों को अपने गुरु में देख लिया। यह त्रिवेणी मैंने अपने गुरु में देख ली। और इतनी ही नहीं मैंने अपने गुरु में उस साधु को भी पाया है

जिसने यह त्रिवेणी दिखलाई। यह त्रिवेणी भी मेरे गुरु हैं और इसको दिखाने वाला इशारा भी मेरे गुरु।
दूलन गुरु गोविंद भजु...
और इसलिए दूलनदास कहते हैं, एक गुरु को भज लिया तो तीनों को भज लिया। क्या अलग-अलग याद करते रहें ब्रह्मा की, विष्णु की, महेश की! एक गुरु को याद कर लिया तो तीनों को याद कर लिया। एक के साधते ही तीनों सध गए। और न इतना कि केवल तीनों सध गए, एक गुरु को ही याद कर लिया तो गुरु में सारे साधुओं की याद पूरी हो गई। णमो लोये सब्ब साहूणं! सब साधुओं को नमस्कार हो गया।
... गुरु मत अगम अगाध
इसलिए कहते हैं कि जो गुरु की धारणा को समझ ले, जो गुरु शब्द में छिपे हुए राज को समझ ले, उसने जीवन के अगाध सत्य को समझ लिया। क्योंकि इस छोटे से शब्द से गुरु में हमने वह सब समा कर भर दिया। यह तो एक छोटा सूत्र है जिस सूत्र में हमने सब भर दिया है। इस एक छोटे शब्द में आध्यात्मिक जीवन के सारे रहस्यों को हमने निचोड़ कर रख दिया है। जैसे हजार-हजार फूलों से निचोड़ कर इत्र बनता है, ऐसे हमने सारे आध्यात्मिक अनुभवों को निचोड़ कर जो इत्र बनाया है, वह गुरु है। गुरु का कृत्य क्या है?
जहां संगरेजों पे गिरते हैं गाहक
वहां जिंसे-लालो-गुहर बेचता हूं

जहां कद्रदां हैं जम.अ तल्खियों के
वहां कन्दो-शहदो-शकर बेचता हूं

परस्तारियां हैं जहां जुल्मतों की
वहां नूरे-शम्सो-कमर बेचता हूं

जहां दर्दे-दिल का मखलिफ है आलम
वहां दर्दे-दिल का असर बेचता हूं

छुपा कर रदीफो-कवाफी के अंदर
मैं दिल बेचता हूं, जिगर बेचता हूं
गुरु का कृत्य यह हैः जहां संगरेजों पे गिरते हैं गाहक। जहां पत्थर
के टुकड़ों को लोग खरीद रहे हैं, जहां पत्थर के टुकड़ों पर गिर-गिर पड़ रहे हैं, जहां कंकड़ बीन रहे हैं और सोचते हैं कि हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर रहे हैं... !
जहां संगरेजों पे गिरते हैं गाहक
वहां जिंसे-लालो-गुहर बेचता हूं
--वहां लाल, मोती जैसे जवाहरात, वहां कोहिनूर बेचता हूं। गुरु का यह कृत्य है कि जहां लोग कंकड़ खरीदने में लीन हैं वहां वह जवाहरात लाता है-- जवाहरात जो इस जगत के नहीं हैं; कोहिनूर जो किसी और लोक के हैं; कोहिनूर जो उसकी समाधि में उसे मिले हैं। कोहिनूर जो उसने अपने अंतर्तम की गहराइयों में उतर कर पाए हैं।
जहां संगरेजों पे गिरते हैं गाहक
वहां जिंसे-लालो-गुहर बेचता हूं
जहां कदद्रां है जमअ तल्खियों के
वहां कंदो-शहदो-शकर बेचता हूं
और जहां लोग कटुताओं के आदी हो गए हैं वहां मिठास बेचता हूं। जहां लोग जहर पीने को ही जीवन समझ लिए हैं वहां मिठास बेचता हूं। जहां लोग कांटों को ही सब कुछ मान लिए हैं वहां फूलों की गंध बेचता हूं।
जहां कदद्रां है जमअ तल्खियों के
वहां कंदो-शहदो-शकर बेचता हूं
जहां लोगों ने कड़वे स्वाद को ही मिठास समझ लिया है, जहां नीम को ही लोग
आम समझ रहे हैं, वहां सदगुरु वही है जो मधुशाला खोल दे। परस्तारियां हैं जहां जुल्मतों की--जहां अंधेरों की पूजा हो रही है... ।

परस्तारियां हैं जहां जुल्मतों की
वहां नूरे-शम्सो-कमर बेचता हूं
वहां सूर्य-चंद्र का प्रकाश बेचता हूं। जहां लोग अंधेरों की पूजा कर रहे हैं, जहां अमावस देवी हो गई है वहां पूर्णिमा की खबर लाता हूं। और जहां लोग रातों के आदी हो गए हैं और भूल ही गए हैं कि रातों की कोई सुबह भी होती है, वहां सुबह बेचता हूं।
परस्तारियां हैं जहां जुल्मतों की
वहां नूरे-शम्सो-कमर बेचता हूं
जहां दर्दे-दिल का मुखालिफ है आलम
वहां दर्दे-दिल का असर बेचता हूं
और उस संसार में जहां प्रेम को खरीदने को कोई तैयार ही नहीं है, जहां सारा संसार हृदयविरोधी है, जहां लोग मस्तिष्क को ही एकमात्र मूल्य देते हैं, जहां हृदय का विरोध है, इनकार है, निंदा है, अस्वीकार है; जहां प्रेम को अंधा कहा जाता है और तर्क को आंख वाला कहा जाता है; जहां गणित जानने वाले को होशियार कहा जाता है और जहां प्रेम जानने वाले को लोग भोला-भाला, बुद्धू समझते हैं; जहां निर्दोष होना बुद्धूपन जैसा हो गया है और जहां चालबाज और चालाक होना होशियारी और प्रतिभा हो गई है। जहां दर्दे-दिल का मुखालिफ है आलम... जहां प्रेम की पीड़ा का विरोध हो रहा है वहां दर्दे-दिल का असर बेचता हूं। वहां प्रेम की पीड़ा की ही बेचने की मैंने दुकान खोल रखी है क्योंकि प्रेम की पीड़ा से ही सेतु बनता है परमात्मा तक। जो हृदय में आंसुओं से भर जाते हैं वे ही केवल उस तक पहुंच पाते हैं।
छुपा कर रदीफो-कवाफी के अंदर
मैं दिल बेचता हूं, जिगर बेचता हूं
अपने शब्दों में, अपने काव्य में छिपा-छिपा कर मैं दिल बेचता हूं, जिगर बेचता हूं। सदगुरु वही है जो तुम्हारे सोए दिल को जगा दे; जो अपने धड़कते दिल के करीब तुम्हारे दिल को ले आए; उसके धड़कते दिल को देख कर तुम्हारा दिल धड़क उठे; जो अपनी प्यास तुम्हें दे दे और अपनी पीड़ा तुम्हें दे दे और अपने प्रेम तुम्हें दे दे; और एक दिन आए वैसी शुभ घड़ी जब अपना परमात्मा तुम्हें दे दे।
श्री सतगुरु-मुखचंद्र तें, सबद-सुधा-झरि लागि।
हृदय सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि।।
दूलन कहते हैं, मेरे भाग्य जागे। मेरे भाग्य जागे क्योंकि सदगुरु की शब्द-सुधा बरस रही है, उनकी वाणी का अमृत झर रहा है और मैं अपने हृदय-सरोवर में भर रहा हूं। ऐसा ही तुम भी करो, दूलन कहते हैं। श्री सतगुरु-मुखचंद्र तें, सबद-सुधा-झरि लागि।
सदगुरु के शब्द शब्दों की तरह मत सुनना, उन शब्दों में कुछ और भी है, कुछ ज्यादा भी है जो शब्दों में नहीं होता। वे शब्द डूबे आ रहे हैं किसी शराब से। वे किसी सुधा से भरे हैं, किसी अमृत में डुबकी लगा कर आ रहे हैं। वे शब्द साथ में समाधि की गंध ला रहे हैं। सबद-सुधा-झरि लागि... और जैसे झरी लगी हो वर्षा में... चूक मत जाना। कोई-कोई तो वर्षा में भी चूक जाते हैं ऐसे अभागे हैं। अपने बर्तन को उलटा रख कर बैठ गए तो वर्षा में भी चूक जाओगे। और जो लोग भी बुद्धि से सुनते हैं वे बर्तन को उलटा रख कर बैठे हैं। हृदय को खोलो। पीओ! सुनो मत, पीओ। तो ही तुम्हारा हृदय-सरोवर भर सकेगा अमृत से। हृदय-सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि
और एक बूंद भी पड़ जाए तो क्रांति घट जाती है। सरोवर भर जाए तब तो कहना
ही क्या! एक बूंद पड़ जाए तो क्रांति घट जाती है। एक बूंद पड़ जाए तो तुम्हारी जिंदगी की रौ बदल जाती है, रंग बदल जाता है, ढंग बदल जाता है। तुम्हारे पैरों में नृत्य आ जाता है। तुम्हारी आंखों में रौनक और तेज, और तुम्हारे प्राणों में जीने की एक नई अभिलाषा! और तुम्हारे आस-पास धुन बजने लगती है शाश्वत की, अनाहत की। फिर तुम इसी जिंदगी में से, इसी भीड़-भाड़ में से नाचते हुए निकल सकते हो।
मसर्रत की तानें उड़ाता गुजर जा
तरब के तराने सुनाता गुजर जा

बशाशत के दरिया बहाता गुजर जा
जमाने से गाता-बजाता गुजर जा
गुजर जा जमीं को नचाता गुजर जा
सुन सको तो यह हो जाए। हृदय से सुन सको तो यह हो जाए। विद्यार्थी की तरह नहीं, शिष्य की तरह सुन सको तो यह हो जाए। और भक्त की तरह सुन लो तब तो तुम भी कहोः दूलन जागे भागि।
मसर्रत की तानें उड़ाता गुजर जा
तरब के तराने सुनाता गुजर जा
बशाशत के दरिया बहाता गुजर जा
जमाने से गाता-बजाता गुजर जा
गुगर जा जमीं को नचाता गुजर जा

मिटा डाल एहसासे आजारे-गम को
जो दाना है तो फेंक दे बारे-गम को जला दे फरामीने-सरकारे-गम को जरी है तो हर-एक दीवारे-गम को हिलाता, बिठाता, गिराता गुजर जा

जमानो-मकां की सितमरानियों पर मसायब की हंगामा-सामानियों पर हयाते-दोरोजा की नादानियों पर खता और खता की पशेमानियों पर नजर डालता मुस्कुराता गुजर जा

ये माना कि ये जिंदगी पुर-अलम है ये माना कि ये जिंदगी मौजे-सम है ये माना कि ये जिंदगी इक सितम है ये माना कि ये जिंदगी गम ही गम है सरे-गम पे ठोकर लगाता गुजर जा

अगर हर नफस है सताने पे माइल अगर जिंदगी है रुलाने पे माइल अगर आस्मां है मिटाने पे माइल अगर दहर है रंग उड़ाने पे माइल खुद इस दहर का रंग उड़ाता चला जा जहां की रविश है बहुत जालिमाना रिया हर फसूं है, दगा, हर फसाना न कर फिर भी ये शिकवाए-आमियाना कि आंखें दिखाता है तुझको जमाना .जमाने को आंखें दिखाता चला जा

मसर्रत की तानें उड़ाता गुजर जा
तरब के तराने सुनाता गुजर जा
बशाशत के दरिया बहाता गुजर जा
जमाने से गाता-बजाता गुजर जा
गुगर जा जमीं को नचाता गुजर जा
एक बूंद भी पड़ जाए तो तुम नाच उठो। तो ठीक ही कहते हैं दूलन कि कैसे मेरे भाग्य, कैसा मेरा सौभाग्य!
हृदय-सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि
दूलन गुरु तें विषै-बस, कपट करहिं जे लोग
निर्पल तिनकी सेव है, निर्पल तिनका जोग
लेकिन ऐसे अभागे भी हैं कि गुरु के पास भी कपट से जाते हैं। ऐसे नासमझ
भी हैं, ऐसे नादान भी हैं, ऐसे मूढ़ भी हैं कि गुरु के पास जाकर भी उनके भीतर

की जो आकांक्षा होती है वह क्षुद्र को ही मांगने की होती है। गुरु चाहे कोहिनूर देता हो, उनकी नजर कंकड़-पत्थरों पर लगी रहती है। गुरु के पास जाकर भी वे अपने हृदय को पूरा नग्न नहीं छोड़ पाते। वहां भी छिपा लेते हैं, वहां भी आड़ रखते हैं, वहां भी पर्दा रखते हैं। चिकित्सक के पास बीमारी छिपाओगे तो चिकित्सा कैसे होगी? गुरु के पास कुछ भी नहीं छिपाना, तो ही तुम विद्यार्थी के जगत से ऊपर उठोगे और शिष्य बनोगे।
दूलन गुरु तें विषै-बस, कपट करहिं जे लोग
लेकिन हृदय में न मालूम कितने-कितने तरह की वासनाएं छिपाए हुए हैं लोग, उनको भी प्रकट नहीं करते। कहते नहीं कि मैं कैसा हूं। कहते नहीं कि मैं कैसे जहर से भरा हूं। कहते नहीं कि मेरी कैसी अपात्रता है। और तुम्हीं न कहो तो तुम्हें स्वच्छ कैसे किया जा सके? तुम्हारे पात्र को निखारा कैसे जाए?
निर्पल तिनकी सेव है... फिर तुम कितनी ही सेवा करो, गुरु के पैर दबाते रहो, पैर दबाने से कुछ भी न होगा और सेवा करने से कुछ भी न होगा। एक ही सेवा है कि तुम गुरु के समक्ष अपने को अपनी समग्रता में, अपनी समग्र नग्नता में खुला कर दो। तुम वैसे प्रकट हो जाओ जैसे हो। सारे संसार को धोखा देते हो, कम से कम गुरु को तो धोखा मत दो! एक जगह तो ऐसी हो जहां तुम निर्भार हो सको और धोखा न देना पड़े। एक जगह तो ऐसी हो जहां कुछ छिपाना न पड़े, जहां कोई झूठ न हो। और उसी जगह से त्राण मिलेगा, नहीं तो सब योग, सेवा, भजन-कीर्तिन, सब व्यर्थ है।
सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं
दूलनदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिं
और कहते हैं कि चींटी की पुकार भी पहुंच जाती है उस तक। सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं। इसलिए चिल्ला-चिल्ला कर कहने की कोई जरूरत नहीं है, सिर्प हृदय में ही निवेदन कर दिया तो बात हो गई। बिन बोले कहा जा सकता है।
और गुरु के पास यही कला सीखनी चाहिए बिन बोले कहने की, चुपचाप बैठ जाने की, भाव की तरंग से खबर पहुंचाने की। और जब तुम्हें गुरु तक भाव से तरंग पहुंचने लगेगी तब तुम्हें भरोसा आएगा, जब गुरु तक पहुंचने लगी तो अब परमात्मा तक भी पहुंच सकेगी। और असली प्रार्थना शब्द की नहीं होती निःशब्द होती है, मौन होती है; मुखर नहीं होती। बोलने को है भी क्या हमारे पास? परमात्मा से बोलना भी चाहेंगे तो क्या बोलेंगे? जो हम बोलेंगे उसे वह पहले से जानता है। हमारे जानने से पहले उसने जाना है। कहने को क्या है? वह तो चींटी की आवाज भी सुन लेता है। वह तो वृक्षों की आवाज भी सुन लेता है। वह तो पत्थरों की आवाज भी सुन लेता है। वह तो सबके भीतर रमा बैठा है।
दूलन यहि जग जनमिकै, हरदम रटना नाम
केवल राम-सनेह बिनु, जन्म-समूह हराम
राम के नाम को लेने की कला सीखो--चुपचाप, भाव के जगत में!
दूलन यहि जग जनमिकै, हरदम रटना नाम--और अगर राम-राम, राम-राम, ऐसा रटना पड़े तो तो चौबीस घंटे रट भी न सकोगे। सोओगे तब तो बंद हो जाएगा रटना। और भी तो काम करने होंगे। बाजार भी जाना होगा, दुकान भी चलानी होगी, रोटी भी कमानी होगी, बच्चों की देखभाल भी करनी होगी। उसने तुम्हें जो जगत और जीवन दिया है उसे छोड़ कर भागना उसका अपमान होगा।
इसलिए मैं भगोड़ों का पक्षपाती नहीं हूं। भगोड़े संन्यासी नहीं हैं, भगोड़े सिर्फ कायर हैं। परमात्मा ने जिंदगी दी है, जीने को दी है और उसके पीछे कुछ राज है। क्योंकि जिंदगी जीने से ही कोई जिंदगी के पार जाने की कला सीखता है। जो जिंदगी से भाग गया वह जिंदगी का अतिक्रमण नहीं कर पाता। सीढ़ी ही न चढ़ोगे तो सीढ़ी के पार कैसे जाओगे? सीढ़ी से ही भाग जाओगे तो पार कैसे जाओगे? इसलिए कोई राम-राम, राम-राम ऐसे रटते रहने का सवाल नहीं है, भाव के जगत में... ।
तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है तो याद बनी रहती है। मां हजार काम करती है और बच्चे की याद बनी रहती हैः वह झूले से नीचे तो नहीं उतर गया, कि वह सीढ़ी के पास तो नहीं पहुंच गया, कि दीये के पास तो नहीं पहुंच गया! रात

भी मां सोती है आकाश में बादल गरजते रहें वे उसे सुनाई नहीं पड़ते लेकिन बच्चे की जरा सी आवाज, बच्चे का जरा कुनमुनाना, और उसकी नींद खुल जाती है। कैसा चमत्कार है! आकाश में बादल गरज रहे हैं, बिजली कौंध रही है और मां की नींद नहीं टूटी और बच्चा जरा सा कुनमुनाया और नींद खुल गई? कहीं भीतर भाव के लोक में स्मरण सतत बह रहा है; नींद में भी बह रहा है।
दूलन यहि जग जनमिकै, हरदम रटना नाम
केवल राम-सनेह बिनु, जन्म-समूह हराम
सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं
मन ही मन में रटो।
दुलनदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिं।
और याद रखो कि परमात्मा बहरा नहीं है--कि तुम्हें खूब चिल्लाना पड़े,
कि तुम्हें जोर-जोर से अजान करनी पड़े, कि तुम्हें जोर-जोर से मंदिर के घंटे बजाने पड़ें। परमात्मा बहरा नहीं है। परमात्मा तो तुम्हारे भीतर ही बैठा है, घंटे बजा कर तुम किसको सुना रहे हो? जोर-जोर से चिल्ला कर तुम किसकी पूजा कर रहे हो? आंख बंद कर लो, चुप हो जाओ, और तुम्हारी पूजा पहुंच गई। बंद आंख भीतर अपने खालीपन में ही अर्चना करो, साधना करो। भीतर के शून्य को ही उसके चरणों में चढ़ाओ और सब फूल व्यर्थ हैं।
हम जीवन के ही हिसाब से परमात्मा के संबंध में सोचने लगते हैं। हम सोचते हैं, जोर से चिल्लाओ तो लोग सुनेंगे। तो हम सोचते हैं, परमात्मा भी तभी सुनेगा जब जोर से चिल्लाएंगे। लोग शायद चिल्लाने से सुनते हों क्योंकि लोग बहरे हैं। परमात्मा बहरा नहीं है। लोग शायद चिल्लाने से सुनते हों क्योंकि लोग बहुत व्यस्त हैं और हजार विचारों में व्यस्त हैं। तुम्हारे विचार को पहुंचाने के लिए आवाज देनी पड़ती है। लेकिन परमात्मा व्यस्त नहीं है, परमात्मा तो महाशून्य है। वहां तो तुम्हारी जरा सी भाव की तरंग जल्दी पहुंच जाएगी। और जितना तुम चिल्लाओगे उतनी ही तुम खबर दोगे कि तुम्हें परमात्मा की कोई पहचान नहीं है। चिल्लाने वाले चूक जाएंगे। जिंदगी में बड़े विरोधाभास हैं। जो गणित बाहर की दुनिया में काम आता है, वह भीतर की दुनिया में काम नहीं आता। बाहर एक और एक मिल कर दो होते हैं, भीतर की दुनिया में एक और एक मिल कर एक होता है।
जो ची.ज इकहरी थी वो दोहरी निकली
सुलझी हुई जो बात थी उलझी निकली
सीपी तोड़ी तो उससे मोती निकला
मोती तोड़ा तो उससे सीपी निकली
जिंदगी गहराइयों पर गहराइयां हैं, पर्तो पर पर्ते हैं। और तुम सबसे गहरी पर्त को अगर तोड़ते ही चले गए, तोड़ते ही चले गए तो तुम शून्य को पाओगे अपने भीतर, सन्नाटा पाओगे। वही सबसे गहरी पर्त है तो वही सबसे गहरी प्रार्थना भी बनेगी।
चितवन नीची, ऊंच मन, नामहि जिकिर लगाय
दूलन सूझै परम-पद, अंधकार मिटि जाए
शुरू-शुरू में तो भरोसा न आएगा कि बिना कहे और उस तक खबर पहुंच जाएगी? यहां तो कह-कह कर खबरें नहीं पहुंचतीं तो बिना कहे कैसे पहुंच जाएगी? शुरू-शुरू में तो भरोसा न आएगा कि बिना कुछ किए परमात्मा मिल सकता है। यहां तो कितना श्रम करते हैं और धन नहीं मिलता, ध्यान कैसे मिलेगा? पद नहीं मिलता तो परमात्मा कैसे मिलेगा? मगर गणित अलग-अलग है।
कभी किसी झील के पास जाकर खड़े हुए हो, झील में झांक कर देखा है? तो तुम्हारा झील में जो प्रतिबिंब बनता है वह उलटा बनता है। उसमें सिर नीचे की तरफ, पैर ऊपर की तरफ होंगे। जो मछलियां झील में तैर रही हैं, वे अगर तुम्हारे प्रतिबिंब को देखें और सोचें कि ऐसे ही तुम होओगे तो बड़ी भूल हो जाएगी। तुम प्रतिबिंब से ठीक उलटे हो।
यह संसार तो केवल प्रतिबिंब है। यह तो सपने में बनी एक छाया है। यह तो माया है। इससे ठीक उलटा गणित काम करता है। यहां कहना हो कुछ तो बोलना पड़ता है, वहां कहना हो तो चुप होना पड़ता है। यहां पहुंचना हो कहीं तो यात्रा करनी पड़ती है, वहां पहुंचना हो कहीं तो सारा चलना छोड़ देना पड़ता है। यहां

प्रयास से मिलता है कुछ, महाप्रयास से मिलता है। वहां अप्रयास से मिलता है, प्रसाद से मिलता है। इससे ठीक उलटा है वह जगत। लेकिन शुरू-शुरू में तो कैसे भरोसा आए? शुरू-शुरू में तो किसी सदगुरु के साथ-साथ चलना सीखना पड़ेगा। किसी सदगुरु की आंखों में आंखें डाल कर शायद थोड़ी संभावना बने भरोसे की। नहीं तो बड़ा अविश्वसनीय लगता है, हजार संदेह उठते हैं।
मित्र आशा के सहारे,
सोचता था लग सकेगी पार ये नौका किनारे।

किंतु सागर की हिलोरें,
और मेघाच्छन्न अंबर।
तेज चलता था प्रभंजन,
और नौका जीर्ण-जर्जर।
बुझ चुके थे आह, नन्हें दीप नभ के, मौन तारे।

हाथ में पतवार जिसके,
था न कुछ विश्वास उसका।
और यात्री बन चुका था,
मद्दतों से दास उसका।
अब उसी पर था डुबोए और चाहे तो उबारे।

डूब जाना है उदधि का,
किंतु शायद पार पाना।
और खो देना मोहब्बत का
उसे मन में छिपाना।
फिर न कैसे छोड़ देता नाव आशा के सहारे।
मित्र आशा के सहारे।
पहली बार तो सिर्फ आशा के सहारे ही नाव छोड़नी पड़ती है। किसी के प्रेम
से अगर तुम्हारे भीतर आशा की किरण पैदा हो जाए तो तुम नाव छोड़ दो। क्योंकि इस जगत में बच-बच कर भी आदमी डूब जाता है और उस जगत में डूबने में ही बचना है। उस जगत में वे ही पार उतरे जो डूब गए, जिन्होंने अपने को पूरा डुबा लिया। लेकिन डूबने से डर तो लगेगा, मन तो घबड़ाएगा! मन तो हजार शंकाएं उठाएगा। उस घड़ी कौन बंधाएगा ढाढस?
इसलिए दूलन कहते हैं, गुरु के शब्दों को पीना हृदय में, भरना हृदय में। उन्हीं शब्दों से साहस आएगा, आशा आएगी, विश्वास आएगा। उन्हीं शब्दों के आस-पास तुम्हारे भीतर धीरे-धीरे श्रद्धा की ऊर्जा उमगेगी, निर्मित होगी। और जरा सी श्रद्धा पहुंचा देती है। बड़े से बड़ा तर्क हार जाता है, जरा सी श्रद्धा पहुंचा देती है। तर्को के पहाड़ व्यर्थ हैं; श्रद्धा की राई काफी है।
मगर मनुष्य की अड़चन भी समझने जैसी है। यहां जहां-जहां विश्वास किया वहां-वहां धोखा खाया। जिस पर भरोसा किया उसी ने धोखा दिया। जब भरोसा किया तभी धोखा खाया। इसलिए धीरे-धीरे भरोसे की आदत टूट गई है। हमने एक अजीब दुनिया बनाई है। हमने एक ऐसी दुनिया बनाई है जिसमें संदेह को तो बनने के लिए सब उपाय हैं और श्रद्धा को बनाने के कोई उपाय नहीं हैं।
इसलिए मैं कहता हूं, यह दुनिया अभी धार्मिक नहीं है। और इस दुनिया में अभी कोई देश धार्मिक नहीं हुआ। इक्के-दुक्के लोग धार्मिक हुए हैं। कोई देश अभी धार्मिक नहीं हुआ। भारत भी अभी धार्मिक नहीं हुआ। ये भ्रांतियां हैं। किसी देश को मैं धार्मिक कहूंगा? मेरी परिभाषा में वह देश धार्मिक होगाः जहां का जीवन लोगों में सहज ही श्रद्धा को जन्माता होः उसको हम धार्मिक देश कहेंगे। जहां संदेह अपने आप मर जाते हों; जहां जीना, लोगों से संबंधित होना अपने आप संदेह की मृत्यु हो जाती हो; जहां जीवन के सारे अनुभव श्रद्धा को भरते हों, परिपूरित करते हों, परिपुष्ट करते हों उस देश को धार्मिक कहेंगे। और कोई परिभाषा नहीं हो सकती धर्म की। धर्म की एक ही

परिभाषा हो सकती हैः जिस माहौल में, जिस हवा में, जिस वातावरण में श्रद्धा सहज ही पैदा होती हो और संदेह का पैदा होना ही मुश्किल हो।
अभी तो हालात उलटे हैं, सब जगह उलटे हैं। अभी तो संदेह सहज पैदा होता है। पहली बात ही संदेह की उठती है। श्रद्धा तो करीब-करीब असंभव मालूम पड़ती है। अपनों पर भी लोग श्रद्धा नहीं करते। पति पत्नी पर श्रद्धा नहीं करता, पत्नी पति पर श्रद्धा नहीं करती। दोनों एक-दूसरे की जासूसी करते रहते हैं कि कहीं दूसरा धोखा न दे रहा हो! बच्चे मां-बाप पर भरोसा नहीं करते, मां- बाप बच्चों पर भरोसा नहीं करते। मित्र मित्र पर भरोसा नहीं करते, शत्रुओं की तो बात ही छोड़ दो। तुम किस पर भरोसा करते हो, तुमने कभी सोचा? तुम किसी पर भरोसा करते हो या सबसे तुम्हारे संबंध संदेह के हैं? चाहे तुम कहो चाहे तुम न कहो कहने की बात नहीं कर रहा हूं। भीतर खोजना तुम्हारे सारे संबंध संदेह के हैं तो फिर तुम्हारे जीवन में श्रद्धा कैसे और कब पैदा होगी? इन सारे संदेहों से भरे जगत में, जहां संदेह को सब तरफ से बल मिलता है, प्राण मिलते हैं, हर अनुभव से संदेह और पुष्ट होता है, तुम और चालबाज और कपटी और बेईमान हो जाते हो, वहां किसी एक ऐसे संबंध को तो निर्मित कर लो जीवन में, कम से कम एक संबंध तो ऐसा हो जहां सारे संदेह उतार कर रख दो; जहां श्रद्धा से जुड़ो--वही शिष्य-भाव है।
मर-मर के जब इक बला से पीछा छूटा
इक आफते-ताजादम ने आकर लूटा
इक आबला-ए-नौ से हुआ सीना दो चार
जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा
तुम्हारी जिंदगी का अनुभव ऐसा है कि मर-मर के जब इक बला से पीछा छूटा। किसी तरह छुटकारा एक बला से हो भी नहीं पाता, इक आफते-ताजादम ने आकर लूटा-- कि एक नई मुसीबत आकर लूट लेती है। इक आबला-ए-नौ से हुआ सीना दो चार--हृदय में एक छाला बना, किसी तरह वह घाव भर भी नहीं पाया था, जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा... कि नया आ गया। देर नहीं लगती। धोखे पर धोखे, बेईमानी पर बेईमानियां। चारों तरफ बेईमानियां हैं। चारों तरफ राजनीति है। हर आदमी तुम्हारी गर्दन काटने को उतारू है, चाहे मुस्कुरा रहा हो! क्योंकि यहां मुस्कुरा कर ही गर्दन काटी जाती है। चाहे तुम्हारे पैर दबा रहा हो! क्योंकि यहां पैर दबा कर ही गर्दन पकड़ी जाती है। तुमसे बातें कुछ भी कर रहा हो लेकिन नजर तुम्हारी जेब पर लगी है। कब तुम्हारी जेब काट लेगा कहना मुश्किल है।
यहां चारों तरफ बेईमानी है, चारों तरफ धोखा है। इस धोखे के बीच यह चमत्कार है कि कोई व्यक्ति शिष्यत्व को उपलब्ध हो जाए। यह सौभाग्य की घड़ी है कि तुम्हें ऐसा व्यक्ति मिल जाए जिसके पास तुम श्रद्धा कर लो और तुम कह दो कि ठीक है, लूटना हो तो लूट लो, लेकिन मैं संदेह न करूंगा। मिटाना हो तो मिटा डालो, मैं संदेह न करूंगा। कर लिया संदेह बहुत, हाथ राख ही लगी। अब थोड़ा श्रद्धा का रस लेकर भी देखूं।
सर घूम रहा है नाव खेते-खेते
अपने को फरेबे-ऐश देते-देते
उफ जहदे-हयाते! थक गया हूं माबूद
दम टूट चुका है सांस लेते-लेते
मनुष्य की ऐसी हालत है--सर घूम रहा है नाव खेते-खेते। न कहीं पहुंचती नाव, न किसी किनारे लगती, गोल चक्कर खा रही है--जैसे कोल्हू का बैल हो!
सर घूम रहा है नाव खेते-खेते
अपने को फरेबे-ऐश देते-देते
और हम दूसरों को ही धोखा नहीं दे रहे हैं, अपने को भी धोखा दे रहे हैं।
कल भी तुमने क्रोध किया था और कल भी तुमने कसम खाई थी कि अब क्रोध न करेंगे, कोई सार नहीं है। आज फिर तुम क्रोध कर रहे हो। तुम खुद को ही धोखा दे रहे हो? कल भी तुमने कहा था यह सब व्यर्थ है, इसमें कोई सार नहीं है, अब दुबारा नहीं पड़ना है। आज फिर पड़े जा रहे हो, अपने को ही धोखा दे रहे हो? कल भी कहा था बहुत दौड़ चुके धन के पीछे, क्या सार! कल आएगी मौत, सब पड़ा रह जाएगा। मगर आज भी दौड़ रहे हो। और अगर तुम्हारे अतीत का हिसाब रखा जाए तो तुम कल भी

दौड़ोगे, परसों भी दौड़ोगे, तुम दौड़ते-दौड़ते मौत में ही गिर जाओगे, तब तक दौड़ोगे। तुम अपने को भी धोखा दे रहे हो।
और ऐसा नहीं कि तुम्हें अनुभव नहीं हुए। ऐसा नहीं कि तुम्हें कई बार
यह बोध नहीं मिला कि पहुंच गए बड़े पद पर, क्या पाया? मगर फिर भी दौड़ जारी है। धन भी मिल गया, क्या पाया? फिर भी दौड़ जारी है। जैसे कि तुम रुकना ही भूल गए हो; जैसे कि तुम रुको कैसे यही तुम्हें समझ में नहीं आता; जैसे कि तुम्हारी गाड़ी बिना बेक्र के है। चिल्लाते हो, चीखते हो कि रुकना है, रुकना चाहता हूं मगर गाड़ी है कि चलती चली जाती है। अपने को ही धोखा दे रहे हो!
सर घूम रहा है नाव खेते-खेते
अपने को फरेबे-ऐश देते-देते
उफजहदे-हयात! थक गया हूं माबूद
हे ईश्वर! जिंदगी के संग्राम से बहुत थक गया हूं। दम टूट चुका है श्वास लेते-लेते। अगर ऐसा अनुभव आ गया हो तो अब श्रद्धा का पाठ सीखो। अब एक नई श्वास लो। एक नये लोक में, एक नई हवा में, नई किरणें पीओ, नई शबनम पीओ। नये चांद-तारों से जुड़ो। देख लिया संदेह का एक संसार, अब थोड़ा श्रद्धा का लोक भी अनुभव करो।
चितवन नीची, ऊंच मन, नामहि जिकिर लगाय
अब आंख नीची कर लो, अर्थात अहंकार को अब हटा दो। बहुत अकड़ कर देख लिया, कुछ पाया नहीं, सिर्फ कष्ट पाया। चितवन नीची... अब आंख नीची कर लो अब अहंकार को हटा दो। ऊंच मन--अब चैतन्य को जगाओ। अहंकार को तो गिराओ और चैतन्य को जगाओ।
नामहि जिकिर लगाय... और प्रक्रिया इसकी, दोनों काम की प्रक्रिया एक ही है। अगर प्रभु के नाम का स्मरण लगने लगे तो एक तरफ अहंकार घटेगा और दूसरी तरफ चैतन्य जगेगा। नामहि जिकिर लगाय।
दूलन सूझै परम-पद, अंधकार मिटि जाए
तो जल्दी ही परम पद मिल जाएगा। परम पद का अर्थ होता है, जिसे पाने के बाद फिर और कुछ पाने को न रह जाए; जिसे पाते ही सब पा लिया। जिसे पाया तो पता चला कि कभी कुछ खोया ही नहीं था उसे कहते हैं परम पद।
और अंधकार मिटि जाए--अंधकार हमारे संदेहों के कारण है। हमारे संदेह
ही जम-जम कर गहन अंधकार हो गए हैं। हमारा संदेह ही हमारी अमावस बन गई है। और हमारी श्रद्धा के ही छोटे-छोटे दीये जलने लगें तो दीवाली हो जाए।
मगर ऐसा लगता है कि संदेह समझदारी है और श्रद्धा भोलापन है। संदेह लगता है बुद्धिमानी है और श्रद्धा अपने हाथ लुटने की तैयारी है। लगता ऐसा है, हालत बिल्कुल उलटी है। यहां संदेह के हाथों लोग लुटे हैं और श्रद्धा के हाथों पहुंचे हैं। अब तक कोई भी अगर पहुंचा है तो श्रद्धा से पहुंचा है और संदेह से लुटा है।
फकीहे-शहर गर दाना-ए-राजे-जिंदगी होता,
तो फिर वो भी शरीके-महफिले-बादाकशी होता।
किसी ने वक्ते-मस्ती जामे-मैं छलका दिया वरना,
चिरागे-तूर पर दारो-मदारे-रोशनी होता।
दलीलों में उलझ कर रह गई थी अक्ल बेचारी,
गजब होता अगर दिल भी हलाके-आगही होता।
यही इक इम्तियाजी शान है हम बेनवाओं की,
फकीहे-शहर--शहर का महापंडित, गर दाना-ए-राजे-जिंदगी होता--अगर वह भी जीवन के भेद का ज्ञाता होता। तो फिर वो भी शरीके-महफिले-बादाकशी होता--तो उसने भी फिर पियक्कड़ों की महफिल में सम्मिलित होने के लिए दरख्वास्त दे दी होती। अगर पंडित को कुछ पता होता तो वह भी पियक्कड़ हो गया होता। फिर वह भी शास्त्रों में ही न उलझा रहता, जहां मधु-कलश छलक रहे हैं वहां गया होता; उसने भी सदगुरु खोजे होते।
फकीहे-शहर गर दाना-ए-राजे-जिंदगी होता,
तो फिर वो भी शरीके-महफिले-बादाकशी होता।

अगर सच में ही वह पंडित पंडित होता तो किताबों में ही न उलझा रह जाता
तो फिर उसने भी पी होती; तो फिर वह भी पियक्कड़ों के साथ बैठा होता; तो उसने भी फिर मस्तों के साथ दोस्ती बनाई होती; तो वह भी किसी सत्संग में सम्मिलित हुआ होता।
किसी ने वक्ते-मस्ती जामे-मै छलका दिया वरना,
चिरागे-तूर पर दारो-मदारे-रोशनी होता।
दलीलों में उलझ कर रह गई थी अक्ल बेचारी,
गजब होता अगर दिल भी हलाके-आग ही होता।
बुद्धि में ही उलझे रहोगे या कभी दिल को भी डुबाओगे कहीं? बुद्धि यानी संदेह, दिल यानी हृदय। जब तक दिल ज्ञान का घायल न हो जाए, जब तक ज्ञान का तीर दिल को न लगे तब तक तुम्हारी जिंदगी में चमत्कार न होगा। तुम्हारी जिंदगी ऐसे ही रहेगी थोथी, धूल-भरी।
दलीलों में उलझ कर रह गई थी अक्ल बेचारी,
गजब होता अगर दिल भी हलाके-आग ही होता।
ये बुद्धि में ही लगते रहे तीर प्रश्नों के। अगर एकाध तीर हृदय में चुभ गया होता तो.ग.जब होता; तो चमत्कार होता--
गजब होता अगर दिल भी हलाके-आग ही होता
यही इक इम्तियाजी शान है हम बेनवाओं की
यही विशिष्टता है इस जगत में एकमात्र। "यही इक इम्तियाजी शान है हम बेनवाओं की।" बाहर से निर्धन दिखाई पड़ने वाले, बाहर से सरल-सीधे दिखाई पड़ने वाले लोग! मगर उनकी यही शान है, उनकी यही प्रतिभा है, उनका हृदय घायल है। वे प्रेम से पीड़ित हैं। उनके भीतर श्रद्धा का आविर्भाव हुआ है। उनके भीतर शिष्यत्व जन्मा है।
गुरुवचन बिसरै नहीं, कबहुं न टूटै डोरि
पियत रहौ सहजै दुलन, राम-रसायन घोरि
कहते हैं दूलन कि कुछ भी करूं, गुरु के वचन नहीं बिसरते मुझे। बिसारना चाहूं तो भी नहीं बिसरते। छाया की तरह पीछे पड़े रहते हैं। उठूं-बैठूं, जागूं-सोऊं, वे साथ ही होते है; हवा की तरह घेरे रहते हैं। जैसे श्वास चलती रहती है ऐसे ही उनका स्मरण चलता रहता है।
गुरुवचन बिसरै नहीं, कबहुं न टूटै डोरि
वह जो धागा जुड़ गया है प्रेम का वह जो प्रीति का धागा जुड़ गया है वह टूटता ही नहीं; तोड़ने का उसे उपाय नहीं। कोई तलवार उसे काट नहीं सकती। और कोई आग उसे जला नहीं सकती।
पियत रहौ सहजै दुलन, राम-रसायन घोरि
और अब तो पीता रहता हूं, पीता ही रहता हूं, राम-रसायन को घोलता रहता हूं और पीता जाता हूं।
ऐसे ही दूलन कहते हैं, तुम भी सौभाग्यशाली बनो जैसा मैं बना। कि मैंने गुरु के पास राम-रसायन पी। डोर टूटने दी, भीतर जिक्र को जगाए रखा, ऐसे ही तुम भी पियो। सुनो ही मत, पीओ। पचाओ! रक्त-मांस-मज्जा बन जाएं गुरु के वचन। तुम्हारे अंग बन जाएं। तुम्हारी बुद्धि की सूचनाएं ही न रहें, तुम्हारे हृदय पर फैल जाएं। तुम्हें कोई काटे तो भी गुरु के ही वचनों को तुम्हारे भीतर पाए, या वही जिक्र परमात्मा का।
कहते हैं सरमद की जब गर्दन काटी गई तो ऐसा चमत्कार हुआ--होना चाहिए; हुआ हो या न हुआ हो मगर होना चाहिए। यह बात ऐतिहासिक हो या न हो मगर यह बात आध्यात्मिक है और गहरी है; इतिहास से ज्यादा गहरी है। तथ्य न भी हो मगर सत्य है। सरमद का यह कसूर कि वह घोषणा करता था अनलहक की, कि मैं ईश्वर हूं। और यह मुसलमानों को बरदाश्त न हुआ। यह कैसे बरदाश्त हो?
यह इतनी हिम्मत तो केवल इस देश में हुई कि "अहं ब्रह्मास्मि" की उद्घोषणा को हमने अंगीकार किया। हमने तत्त्वमसि की उदघोषणा को अंगीकार किया। हमने कहा यह और वह एक हैं, इसे हमने सिद्धांततः स्वीकार किया। हमने किसी "अहं-ब्रह्मास्मि" की घोषणा करने वाले को सूली नहीं दी और न गर्दन काटी। भारत के नाम पर और बहुत तरह के लांछन हैं, कम से कम एक लांछन नहीं है--

इसने किसी अनलहक के उदघोषक को मंसूर की तरह या सरमद की तरह मारा नहीं। इतनी समझ रखी, इतना शिष्टाचार रखा।
सरमद की गर्दन काट दी गई। जब गर्दन काटी गई तो आखिरी वक्त सरमद से कहा गया कि अब भी तू माफी मांग ले और कह दे कि मैं ईश्वर नहीं हूं, तो तुझे क्षमा मिल सकती है। लेकिन सरमद ने कहा कि यह मेरे वश से बाहर है। जैसा है उससे अन्यथा मैं कैसे कह दूं? और मैं तुमसे इतना कहता हूं कि गर्दन मेरी काटो या न काटो, गर्दन नहीं कटेगी तो भी वही कहूंगा गर्दन कट गई तो भी वही कहूंगा। यह मैं कह ही नहीं रहा हूं, यह वह कह रहा है जो गर्दन के पार है। फिर उसकी गर्दन काट दी गई। और लाखों लोगों की भीड़ इकट्ठा थी और उस भीड़ ने एक चमत्कार देखा। मस्जिद की सीढ़ियों से उसकी गर्दन लुढ़कती हुई नीचे आई और हर सीढ़ी पर उस गर्दन ने आवाज दीः अनलहक! मैं ईश्वर हूं। तीन बार आवाज दी। यह प्रीतिकर बात है। ऐसा ऐतिहासिक रूप से हो यह जरूरी नहीं है, मगर सरमद जैसे व्यक्ति के आंतरिक सत्य की उदघोषणा है इसमें। जिसके रोएं-रोएं में बात समा गई हो उसकी मृत्यु में भी घोषणा हो सकती है।
और यह भी हो सकता है कि ऐसा हुआ हो। इस जगत में इतने चमत्कार हो रहे हैं कि यह छोटा-मोटा चमत्कार है, यह भी हो सकता है। इस तरह का उल्लेख सरदार पूर्णसिंह ने स्वामी रामतीर्थ के संबंध में भी किया है; और वह तो पुरानी बात नहीं है। और सरदार पूर्णसिंह सजग, विचारशील व्यक्ति थे, कोई भावुक भक्त नहीं।
एक रात स्वामी राम के साथ रुके। टिहरी गढ़वाल की पहाड़ियों में राम मेहमान थे। टिहरी गढ़वाल के नरेश का बंगला था दूर पहाड़ियों में, उसमें ठहरे थे। सरदार पूर्णसिंह साथ रुके। आधी रात अचानक राम-राम-राम, ऐसी आवाजें आने लगीं। चौंके। कौन राम-राम कर रहा है? क्या रामतीर्थ बैठ कर ध्यान कर रहे हैं? उठे, लालटेन जलाई, राम तो सोए हैं लेकिन आवाज आ रही है। सोचा, कोई बाहर होगा। वरांडे में जाकर चक्कर लगा आए। पूरे बंगले का चक्कर लगा आए, कोई नहीं है। सब तरफ सन्नाटा है। लेकिन हैरान हुए कि बाहर गए तो आवाज थोड़ी धीमी आने लगी और भीतर आए तो आवाज जोर से आने लगी। फिर आए राम के पास, जब बिल्कुल पास आए खाट के तो देखा कि आवाज और जोर से आने लगी। तो राम के हाथ पर कान रखकर, पैर पर कान रख कर सुना तो आवाज बहुत जोर से आने लगी। तो राम को जगाया और कहा कि आप क्या कर रहे हैं? आपके शरीर से राम-राम-राम की आवाज आ रही है।
तो राम ने कहा, बहुत स्मरण किया पहले, वह स्मरण समा गया है। अब मैं तो नहीं करता मगर वह अपने से होता रहता है। प्रतिध्वनि गूंजती रहती है। तुम घबड़ाओ न, तुम मजे से सो जाओ। क्षमा करना मुझे, तुम्हारी नींद में बाधा पड़ी मगर मेरे वश के बाहर है।
अगर शरीर से राम की ध्वनि उठ सकती है तो कुछ आश्चर्य नहीं कि सरमद की गर्दन से भी उठ आई हो। मगर ऐसा ही जब जिक्र तुम्हारे भीतर समा जाए तभी जानना कि राम-रसायन को घोल कर पीया; कि अब उसे पचाया। और जितना दोहराओगे, जितना भाव में गहराओगे उतनी ही भीतर और भीतर... क्योंकि तुम्हें अपनी गहराइयों का पता नहीं है कि तुम कितने गहरे हो! तुम उतने ही गहरे हो जितना यह आकाश गहरा है।
मिकराज खुद अपने को कतर जाती है
जम जाती है लौ, आग ठिठर जाती है
जितना भी उभारती है जिस चीज को अक्ल
उतना ही वो गार में उतर जाती है
उभारो! अपनी प्रतिभा में किसी भी बात को उभारो और तुम पाओगे वह तुम्हारे भीतर और भीतर, और तुम्हारी गहराइयों में उतर गई है। और तुम्हारे भीतर ऐसी गहराइयां हैं जहां जो नहीं होना चाहिए, होता है। कैंची खुद को नहीं काट सकती--मिकराज खुद अपने को कतर जाती है। लेकिन तुम्हारे भीतर ऐसी गहराइयां हैं जहां कैंची खुद कैंची को काट देती है। जम जाती है लौ। अब आग की लौ नहीं जम सकती। क्योंकि आग की लौ आग है, जम कैसे सकती है? कोई बर्प तो नहीं। जम जाती है लौ, आग ठिठर जाती है। तुम्हारे भीतर ऐसी गहराइयां हैं, ऐसे रहस्यों के लोक हैं!

जितना भी उभारती है जिस चीज को अक्ल
उतना ही वो गार में उतर जाती है
तुम्हें अपनी ही गहराइयों का कोई पता नहीं है। तुम अपने ही घर के द्वार पर बैठे हो, भीतर ही नहीं गए। तुम अपने महल में ही प्रविष्ट नहीं हुए। तुम महल के बाहर ही घूम रहे हो और बड़े प्रसन्न हो। तुम्हें अपने ही खजानों से कोई नाता-रिश्ता नहीं बना है और तुम दूसरों के खजानों पर आंखें ललचा रहे हो। काश, तुम्हें अपना खजाना मिल जाए तो तुम्हारी ईर्ष्या, तुम्हारी जलन, तुम्हारा लोभ तत्क्षण गिर जाए। क्योंकि उससे ज्यादा पाने को न कहीं कुछ है, न कभी कुछ था, न कभी कुछ होगा। तुम परम धन हो। तुम परम पद हो!
विपति-सनेही मीत सो, नीति-सनेही राउ
दूलन नाम-सनेह दृढ़, सोई भक्त कहाउ
कहते हैं, विपत्ति में जो साथ दे वह मित्र। सद्चरित्र, नीति में जो साथ दे वह राजा। दूलन नाम-सनेह दृढ़, सोई भत्त कहाउ। और जो अपने हृदय में स्नेह को ऐसा दृढ़ कर ले, ऐसा दृढ़ कि जहां--
मिकराज खुद अपने को कतर जाती है
जम जाती है लौ, आग ठिठर जाती है
सोई भक्त कहाउ... वही भक्त कहलाता है।
विद्यार्थी, शिष्य और भक्त। भक्त पराकाष्ठा है। वहां बस, स्नेह ही स्नेह रह जाता है, और सब विलीन हो जाता है। प्रीति ही प्रीति रह जाती है।
प्रीति की उस परम सघनता का नाम भक्ति है।
अपने तो फिर अपने हैं गैरों का चलन बदला।
अंदा.जे न.जर बदला, उनवाने-सुखन बदला।
दीवाने तो दीवाने खोए गए फरफाने,
यूं फस्ले-बहार आई यूं रंगे-चमन बदला।
फिर दौर में सागर है फिर मौज में सहबा है,
तकदीरे-चमन बदली आईने-चमन बदला।
जो कतरा है मोती है जो जर्रा है नाफा है,
मएयारे-नजर बदला हर नक्शे-कुहन बदला।
तुम्हारे भीतर प्रीति सघन हो तो सारी दुनिया दूसरी हो जाती है।
अपने तो फिर अपने हैं, गैरों का चलन बदला।
अंदाजे नजर बदला, उनवाने-सुखन बदला।
दीवाने तो दीवाने खोए गए फरफाने,
दीवाने तो खो ही जाते हैं जब प्रीति सघन होती है। बड़े-बड़े बुद्धिमान!
वे भी दीवाने हो जाते हैं। प्रेम की अलमस्ती ऐसी है।
दीवाने तो दीवाने खोए गए फरफाने,
यूं फस्ले-बहार आई यूं रंगे-चमन बदला।
जब बहार आती है, फस्ले-बहार आती है और जब चमन का रंग बदलता है तो फूल तो फूल, कांटे भी खिल जाते हैं। फूल तो फूल, पत्थर भी खिल जाते हैं।
दूलन नाम-सनेह दृढ़, सोइ भक्त कहाउ
इस चमत्कार को घटने दो अपने में। बनो भक्त। तो ही तुम जान सकोगे कि जीवन का रहस्य क्या है; तो ही तुम जान सकोगे कि परमात्मा ने कितना दिया है और फिर भी तुम नंगे के नंगे! फिर भी तुम भिखमंगे के भिखमंगे! और परमात्मा ने इतना दिया है कि तुम सम्राट हो।
राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोइ
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीति जो होइ
रटते रहो! रटने से ख्याल रखना, शब्दों का ही मतलब नहीं है, भाव में गहराते रहो, गहराते रहो। राम नाम दुइ अच्छरै... यह छोटा सा नाम राम का रटते रहो। रटै निरंतर कोइ। दूलन दीपक बरि उठै... इसको रटते-रटते ही भीतर का दीया जल उठता है।
तुमने इस तरह की कहानियां तो सुनी हैं न कि शास्त्रीय संगीत में पुराने दिनों में दीपक राग होता था! एक विशिष्ट राग के बजाने से बुझे हुए दीये में ज्योति जल जाती थी। आज तो बात कल्पना जैसी लगती है, कहानी जैसी

लगती है, पुराण जैसी लगती है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि यह संभव है क्योंकि ध्वनि विद्यतु का ही एक रूप है। और ध्वनि की एक खास तरह की चोट आग पैदा कर सकती है।
इसलिए जब फौजी टुकड़ी कभी किसी पुल पर से गुजरती है तो उनको कह दिया जाता है वे लयबद्धता से न चलें जैसे उनकी चलने की आदत होती है--लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट उसको तोड़ दें। क्योंकि बहुत बार ऐसा हुआ है कि सब तरफ से मजबूत पुल टुकड़ी के लेफ्ट-राइट करते हुए गुजरने से टूट गया है। और धीरे-धीरे यह समझ में आया कि वह एक खास लय की जो चोट है वह पुल को तोड़ देती है। उस लय से पुल पर से गुजरना नहीं होता। इसलिए दुनिया के सारे देशों में, जब भी कोई सेना पुल पर से गुजरती है तो उसको कह दिया जाता है कि लयबद्धता से न चले, लय को तोड़ दे। लय का आघात, ध्वनि का आद्यात अग्नि को पैदा कर सकता है।
इस बात की संभावना है कि दीपक राग जैसी कोई चीज रही हो। मगर रही हो न रही हो, मुझे उससे प्रयोजन नहीं। शास्त्रीय संगीत से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, पर भीतर के संबंध में तो वह बात बिल्कुल सच है कि एक ऐसा है जो भीतर के दीये को जला देता है। शायद भीतर के दीये को जला देने की बात ही धीरे-धीरे बाहर शास्त्रीय संगीत की कहानी बन गई हो। वह है राम की रटन; वह है प्रभु-नाम। कोई भी नाम! कुछ यह मत सोचना कि राम-राम ही कहोगे तो। स्मरण की बात है, अल्लाह कहोगे तो भी चलेगा। या कुछ और जो तुम्हारी मर्जी हो। महाकवि अंग्रेजी का हुआ, टेनिसन। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह बात सूझ गई, कब सूझी, क्यों सूझी, कुछ मुझे पता नहीं है। कि जब मैं अकेला होता तो मैं बैठ कर, मस्त होकर टेनिसन-टेनिसन... अपना ही नाम दोहराने लगता। और उसमें मुझे इतना मजा आता, और ऐसी मस्ती छा जाती जैसे नशा कर लिया हो। डोलने लगता। तो जब मुझे मौका मिलता अकेले में तो बस मैं टेनिसन-टेनिसन-टेनिसन... । और उसने लिखा है कि धीरे- धीरे जिसको ध्यानियों ने समाधि कहा है वह मुझे लगने लगी अपने ही नाम दोहराने से! मैं तो बहुत हैरान हुआ। क्योंकि राम का नाम लो, ईश्वर का नाम लो समझ में आता है; अपना ही नाम? लेकिन नाम सभी उसके हैं।
टेनिसन की बात तुम्हारे पर भी उतनी ही लागू हो सकती है। अपना ही नाम दोहराओगे तो भी चल जाएगा। असली सवाल यही है, किसी एक भाव-दशा में समग्रता से डूब जाना, इतनी समग्रता से डूब जाना कि सारा जगत भूल जाए। इस तरह एकाग्रता हो जाए भीतर कि एक ही चोट, एक ही आघात पड़ने लगे। तो उस एक ही चोट में भीतर का बुझा दीया जल सकता है।
राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोई
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीति जो होइ
मन में भाव हो तो सब हो सकता है।
करती है गुहर को अश्कबारी पैदा
तमकीन को मौजे-बेकरारी पैदा
सौ बार चमन में जब तड़पती है नसीम
होती है कली पर एक धारी पैदा
करती है गुहर को अश्कबारी पैदा
आंसुओं की वर्षा हो तो मोती पैदा होते हैं।

तमकीन को मौजे-बेकरारी पैदा
सौ बार चमन में जब तड़पती है नसीम
और जब हवा सौ बार गुजरती है चमन से--होती है कली पर एक धारी पैदा। कली जैसी कोमल चीज पर सौ बार हवा को गुजरना पड़ता है, तब एक छोटी-सी धारी पैदा होती है। अनंत-अनंत बार जब तुम स्मरण करोगे परमात्मा को, तब तुम्हारे भीतर का दीया जलेगा। जल सकता है, जलाना है; बिना जलाए नहीं जाना है। जो बिना जलाए गया वह व्यर्थ ही आया और व्यर्थ ही गया। उसने जीवन का सदुपयोग न किया। एक ही चीज पा लो--

फिक्र ही ठहरी तो दिल को फिक्रे-खूबां क्यों न हो
खाक होना है तो खाके-कू-ए-जाना क्यों न हो

जिंदगी में फिकर तो है ही। हजार चिंताएं लगी हैं। फिक्र ही ठहरी तो दिल को फिक्रे-खूबां क्यों न हो। तो फिर कोई कीमत की बात की चिंता करो। चिंता तो है ही, फिकर तो लगी ही है तो फिर कुछ ऊंची फिकर हो ले, असली फिकर हो ले। जिक्र तो भीतर कुछ न कुछ होता ही रहता है तो फिर परमात्मा का ही जिक्र हो ले।

फिक्र ही ठहरी तो दिल को फिक्रे-खूबां क्यों न हो
खाक होना है तो खाके-कू-ए-जाना क्यों न हो
जब मिट्टी ही हो जाना है तो उस प्यारे की गली की ही मिट्टी क्यों न हो जाएं।

दहर में ऐ ख्वाखा जब ठहरी असीरी नागुजीर
दिल असीरे-हल्का-ए-गैसू-ए-पैचां क्यों हो

जीस्त है जब मुस्तकिल आवारागर्दी ही का नाम
अक्ल वालो! फिर तवाफे-कू-ए-जानां क्यों न हो
अगर जिंदगी एक आवारागर्दी ही है, एक व्यर्थ की यात्रा ही है तो चलो यही सही, फिर उस प्यारे की गली में ही क्यों न आवारा गर्दी की जाए!

जीस्त है जब मुस्तकिल आवारगर्दी ही का नाम
अक्ल वालो! फिर तवाफे-कू-ए-जानां क्यों न हो

इक-न-एक हंगामें पर मौकूफ्र है जब जिंदगी
मैकदे में रिंद रक्सानो-गजलख्वां क्यों न हो
और जब जिंदगी में सभी कुछ खोया जा रहा है तो फिर क्यों न पीकर मस्त होकर नाच लें!

इक-न-इक हंगामे पर मौकूफ्र है जब जिंदगी
मैकदे में रिंद रक्सानो-गजलख्वां क्यों न हो
फिर आओ पियक्कड़ो! पीओ और नाचो। जब जिंदगी हाथ से चली जाएगी तो क्यों न इसे नाच बना लें! जब यह देह चली ही जाएगी तो इस देह को उस प्यारे की गली में ही क्यों न गिर जाने दें! और जब चिंताएं घेरे ही हैं तो सारी चिंताओं का निचोड़ कर एक उसकी ही चिंता क्यों न कर लें!

जब फरेबों ही में रहना है तो ऐ अहले-खिरद
लज्जते-पैमाने-यारे-सुस्तपैमां क्यों न हो

यां जब आवेजिश ही ठहरी है जो जर्रे छोड़ कर
आदमी खुरशीद से दस्ते-गिरेबां क्यों न हो
यां जब आवेजिश ही ठहरी है तो जर्रे छोड़ कर... जब जीवन संघर्ष ही है तो क्या छोटी-छोटी चीजों से टकराना! क्या अणु-परमाणुओं से टकराना!

यां जब आवेजिश ही ठहरी है तो जर्रे छोड़ कर
आदमी खुरशीद से दस्ते-गिरेबां क्यों न हो
जब टकराना ही है तो चांद-तारों से टकरा जाएं, फिर सूरज से टकरा जाएं।

फिक्र ही ठहरी तो दिल को फिक्रे-खूबां क्यों न हो
खाक होना है तो खाके-कू-ए-जानां क्यों न हो
ऐसा तुम्हारे जीवन में संकल्प उठ आए तो सौभाग्य की घड़ी आ गई, सुदिन आ गया। जल सकता है दीपक। संकल्प की सघनता!
राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोइ
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीति जो होइ

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया आठवां प्रवचन

द्विज मनसिज, पंख खोल

पहला प्रश्नः ओशो! मनुष्य इस संसार में रह कर परमात्मा को कभी नहीं पा सकता है, यह मेरा कथन है। क्या यह सच है?

राघवदास! सत्य होता है स्वतः प्रमाण। सत्य के लिए किसी और प्रमाण की कोई जरूरत नहीं होती है। सत्य गवाही नहीं जुटाता है, सत्य अपना साक्षी स्वयं है। जब सत्य को जानोगे तो फिर किसी से पूछने न जाना पड़ेगा कि यह सत्य है या नहीं? सिर में दर्द होता है, किसी से पूछते हो कि मेरे सिर में दर्द है या नहीं? हृदय में प्रेम जगता है, किसी से पूछते हो मेरे हृदय में प्रेम जगा है या नहीं?
यदि तुम्हें ऐसे सत्य का अनुभव हो गया है कि संसार में रह कर परमात्मा
को कभी पाया नहीं जा सकता है, तो फिर मुझसे क्यों पूछते हो? तुम्हें स्वयं ही संदेह है, इससे ही प्रश्न उठा है। यह तुम्हारा कथन तुम्हारी कोई अनुभूति नहीं है। यह तुम्हारा कथन भी नहीं है, यह तुमने किसी और से सुना है। यह पर-कथ्य है, यह आत्म-कथ्य नहीं है। कह रहे हो कि यह मेरा कथन है। कहना तो वही चाहिए जो जाना हो।
यह तुमने जाना नहीं है, यह तुमने सुना है। सुनी बातों का कोई मूल्य नहीं है, मूल्य तो जानी गई बातों का है। जाना तो है ही नहीं, सोचा भी नहीं है, विचारा भी नहीं है। प्रचलित बात को अंधे भाव से अंगीकार कर लिया है। विचारा भी नहीं है इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि संसार के अतिरिक्त और स्थान ही कहां है? परमात्मा मिलेगा तो संसार में मिलेगा! जहां भी मिलेगा वहीं संसार है। जिसको भी मिला है, संसार में ही मिला है। क्या तुम सोचते हो, बाजार उसका नहीं है, सिर्फ वन का एकांत उसका है? क्या तुम सोचते हो कि संसार सिर्फ बाजार ही है और वन का एकांत संसार का दूसरा पहलू नहीं है? कीचड़ भी वही है, कमल भी वही है। भीड़ भी वही है, एकांत भी वही है। सार भी वही है, असार भी वही है; क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जहां भी उसे पाओगे, जब भी उसे पाओगे, यहीं पाओगे, अभी पाओगे। यही समय होगा, यही आकाश होगा। यही सूरज किरणें बरसाएगा, यही हवाएं तुम्हारे पास से गीत गाती गुजरेंगी।
लेकिन सुन लिया है तुमने लोगों को दोहराते; वे भी किसी और को दोहरा रहे हैं और उन्होंने भी किसी और को दोहराया था। अफवाहों से अफवाहें चलती रहती हैंः संसार में परमात्मा नहीं मिलेगा।
इसमें, इस मान्यता में एक बचाव भी है कि क्या करूं अगर परमात्मा नहीं मिलता है; क्योंकि मैं अभी संसारी हूं। फिर बच्चे हैं, पत्नी है, घर-द्वार है; क्या करूं नहीं मिलता है तो मेरी मजबूरी है। कसूर नहीं है, अपराध नहीं है। कहां छोड़ जाऊं इन छोटे-छोटे बच्चों को। इस कच्ची गृहस्थी को कहां छोड़ कर भाग जाऊं? जाऊंगा तो वह भी गुनाह हो जाएगा। जरा बच्चे बड़े हो जाएं, पढ़-लिख जाएं, जरा गृहस्थी सम्हल जाए; फिर जाऊंगा वनों में, कंदराओं में। फिर खोजूंगा परमात्मा को, फिर संन्यास निश्चित है।
कल पर टालने की तरकीब है इसलिए जल्दी से मान ली यह बात। इस पर सोचा भी नहीं। इसमें चालबाजी है। इसमें कपट है। परमात्मा संसार में नहीं मिलता है इसलिए मुझे नहीं मिल रहा है, मेरा कोई कसूर नहीं है। जरा ख्याल करना, हम अपने कसूर को दूसरों पर टाल देने में बहुत कुशल हो गए हैं। नाच नहीं आता है तो कहते हैं, आंगन टेढ़ा है। नाचें तो नाचें कैसे, आंगन टेढ़ा है। और जिनको नाच आता है उन्हें आंगन के टेढ़े होने से फर्क पड़ता है? आंगन टेढ़ा हो या न हो। मगर कुछ लोग हैं जो आंगन के टेढ़े को बहाना बना लेते हैं। उस बहाने ही बचे रहते हैं।
कभी-कभी अच्छे-अच्छे सिद्धांतों के नाम पर तुम बहुत ओछे बहाने खोज लेते हो। संसार में परमात्मा नहीं मिलता, मैं क्या करूं? अभी संसार में हूं, एक दिन छोडूंगा जरूर और पा लूंगा। न वह दिन आएगा, न पाने की झंझट

उठेगी। कितने ही लोग इसी तरह सोच-सोच कर समाप्त हो गए हैं। कितने ही बार तुम भी जन्मे हो और मर गए हो। और यही तुम्हारी धारणा रही है। यह कोई तुम्हारी नई धारणा नहीं है। इस जाल में तुम बहुत दिन से फंसे हो, जन्मों- जन्मों से फंसे हो!
इसलिए मैं जब कहता हूं कि परमात्मा संसार में ही मिलेगा, तो तुम्हारी छाती कंपती है। तुम्हें डर लगता है, घबड़ाहट होती है। क्योंकि अब टालने की कोई सुविधा न रही। अब टालें तो टालें कहां? अब कल पर कैसे सरकाएं! मैं कहता हूंः अभी और यहां; ठीक बाजार में, दुकान पर, काम-धाम में, घर-गृहस्थी में परमात्मा मिल सकता है। यहीं मिल सकता है, और कहीं मिलने का कोई उपाय नहीं है!
तो फिर सवाल यह उठता है कि अगर यहीं मिल सकता है तो मुझे क्यों नहीं मिल रहा है? तो जरूर कसूर कहीं मेरा होगा, भूल-चूक कहीं मेरी होगी। बड़ी कृपा होगी तुम्हारी तुम्हारे ही ऊपर, अगर अपनी भूल-चूक को टालो मत, किसी और पर फेंको मत। इस दुनिया में सबसे बड़ा अभिशाप यही है कि हम अपने दायित्व को दूसरों पर टाल देते हैं--कभी भाग्य पर, कभी भगवान पर, कभी संसार पर, कभी विधि-विधान पर, कभी समाज की व्यवस्था पर, अर्थ की व्यवस्था पर--टालते ही रहते हैं। बस, एक बात हम कभी स्वीकार नहीं करते कि उत्तरदायित्व मेरा है; कि मैं जिम्मेवार हूं। और जिस दिन तुम्हारे भीतर यह भाव सघन होता है कि उत्तरदायित्व मेरा है, चूकता हूं तो मैं चूकता हूं, पाऊंगा तो मैं पाऊंगा, उस क्षण ही तुम्हारे जीवन में धर्म की क्रांति शुरू हो जाती है, धर्म का दीया जलना शुरू हो जाता है।
मैं उत्तरदायी हूं, यह धर्म के दीये की पहली किरण है। और इस उत्तरदायित्व को समझने के लिए जितनी सुविधा तथाकथित संसार में है उतनी सुविधा हिमालय की गुफाओं में न मिलेगी। परमात्मा को तुम समझते हो तुमसे ज्यादा नासमझ है? उसने तुम्हें संसार दिया। तुम्हारे महात्मा समझा रहे हैं, संसार छोड़ो। परमात्मा संसार दे रहा है, महात्मा समझा रहे हैं कि संसार छोड़ो। तुम सोचते हो, तुम्हारे महात्मा परमात्मा से ज्यादा समझदार हैं? इतनी अकल परमात्मा को नहीं है कि संसार देना बंद कर दे? क्यों नाहक महात्माओं को परेशान कर रहा है? क्यों नाहक महात्माओं को झंझटों में डाल रहा है? जरूर कोई बात है। सोना आग से गुजर कर ही निखरता है और संन्यास भी संसार से गुजर कर ही निखरता है। संसार कसौटी है और परीक्षा है, चुनौती है। और इस चुनौती को जिसने इनकार किया वह कभी विकसित नहीं होता; उसके भीतर कुछ मुर्दा रह जाता है।
स्फटिक निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ
हे हिम-खंड, शीतल औ" समुज्ज्वल
तुम झलकते इस तरह हो
चांदनी जैसे जमी है
या गला चांदी तुम्हारे
रूप में ढाली गई है।

स्फटिक निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ
हे हिम-खंड शीतल औ समुज्ज्वल जब तलक गल पिघल
नीचे को ढलक कर
तुम न मिट्टी से मिलोगे
तब तलक तुम
तृणहरित बन
व्यक्त धरती का नहीं रोमांच हरगिज कर सकोगे,
औ" न उसके हास बन
रंगीन कलियों और फूलों में खिलोगे

साथ जाओ।
वह जो हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर जमी हुई बर्प है, जो कभी नहीं पिघली है कितनी ही स्वच्छ हो, मुर्दा है, जीवंत नहीं है। गुलाब तो वहां क्या खिलेंगे, घास भी नहीं उग सकती है। वहां कुछ भी नहीं उगता है। कमल तो वहां कैसे खिलेंगे? फूल तो वहां कैसे महमहाएंगे? न होगा बेला, न होगी चंपा, न जुही, न चमेली। वहां कोई गंध न होगी। घास ही नहीं उगता तो फूल कैसे उगेंगे? वहां कुछ उगता ही नहीं, एक मुर्दा सन्नाटा है। यद्यपि सदा-सदा की जमी हुई बर्प बड़ी स्वच्छ मालूम होती है, स्फटिक दर्पण जैसी मालूम होती है। मगर परमात्मा ने मिट्टी चुनी है क्योंकि मिट्टी में जीवन उगता है।
उतर आओ
और मिट्टी में सनो,
जिंदा बनो,
यह कोढ़ छोड़ो,
रंग लाओ,
खिलखिलाओ,
महमहाओ,
तोड़ते हैं प्रेयसी-प्रियतम तुम्हें, सौभाग्य समझो,
हाथ आओ,
साथ जाओ।
हे हिम-खंड शीतल औ" समुज्ज्वल
जब तकल गल पिघल
नीचे को ढलक कर
तुम न मिट्टी से मिलोगे
तब तलक तुम
तृणहरित बन
व्यक्त धरती का नहीं रोमांच हरगिज कर सकोगे,
औ" न उसके हास बन
रंगीन कलियों और फूलों में खिलोगे
औ" न उसकी वेदना के
अश्रु बन कर
प्रात पलकों में
पखुरियों के पलोगे।
अब तक की जो संन्यास की धारणा थी वह मुर्दा धारणा है, भगोड़ेपन की धारणा है, पलायनवादी धारणा है। उसका आधार भय है। भाग जाओ वहां-वहां से जहां-जहां भय है कि उलझ सकते हो, कि कीचड़ में गिर सकते हो। भाग जाओ वहां- वहां से। लेकिन भाग कर तुम कायर ही बनोगे। पुराना संन्यास मौलिक रूप से कायर था। इसलिए पृथ्वी को रूपांतरित नहीं कर पाया। इसलिए पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाई; इसलिए पृथ्वी वैसी की वैसी रह गई।
मैं तुम्हें संन्यास की सम्यक, धारणा दे रहा हूं। जहां हो, जैसे हो, भागो मत। परमात्मा ने जो दिया है, उसे अंगीकार करो। सद्भाग्य मान कर अंगीकार करो। सौभाग्य मानकर अंगीकार करो। और परीक्षा दो। और प्रतिक्षण परीक्षा दो। एक भी परीक्षा से चूकना मत क्योंकि हर परीक्षा तुम्हारे भीतर कुछ सघन करेगी, मजबूत करेगी, दृढ़ करेगी। हर परीक्षा तुम्हारे भीतर आत्मा को जन्म देगी। हर परीक्षा तुम्हारे भीतर आत्मा बनेगी। एक भी चुनौती से मुकरना मत, चुनौती का सामना करना। एक भी तूफान को पीठ मत दिखाना। पीठ दिखाने की भाषा ही छोड़ दो क्योंकि टकराओगे तो जागोगे। तूफानों से जूझोगे तो तुम्हारे भीतर जो सोई हुई ऊर्जाएं हैं, शक्तियां पड़ी हैं, वे जाग्रत होंगी। उनके जागने का और कोई उपाय नहीं है। तो तुम्हारी प्रतिभा में चमक और धार आएगी।
लेकिन राघवदास, तुम कहते होः "मनुष्य इस संसार-सागर में रह कर परमात्मा को कभी नहीं पा सकता है।"

यह तुमने सिद्धांत मान ही लिया। इतनी दृढ़ता से मान लिया कि कहते हो कि "यह मेरा कथन है। क्या यह सच है?"
लेकिन यह कथन नपुंसक है; नहीं तो इससे प्रश्न उठता नहीं। अगर तुमने जान ही लिया तो जान लिया, अब पूछना क्या है? जाना नहीं है, माना है। और माना भी बिना विचारे है। बिना मनन के माना है, बिना चिंतन के माना है। इसी तरह तो हम मान कर बैठे हैं। कुछ भी मान लिया है। जो संस्कार दे दिए गए हैं उन्हीं को छाती से लगाए बैठे हैं। हमारी हालत उस बंदरिया जैसी है जिसका बच्चा मर गया है और मरे बच्चे को छाती से दबाए, वृक्षों पर छलांग लगाती फिर रही है। जिसको तुम संस्कार कहते हो वे मुर्दा हैं, उधार हैं, बासे हैं। सदियों-सदियों से सड़ गए हैं, और उनको तुम ढो रहे हो। और उनको तुम ऐसे ढोते हो जैसे वे ताजे हैं, जिंदा हैं। जैसे उनमें श्वास चलती है।
मत कहो, यह मेरा कथन है। इतना ही उचित होता कि ऐसा मैंने सुना है, कि ऐसा लोग कहते हैं, क्या यह सच है? तो कम से कम ईमानदारी होती। तुमने दूसरों के वक्तव्यों पर अपना हस्ताक्षर कर दिया? और इस हस्ताक्षर में बड़ी भ्रांति हो जाएगी। क्योंकि इसके पीछे तुम्हारा अहंकार खड़ा हो जाएगा--मेरा कथन है! तो इसके लिए लड़ना होगा। तो इस कथन को सिद्ध करना होगा। अब तुम्हें इसकी चिंता न रह जाएगी कि सत्य क्या है, अब तुम्हें इसकी ही चिंता रहेगी कि मेरा कथन कहीं गलत न हो जाए।
और तुम्हारा कथन गलत है। गलत इसलिए है कि न तुमने जाना है, न तुमने अनुभव किया है। गलत इसलिए है कि जो भी है, सभी संसार है। परमात्मा का प्रकट रूप संसार है। परमात्मा का अभिव्यक्त रूप संसार है। परमात्मा का अप्रकट रूप मोक्ष है और प्रकट रूप संसार है। अब मोक्ष पाना है तो एक बात तो तय है कि तुम संसार में हो; अभी मोक्ष में नहीं हो। जहां भी हो, संसार में हो। जैसे बीज अप्रकट है, अभी फूल छिपा है। फिर फूल प्रकट हुआ, फिर बीज टूटा, और जो उसमें छिपा था वह अभिव्यंजित हुआ। जैसे वीणा में राग सोया है, फिर छेड़े तार और राग जागा।
परमात्मा संसार की अप्रकट दशा है; मोक्ष उसका नाम है। और संसार परमात्मा की प्रकट दशा है। प्रकट से ही चल कर अप्रकट तक पहुंच पाओगे। प्रकट की ही नाव बनाओ ताकि अप्रकट के किनारे तक पहुंच जाओ। नाव को इनकार मत करो। नाव को इनकार किया तो दूसरा किनारा तुम्हारे लिए नहीं है। इसी किनारे अटके रह जाओगे।
इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है कि जो संसार में है वे तो संसार से मुक्त होने लगते हैं, लेकिन जो तथाकथित भगोड़े हैं वे संसार से मुक्त हो पाते क्योंकि अवसर ही नहीं मिलता संसार की व्यर्थता देखने का। रस अटके रह जाते हैं। वासना प्रसुप्त रह जाती है। आशाएं अभी भी सजग रहती हैं--दमित, लेकिन सजग; दबा ली गईं लेकिन मर नहीं गईं। तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों का हृदय अगर खोला जा सके तो तुम पूरे संसार को पाओगे। और अकसर ऐसा हो जाएगा कि जो आदमी संसार को ठीक से जी लिया है उसका हृदय खोलोगे तो संन्यास पाओगे। क्योंकि संसार को जी-जी कर देख लिया कि सब व्यर्थ है। अनुभव से जान लिया कि व्यर्थ है। हजार बार उतर कर देख लिया कि व्यर्थ है।
अनुभव मुक्तिदायी है। और अनुभव कहां होगा? जहां अनुभव होगा वहीं मुक्ति फलित होगी। ज्ञान मुक्ति है। जिस चीज को हम जान लेते हैं उसी से हम मुक्त हो जाते हैं। और जिस बात की असारता जान ली वह हमारे हाथ से छूट जाती है; छोड़नी नहीं पड़ती, छूट जाती है। मैं उस संन्यास को गलत कहता हूं जो करना पड़े; जो हो जाए, बस उसको ही सही और सम्यक कहता हूं।

दूसरा प्रश्नः ओशो! क्या आप सामाजिक क्रांति के विरोधी हैं?

मैं और क्रांति का विरोधी! लेकिन सामाजिक क्रांति जैसी कोई चीज होती
ही नहीं। मैं क्रांति का पक्षपाती हूं, आमूल क्रांति का पक्षपाती हूं। लेकिन सामाजिक क्रांति जैसी कोई चीज होती ही नहीं, सारी क्रांति वैयक्तिक होती है। क्रांति मात्र वैयक्तिक होती है। सामाजिक क्रांति तो धोखा है क्रांति का। जो क्रांति से बचना चाहते हैं वे सामाजिक क्रांति की आड़ में

अपने को बचाए रखते हैं। फिर वही पुराना रोग! कि समाज बदलेगा तब हम बदलेंगे। अभी हम कैसे बदलें? अभी पूरा समाज गलत है तो हम कैसे बदलें? समाज कब बदलेगा? अब तक तो बदला नहीं। और क्रांतियां कितनी हो चुकीं! क्रांतियों पर क्रांतियां होती रहीं और आदमी वैसा का वैसा है। चेतना में .जरा भी रूपांतरण नहीं हुआ है। फिर चाहे वह आदमी रूस का हो और चाहे अमरीका का हो, चाहे भारत का हो और चाहे चीन का हो, .जरा भी भेद नहीं है। वही लोभ, वही काम, वही क्रोध, वही सब कुछ। वही तृष्णा, वही वासना। आदमी वही का वही है। सारी क्रांतियां असफल हो गईं। तुम कब देखोगे यह बात? गौर से देखो, एक
भी क्रांति सफल नहीं हो पाई है। अब यह भ्रम छोड़ दो कि सामाजिक क्रांति हो सकती है कभी। समाज की कोई आत्मा ही नहीं होती तो क्रांति कैसे होगी? आत्मा व्यक्ति की होती है। हां, यह हो सकता है, बहुत व्यक्तियों में क्रांति हो तो उसकी आभा समाज पर भी झलकने लगे। मगर इससे विपरीत नहीं हो सकता। समाज तो स्थूल है और बाहर-बाहर है। व्यक्ति भीतर है और सूक्ष्म है। क्रांति तो अंतस में होती है और बाहर की तरफ फैलती है। दीया भीतर जलता है और रोशनी बाहर की तरफ जलती है। जब बहुत दीये जले हुए लोग होते हैं तब तुम्हें समाज में भी रोशनी दिखाई पड़ेगी, रंग दिखाई पड़ेगा; तब तुम्हें समाज में भी एक नया चैतन्य का आविर्भाव मालूम होगा। मगर वह आता है व्यक्तियों से। सुंदर व्यक्ति हों तो सुंदर समाज हो जाता है। प्रेम करने वाले व्यक्ति हों तो प्रेमपूर्ण समाज हो जाता है।
समाज को कैसे बदलोगे? समाज यानी कौन? समाज तो केवल एक जड़ यंत्र है, एक व्यवस्था मात्र है। मगर बहुत दिन से आदमी यह भरोसा कर रहा है। और जब भी क्रांति होती है कहीं--फिर फ्रांस में हो कि रूस में हो कि चीन में हो, तो बड़ी आशाएं बंधती हैं। और क्रांति की प्रशंसा में लोग गीत गाने लगते हैं, बड़े सपने देखने लगते हैं। सोचते हैं, आ गया रामराज्य का क्षण; कि हो गई समस्या हल; कि अब बस सुख ही सुख होगा।
इन्हीं जर्रो ने संवारा रुखे-गेती का जमाल
इन्हीं जर्रो ने जलाए हैं तमद्दुन के दिए
इन्हीं जर्रो ने तवारीख के फीके आरिज
अपने चेहरों की तबो-ताब से गुलेरज किए

फूलते-फलते रहे शाहो-पयंबर के चमन
और वह बेचारे खिजां-रंगो-जबूं हाल रहे अनगिनत साल गुजरते गए झोंकों की तरह
इनकी मुर्झायी हुई जीस्त पै आई न बहार

अब न लहराएगी जुल्मत रुखे-दौरां पै कभी
अब न इंसानों पै इंसान सितमरां होंगे
रात के साथ गई चांद-सितारों की दमक
अब यही जर्रे हर इक सिम्त फरोजां होंगे
जब भी क्रांति की कोई घटना घटती है तो कवि गीत गाने लगते हैं। इन्हीं जर्रो ने संवारा रूखे-गेती का जमाल--विश्व के सौंदर्य को इन्हीं गरीबों ने, दीन-हीनों ने संभाला था। इन्हीं जर्रो ने जलाए हैं तमद्दुन के दिए-- इन्हीं गरीबों ने सयता, संस्कृति के दीये जलाए। इन्हीं जर्रो ने तवारीख के फीके आरिज--इन्हीं ने इतिहास के पृष्ठ रंगे। अपने चेहरों की तबो-ताब से गुलेर.ज किए--इन्होंने ही इतिहास के पृष्ठों को अपने चेहरों के रंग, चमक-दमक से रंग दिया।
फूलते-फलते रहे शाहो पयंबर के चमन...
इन्हीं के द्वारा बादशाहों के बगीचों में फूल रहे, रंग रहे। और यह बेचारे खिजांरंगो-जबूं हाल रहे... मगर इनकी हालत पतझड़ की रही। बादशाहों के बगीचों में बसंत आते रहे इन्हीं के कारण। इन्हीं के खून का रंग था जो उनके फूलों में खिलता रहा, उनके गुलाबों में झरता रहा; मगर इनकी जिंदगी में पतझड़ ही रहा।
और यह बेचारे खिजां-रंगों-जबूं हाल रहे

अनगिनत साल गुजरते गए झोंकों की तरह
इनकी मुर्झायी हुई जीस्त पै आई न बहार
वर्ष आए और गए, सदियां बीतीं लेकिन इनकी सूखी हुई जिंदगी पर कभी वसंत
की अनुकंपा न हुई। मगर अब, क्रांति घट गई रूस में तो अब--अब न लहराएगी जुल्मत रुखे-दौरां पै कभी... अब इनके जीवन में कभी अंधियारा न आएगा।
अब न लहराएगी जुल्मत रुखे-दौरां पै कभी
अब न इंसानों पै इंसान सितमरां होंगे
और अब आदमी पर आदमी अत्याचार नहीं करेगा।

रात के साथ गई चांद-सितारों की दमक
अब यही जर्रे हर इक सिम्त फरोजां होंगे
अब सब ओर, हर तरफ प्रकाश ही प्रकाश है। अब जर्रा-जर्रा सूरज हो गया। कवि गीत लिख देते हैं, मगर घटनाएं तो कभी घटती नहीं। रूस की क्रांति के बाद जितना अत्याचार आदमियों पर हुआ है इतना इसके पहले कभी हुआ ही नहीं था। जोसेफ स्टैलिन ने जितने आदमी मारे उतने सारे जारों ने मिल कर कभी नहीं मारे थे।
क्रांति हो गई। क्रांति की आशाएं कब की बुझ चुकी हैं मगर कुछ नासमझ अभी भी गीत गाए चले जाते हैं। रूस में जितनी बड़ी गुलामी है उतनी दुनिया में कहीं और नहीं। क्योंकि सबसे बड़ी क्रांति वहां घटी इसलिए सबसे बड़ी गुलामी भी वहीं घटी। जरूर लोगों को रोटी मिल गई है और छप्पर मिल गया है लेकिन बड़ी कीमत पर। आत्मा मार डाली गई है। कोई विचार की स्वतंत्रता शेष नहीं रह गई है।
कवियों से जरा सावधान रहना! क्योंकि ये जल्दी ही गीत गाने लगते हैं।
और ये देखते ही नहीं कि असलियत में क्या घटता है।
मुर्गे-बिस्मिल के मानिंद शब तिलमिलाई
उफक-ता-उफक
सुब्हे-महशर की पहली किरन जगमगाई
तो तारीक आंखों से बोसीदा पर्दे हटाए गए
दीये जलाए गए
तबक-दर-तबक
आसमानों के दर
यूं खुले हफत अफलाक, आईना सा हो गए शर्क-ता-गर्ब सब कैदखानों के दर
आज वा हो गए
कस्त्रे-जम्हूर की तरहे-नौ के लिए आज नक्से-कुहन सब मिटाए गए
सीना-ए-वक्त से सारे खूनीं कफन
आज के दिन सलामत उठाए गए
आज पा-ए-गुलामां में जजीरे-पा
ऐसे छनकी कि बांगे-दिरा बन गई
दस्ते-मजलूम में हथकड़ी की कड़ी
ऐसे चमकी कि तेगे-कजा बन गई
मुगें-बिस्मिल के मानिंद शब तिलमिलाई--घायल पक्षी की तरह रात तिलमिला उठी। उफक-ता-उफक... क्षितिज से क्षितिज तक, सुब्हे-महशर की पहली किरन जगमगाई।
यह क्रांति घट गई रूस में, सुबह पैदा हो गई। क्षितिज से क्षितिज तक सुबह की लाली फैल गई।
तो तारीक आंखों से बोसीदा पर्दे हटाए गए
और फटे-पुराने सारे पर्दे हटा दिए गए, दीये जलाए गए। तबक-दर-तबक... हर स्तर पर, आसमानों के दर यूं खुले हफत अफलाक, आईना सा हो गए... सातों आकाश के दरवाजे खुल गए। शर्क-ता-गर्ब सब कैदखानों के दर--और पूरब से पश्चिम तक सारे कारागृहों के द्वार खुल गए।
आज वा हो गए

कस्रे-जम्हूर की तरहे-नौ के लिए आज नक्से-कुहन
लोकतंत्र का महल एक नई व्यवस्था से जगमगा उठा। पुराने निशान सब मिट गए।
कस्रे-जम्हूर की तरहे-नौ के लिए आज नक्से-कुहन
सब मिटाए गए
सीना-ए-वक्त से सारे खूनीं कफन
आज के दिन सलामत उठाए गए
आज पा-ए-गुलामां में जंजीरे-पा
आज गुलामों के पैर की जंजीर... ऐसे छनकी कि बांगे-दिरा बन गई--घंटे की आवाज बन गई।

दस्ते-मजलूम में हथकड़ी की कड़ी
ऐसे चमकी कि तेगे-कजा बन गई
--कि प्रलय की तलवार बन गई
ऐसा कहीं होता नहीं है, सिर्फ कविताओं में होता है। कविताओं से जरा सावधान रहना। कविताएं प्रीतिकर मालूम हो सकती हैं और अक्सर सत्य को छुपाने का आधार बन जाती हैं। आज तक कोई क्रांति सफल नहीं हुई। और क्रांति सफल हो नहीं सकती, जब तक कि बुद्धों की बात समझी न जाए; कबीरों, क्राइस्टों की बात समझी न जाए; जब तक एक बात ठीक से पकड़ न ली जाए--आदमी हारता ही रहेगा, हारता ही गया, हारता ही चला जाएगा। और वह बात है कि बदलाहट करनी हो तो व्यक्ति के अंतस में करनी होगी।
और यह अंतस की बदलाहट विचार की बदलाहट से नहीं होती। यह अंतस की बदलाहट विचार से ध्यान की तरफ छलांग लगाने से होती है। एक ही क्रांति है दुनिया में--विचार से निर्विचार में उतर जाना। सविकल्प चित्त से निर्विकल्प चित्त में चले जाना--एक ही क्रांति है। जिस दिन विचार करने वाला चित्त निर्विचार के शून्य में लीन हो जाता है उस दिन तुम्हारे भीतर द्वार खुलते हैं; सातों आसमानों के द्वार खुलते हैं। उस दिन निश्चित ही तुम्हारी बेड़ियां पैरों के घूंघर बन जाती हैं। उस दिन निश्चित ही कोई कारागृह तुम्हें नहीं रोक सकता। क्योंकि उस दिन तुम्हें पहली बार मुक्ति का स्वाद लगता है, तुम्हें भीतर मोक्ष का अनुभव होता है। उस दिन तुम जानते हो कि देह पर हथकड़ियां भी पड़ जाएं तो भी मैं मुक्त हूं क्योंकि मैं देह नहीं हूं। और ऐसी घटना अनंत-अनंत लोगों को घट जाए इस पृथ्वी पर तो शायद एक रौनक, क्षितिज से क्षितिज तक एक लाली फैले।
अभी तक ऐसा हुआ नहीं है। मैं सामाजिक क्रांति का विरोधी नहीं हूं। सामाजिक क्रांति होती ही नहीं, मैं करूं भी तो क्या करूं! उसका समर्थन भी करूं तो कैसे करूं? क्रांति तो केवल व्यक्ति की होती है। मैं व्यक्ति की क्रांति का पक्षपाती हूं क्योंकि वही एकमात्र क्रांति है। ऊपर-ऊपर की बदलाहटें हो जाती हैं। एक तरह का ढांचा बदल जाता है, दूसरी तरह का ढांचा आ जाता है। कारागृह पर लीपापोती हो जाती है। जहां दीवालें लाल थीं, सफेद रंग दी जाती हैं; जहां सफेद थीं वहां लाल रंग दी जाती हैं।
कारागृहों में रहनेवालों को शायद ऐसा भी लगता हो बड़ी क्रांति हो रही है। दीवालें देखो, लाल थीं, अब सफेद हो गईं। मगर दीवालों के लाल या सफेद होने से क्या होगा? दरवाजों पर रंग-रौनक बदल जाए इससे क्या होगा? पहरेदारों की वर्दी बदल जाए इससे क्या होगा? संगीनें वही हैं, हथकड़ियां वही हैं, भीतरी इंतजाम वही है। कैदी कैदी हैं, कारागृह कारागृह है, पहरेदार पहरेदार हैं। पहले वर्दियां एक ढंग की थीं, अब दूसरे ढंग की हो गईं। वर्दियां बदलती हैं, बस, और कुछ भी नहीं बदलता।
बद से बदतर दिन बीतेगा अब सारा का सारा
सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा

मौसम में कुछ फर्क नहीं है, ऋतुओं में बदलाव नहीं
मधुमासों की आवभगत का कोई भी प्रस्ताव नहीं
वैसा का वैसा है पतझर वही हवा की मक्कारी

तापमान का तर्क वही है, वही घुटन है हत्यारी बड़े मजे से नाच रहा है, फिर वो ही अंधियारा सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा

शोक गीत में बदल रही है धीरे-धीरे लोरी उसने तो फंदा डाला था ये खींचेंगे डोरी
अब जीवन की शर्त यही है जैसे तैसे जी लो आंख मूंद कर सारा गुस्सा एक सांस में पी लो नभ-गंगा निस्तेज पड़ी है रोता है ध्रुवतारा सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा

किरन-किरन आरोप लगाती, दिशा-दिशा है रोती पछतावे का पार नहीं है असफल हुई मनौती लगता है परिवेश समूचा खुद को हार गया है लगता है गर्भस्थ स्वप्न को लकवा मार गया है पिंड न जाने कब छोड़ेगा ये दुर्भाग्य हमारा सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा
अगर यही है मुक्त हवा तो इससे मुक्ति दिलाओ मुक्ति व्यर्थ बदनाम नहीं हो अपने को समझाओ इससे तो बंधन अच्छा था, कहने लगी हवाएं
जी करता है इस जीने से बेहतर है मर जाएं
पता नहीं कल को क्या होगा मेरा और तुम्हारा सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा

आधा जीवन कटा रेत में शेष कटे कीचड़ में
और पीढ़ियां रहें भटकतीं नारों के बीहड़ में
दुश्चरित्र हो जाएं अगर नैया के खेवनहारे
तो, गंगा हो या हो वैतरणी, प्रभु ही पार उतारे
नया फैसला करना होगा शायद हमें दुबारा
सूरज उनका भी निकला है अंधा औ" आवारा
कितनी बार खबर आई, कितनी बार घोषणा की गई कि सूरज निकलता है, मगर हर बार अंधा सूरज, अंधेरा सूरज, आवारा सूरज! कितनी बार धोखे खा चुके हो; और कितनी बार खाने हैं? शायद धोखा हम खाना ही चाहते हैं। शायद हम झंझट नहीं लेना चाहते अपने को बदलने की। तो हम कहते हैं कि क्रांति होगी, समाज बदलेगा, निजाम बदलेगा, व्यवस्था बदलेगी, फिर हम बदलेंगे।
मेरे पास लोग आकर कहते हैं, हम ध्यान करें तो कैसे करें? दुनिया में इतनी गरीबी है। मैं उनसे पूछता हूं, दुनिया में गरीबी है, सोते हो कि नहीं? कहते, सोते तो जरूर हैं। भोजन करते हो कि नहीं? भोजन भी करते हैं। शादी- विवाह किया है या नहीं? वह भी किया है। बाल-बच्चे हैं या नहीं? वे कहते हैं, आपकी कृपा से हैं; काफी हैं। सिर्फ ध्यान में बाधा पड़ती है--दुनिया में गरीबी है। और जब तुम बीमार होते हो तो चिकित्सा करते हो या नहीं? डाक्टर के पास जाते हो या नहीं? यह तो नहीं सोचते कि दुनिया में इतनी गरीबी है, क्या चिकित्सा करवाएं!
दुनिया में इतनी गरीबी है इससे सिर्फ ध्यान में बाधा पड़ती है। यह कैसा तर्क! ये कैसी अंधी बातें! मगर नहीं, जो आदमी कर रहा है वह बड़ी होशियारी से कर रहा है। वह सोच रहा है कि बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कह रहा है। दुनिया में इतनी गरीबी है, कैसे ध्यान करें? प्रेम कर सकते हो, संगीत भी सुन सकते हो, बांसुरी भी बजा सकते हो, फिल्म भी देखते हो। यह सब चलता है, ध्यान नहीं कर सकते हो।
एक मित्र ने कल पत्र लिखा है कि सड़क पर बूढ़े लोगों को भीख मांगते देखता हूं, छोटे बच्चों को भीख मांगते देखता हूं तो ध्यान करना ऐयाशी मालूम होती है। तो क्या इरादे हैं, तुम्हें भी भीख मांगनी है? उससे कुछ हल होगा? और तुम ध्यान न करोगे तो वह जो बूढ़ा भीख मांग रहा है, भीख नहीं

मांगेगा? तुम्हारे ध्यान करने से भीख नहीं मांगेगा? इतने लोग तो ध्यान नहीं कर रहे हैं, उन पर ध्यान नहीं दे रहा वह बूढ़ा और भीख मांगे चला जा रहा है। सिर्फ एक तुम ध्यान न करोगे तो शायद बूढ़ा भीख मांगना बंद कर देगा। और ध्यान न करोगे तो करोगे क्या? किस भांति बूढ़े को तुम सहायता देने वाले हो? सिर्फ ध्यान से बच जाओगे। दुकान करोगे या नहीं? नौकरी करोगे या नहीं? स्नान करोगे या नहीं? स्नान करते वक्त ख्याल नहीं आता कि बूढ़ा रास्ते पर भीख मांग रहा है और मैं स्नान कर रहा हूं यह ऐयाशी है। भोजन करते वक्त ख्याल नहीं आता। रात बिस्तर पर सोते तब ख्याल नहीं आता।
और सब चलता है क्योंकि और सबसे कोई क्रांति घटती नहीं, लेकिन ध्यान-- तुम बचना चाहते हो ध्यान से। ऐसा लगता है, तुम बचना चाहते हो। कोई अच्छा बहाना मिल जाए बचने का तो तुम मौका चूकते नहीं हो। ध्यान ऐयाशी है।
और मैं तुमसे कहता हूं, दुनिया में ध्यान बढ़े तो ही बूढ़े सड़कों पर भीख नहीं मांगेंगे। दुनिया में ध्यान बढ़े तो ही बच्चे सड़कों पर भीख मांगेंगे। क्योंकि दुनिया में ध्यान बढ़े तो शोषण अपने से कम हो। दुनिया में ध्यान बढ़े तो प्रीति बढ़े, भाईचारा बढ़े, करुणा बढ़े। दुनिया में ध्यान बढ़े तो क्रोध कम हो, वैमनस्य कम हो, ईर्ष्या कम हो, राजनीति कम हो, शोषण कम हो। और तुम कहते हो, ध्यान करना ऐयाशी है।
सिर्फ ध्यान ही क्रांति है; इसे खूब समझने की कोशिश करो। ध्यान का मतलब तो समझो। ध्यान का अर्थ होता है, शांत होना। शांत आदमी एक शांत संसार का आधार बनेगा। अशांत आदमी एक अशांत समाज का आधार बनता है। जो अशांत है वह दूसरों को भी अशांत करता है। स्वभावतः बीमार हो तो बीमारी का ही संचार करोगे। बीमार हो तो बीमारी ही फैलाओगे। तुम तो कम से कम स्वस्थ हो जाओ! कम से कम तुमसे तो बीमारी न फैले!
ध्यान का अर्थ होता है, तुम्हारे भीतर वह जो अहंकार की, महत्त्वाकांक्षा की लपटें जल रही हैं, बुझ जाएं। तुम्हारे भीतर अगर महत्वाकांक्षा न हो तो तुम एक दूसरी ही दुनिया का सूत्रपात कर दोगे। और अगर अधिक लोगों के भीतर महत्त्वाकांक्षा न हो तो क्रांति घट गई। क्योंकि यह महत्वाकांक्षा है जो मुश्किल कर रही है। मेरे पास दूसरों से ज्यादा होना चाहिए--यह आधारशिला है, जिसके कारण कोई बूढ़ा भीख मांग रहा है।
और तुम यह मत सोचना कि वह बूढ़ा भी महत्वाकांक्षा से मुक्त है। वह भी दूसरे भिखारियों से उतनी ही प्रतिस्पर्धा कर रहा है, जितनी कि दुकानदार एक दूसरे दुकानदार से कर रहे हैं और राजनेता एक दूसरे राजनेता से कर रहे हैं।
एक आदमी ने बहुत दिन तक एक भिखमंगे को अपने रास्ते पर आते नहीं देखा। बाजार में एक दिन वह भिखमंगा मिल गया तो उस आदमी ने पूछा कि भाई, बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़ते। हमेशा भीख मांगते थे हमारी गली में। उसने कहा कि वह गली मैंने मेरे दामाद को दे दी। उस आदमी को समझ में ही नहीं आया कि गली दामाद को दे दी मतलब? तो उसने कहा कि वह गली मेरी थी। वहां किसकी हिम्मत कि भीख मांग ले! हाथ-पैर तोड़ दूं। वहां का मैं अकेला राजा था। वह इस आदमी को पता ही नहीं था कि यह भिखमंगा यहां का राजा है, इस गली का। यह तो सोचता था कि राजा हम हैं, यह बेचारा भिखमंगा है। उसने कहाः फिर मेरी लड़की की शादी हो गई तो वह गली मैंने दामाद को दहेज में दे दी। अब मेरा दामाद उस गली का राजा है। अब मैंने इस बाजार में कब्जा कर लिया है।
तुम सोचते हो, भिखमंगा भिखमंगा है। और तुम सोचते हो, जब तुम भिखमंगे
को कुछ दे देते हो तो भिखमंगा सोचता है तुम बड़े दयालु हो! भिखमंगा सिर्फ इतना सोचता है, खूब बुद्धू बनाया! कि फिर एक बुद्धू फंसा। तुम पर दया खाता है भिखमंगा जब तुम उसे कुछ देते हो; कि इस आदमी को कुछ अकल नहीं है। भिखमंगे का भी बैंक में बैलेंस है। भिखमंगा भी उसी दौड़ में है।
मैंने सुना है कि एण्ड्रू कारनेगी अमरीका का करोड़पति था; उसके पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैंने यह किताब लिखी है--"समृद्ध होने के सौ उपाय।" एण्ड्रू कारनेगी ने कहाः मुझे इस तरह की किताबों की कोई जरूरत नहीं। मैं समृद्ध हूं ही। और तुम्हारी हालत देख कर मुझे लगता है कि ये उपाय क्या काम में आएंगे! तुम कार में आए कि बस में? उसने कहा, मैं पैदल आया

हूं। सौ उपाय तुमने लिख हैं समृद्ध होने के! रास्ता लो! आगे बढ़ो! एक दिन एण्ड्रू कारनेगी ने देखा कि वही आदमी बस स्टैंड के किनारे खड़ा भीख मांग रहा है। तो उससे न रहा गया। गाड़ी रोक कर पहुंचा और कहा कि मेरे भाई, जहां तक मैं सोचता हूं कि तुम वही आदमी हो जिसने समृद्ध होने के सौ नुस्खे, सौ उपाय किताब लिखी है। उसने कहाः हां, मैं वही आदमी हूं। उसने कहा, फिर यह क्या कर रहे हो? उसने कहाः यह सौवां नुस्खा है।
इस समाज में जहां इतनी महत्वाकांक्षा है, जहां भिखमंगे भी महत्वाकांक्षी हैं, सम्राटों की तो क्या कहो! और जहां सम्राट भी भिखमंगे हैं, भिखमंगों की तो क्या कहो! जहां सभी मांग रहे हैं और सभी दौड़ रहे हैं, तुम अगर न दौड़े थोड़ी देर, इतना भी कुछ कम न होगा, बड़ी कृपा होगी। भीड़-भाड़ दौड़ने वालों की थोड़ी कम होगी। कम से कम एक आदमी तो महत्वाकांक्षा के बाहर हुआ!
और अगर ध्यान का तुम्हें रस लग जाए, भीतर की दौड़ लग जाए तो ख्याल रखना, भीतर की दौड़ लग जाती है, भीतर का रस लग जाता है, तो बाहर की दौड़ अपने आप क्षीण होने लगती है। छोड़नी नहीं पड़ती, छूटने लगती है। भीतर का धन मिलने लगे तो किसको फिकर है बाहर के ठीकरों की? और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम बाहर का धन मत कमाना। लेकिन मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि भीतर का धन कमाने वाले को बाहर के धन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। उपयोगिता रह जाती है, मूल्य नहीं रह जाता, विक्षिप्तता नहीं रह जाती। एक परम तृप्ति होती है; उसी तृप्ति की आभा जितनी अधिक लोगों में फैल जाए उतनी ही क्रांति की संभावना है।
बुद्धत्व को फैलाओ। ध्यान को फैलाओ। समाधि को फैलाओ। और ध्यान रखना, तुम लोगों को वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। अगर तुम्हारे पास दुख है तो दुख दोगे। अगर तुम्हारे पास आनंद है तो आनंद दोगे। और तुम कहते हो, ध्यान करना ऐयाशी है! चलो ऐयाशी सही, थोड़ी ऐयाशी करो। और-और तरह की ऐयाशियां की हैं, यह ऐयाशी भी करो। यह भीतर का वैभव भी, यह भीतर का ऐश्वर्य भी, यह भीतर का भोग भी थोड़ा भोगो। और बहुत भोग देखे हैं, सब भोग फीके पड़ जाएंगे। एक बार यह भीतर का भोग तुम्हें पकड़ ले, सब नृत्य बै-रौनक हो जाएंगे, सब गीत फीके हो जाएंगे।

और यह भीतर का आनंद जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर बढ़ेगा, तुम चकित होओगे,
अब तुम्हारे पास कुछ बांटने को है, तुम कुछ दे सकते हो। और यह आनंद जितना तुम्हारे भीतर होगा उतना ही तुम्हारे भीतर जो दूसरों से कुछ छीन लेने की प्रबल आकांक्षा थी, वह क्षीण होती चली जाएगी। जिसके पास है वह क्यों छीने? जिसके पास है वह देता है क्योंकि देने से और बढ़ता है। भीतर का गणित बाहर के गणित से अलग है। बाहर छीनो तो बढ़ता है, भीतर बचाओ तो घटता है, बाहर न बचाओ तो घटता है। बाहर बांटो तो घटता है, भीतर बांटो तो बढ़ता है, बचाओ तो मरता है। एक दफा भीतर की दुनिया में प्रवेश करो, भीतर का नया गणित सीखो।
और इस तरह की चालबाजियां तुम्हारा मन करेगा कि कोई भीख मांग रहा है तो मैं कैसे ध्यान करूं? इसलिए तो और भी जरूरी है कि ध्यान करो। क्योंकि यह दुनिया अगर ध्यान कर लेती तो भीख मांगना कभी का बंद हो जाना चाहिए था। ध्यान के अपूर्व परिणाम होते हैं जो तुम सोच भी नहीं सकते; जिनका ऊपर से तुम्हें अंदाज भी नहीं हो सकता।
जैसे निरंतर यह घटना घटती है। मेरे पास संन्यासी आते हैं--विशेषकर स्त्री संन्यासिनियां। वे कहती हैं कि पहले हमारे मन में मां बनने की बड़ी आकांक्षा थी लेकिन जब से ध्यान में डुबकी लगनी शुरू हुई है, अब ऐसा लगता है कि पहले ध्यान सध जाए तो फिर मां बनना; उसके पहले नहीं। क्योंकि उस बेटे को कुछ हमारे पास देने को भी तो होना चाहिए। अभी बेटा होगा तो हम अपना क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य, जलन यही दे सकेंगे और क्या दे सकेंगे! आनंद होगा, शांति होगी, भीतर का नृत्य होगा तो वह दे सकेंगे। आमतौर से स्त्रियों के मन में मां बनने की प्रबल आकांक्षा होती है लेकिन ध्यान के साथ क्रांति घट जाती है। मां बनने की आकांक्षा क्षीण होने लगती है; या तभी मां बनना है जब बेटे को देने योग्य कोई आध्यात्मिक संपदा पास हो।

मेरी दृष्टि यह है कि अगर दुनिया में ध्यान फैल जाए, जनसंख्या कम हो जाए। तुम यहां मेरे पास इतने संन्यासी देखते हो, कितने बच्चे देखते हो? जो नये युवा संन्यासी हैं वे अपने आप बच्चों से बचने लगते हैं। और ऐसा भी नहीं कि सदा बचेंगे, एक दिन घड़ी आएगी जब अच्छा होगा, शुभ होगा कि दो ध्यान करते हुए व्यक्तियों से एक बच्चे का जन्म हो। उस बच्चे में ध्यान की किरण प्रथम से ही होगी। उस बच्चे में ध्यान का संस्कार और बीज प्रथम से ही होगा। इस दुनिया से गरीबी कम हो जाए, जनसंख्या कम हो।
तुमने देखा यहां? मेरे संन्यासी को तुम देखते हो? तुम पहचान भी न सकोगे। मेरे चौके में जो महिला बर्तन धोने का काम करती है वह पीएच. डी. है। उसको क्या पागलपन सूझा! विश्वविद्यालय में बड़े पद पर थी। यह तो कभी उसने कल्पना भी न की होगी कि जिंदगी में कि बर्तन धोने के काम में लग जाएगी। और इतनी आह्लादित है जितनी कि विश्वविद्यालय में बड़े ओहदे पर नहीं थी। यहां मेरे संन्यासियों में कम से कम दो सौ पीएच. डी. और डी. लिट. हैं। कोई रास्ते साफ करता है, कोई कपड़े धोता है संन्यासियों के। कम से कम पांच सौ पोस्ट ग्रेजुएट हैं और ग्रेजुएट तो हजारों हैं। इनको क्या हुआ? इनमें से कोई बड़े ओहदे पर था अमरीका में, कोई स्वीडन में, कोई स्विटजरलैंड में, कोई इंग्लैंड में। कोई बड़ा वैज्ञानिक था, कोई बड़ा प्रोफेसर था, कोई बड़ा लेखक था, कोई बड़ा संपादक था, कोई बड़ा पत्रकार था। इन सबको क्या हुआ? ध्यान की जैसे ही झलक मिलनी शुरू हुई, महत्वाकांक्षा की दौड़ व्यर्थ हो गई। रस ही न रहा। और तुम कहते हो ध्यान ऐयाशी है?
तुम जरा मेरे आस-पास ध्यान करते लोगों को देखो और तुम्हें यह समझ में
आ जाएगा कि ध्यान एक क्रांति लाता है। और ऐसी क्रांति जो जबरदस्ती ऊपर से थोपी नहीं जाती। अब ये जो दो सौ पीएच. डी. और डी. लिट. लोग हैं, इनमें किसी ने भी कहा नहीं कि तुम छोड़-छाड़ कर और छोटे-मोटे काम में यहां संलग्न हो जाओ। किसी ने इनको कहा नहीं। ये अपनी मौज से चले आए हैं। आज तो तुम इन्हें पहचान भी नहीं सकते। इनको तुमने इनके पद पर देखा होता तब तुम्हें समझ में आता। जर्मन सम्राट के नाती यहां मेरे संन्यासी हैं। तुम उनको देख कर पहचान
भी नहीं सकते कि यह आदमी जर्मन सम्राट का नाती है। यह तुम्हें कल्पना भी नहीं हो सकती, ख्याल में भी नहीं आ सकता। चार-छह दिन पहले मैं दूसरे महायुद्ध का इतिहास पढ़ रहा था, उसमें जर्मन सम्राट का चेहरा देखा, तस्वीर देखी तब मुझे याद आई कीर्ति की। चेहरा बिल्कुल मिलता-जुलता है। नाक-नक्श बिल्कुल वही हैं। वही ऊंचाई, वही ढंग, वही ढौल! सब वही है। लेकिन तुम खोज नहीं पाओगे कि कीर्ति कहां है। वर्षों तक कीर्ति यहां रहा, उसने किसी को बताया भी नहीं था। यह तो ऐसे ही पता चलना शुरू हुआ। यह पता चलना इसलिए शुरू हुआ कि यूनान की महारानी की बेटी उससे मिलने यहां आई, तब पता चला। तब लोगों ने पूछताछ की उससे तो भी वह छिपाता रहा, बताता नहीं था। यूरोप में एक भी ऐसा राज परिवार नहीं है, जिससे उसके संबंध न हों। इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ उसकी चाची है। यूनान की महारानी उसकी मौसी। क्योंकि राज-परिवारों में शादी होती है। तो सारे राज-परिवार यूरोप के उससे जुड़े हैं। वह यहां छिपा रहता है।
अभी यूनान की महारानी निकली बंबई से तो उसे बुलवाया देखने को कि मैं देखना चाहती हूं कि तुझे हो क्या गया है! मगर उसे देख कर प्रसन्न होकर गई।
एक शांति घटी, एक नया ही भाव पैदा हुआ है, सौम्यता आई है, समता आई है।
और तुम कहते हो ध्यान ऐयाशी है? ध्यान क्रांति है। और ध्यान ही एकमात्र क्रांति है।

तीसरा प्रश्नः मेरे, मेरे, हां मेरे ओशो!
अधरों से या नजरों से हो वह बात,
भला क्या बात हुई!
जब तुम जन्मे "मैं" मिट जाए
और जनम-जनम की प्यास बुझे।
पर,
क्या कह पाऊंगा जो प्राणों के

अंतरतम में छिपा हुआ?
आ द्वार तुम्हारे पहुंचा हूं, तुम चिर से परिचित लगते हो।

जीवन असीम, राहें असीम, फिर भी मैं तुम तक पहुंच सका।
यह कृपा गुरु तेरी ही है अन्यथा बहाव असीम भरे।

गुरु द्वार मिला तब दूर कहां,
गोविंद मिलन की बेला अब।
यह मन तेरा, यह तन तेरा,
जो कुछ भी अब जीवन तेरा।
यह मैं क्या अब, बस तू ही है
तू कर जो तेरा जी चाहे।

रवींद्र सत्यार्थी! एक ही सूत्र पर्याप्त है--तू कर जो तेरा जी चाहे! इतना ही कह सको परिपूर्ण मन से, इतना ही कह सको समग्रता से, इतना ही कह सको परिपूर्णता से, फिर कुछ और करने को नहीं रह जाता। समर्पण हो गया। और समर्पण संन्यास है। इतना ही हम कह सकें। कहने की ही बात न हो, ऐसा हम अनुभव कर सकें, ऐसे हम जी सकें, ऐसा हमारा प्रतिपल प्रमाण बन जाए कि फिर कुछ और नहीं चाहिए। उतर आएगा सत्य अपने से। परमात्मा खोजता तुम्हें आ जाएगा, तुम जहां भी होओगे।
जिंदगी में जो कुछ है, जो भी है
सहर्ष स्वीकारा है;
इसीलिए कि जो कुछ भी मेरा है
वह तुम्हें प्यारा है।
गर्वीली गरीबी यह, ये गंभीर अनुभव सब,
यह विचार वैभव सब;

दृढ़ता यह, भीतर की सरिता यह अभिनव सब मौलिक है, मौलिक है;
इसलिए कि पल-पल में

जो कुछ भी जाग्रत है, अपलक है--
संवेदन तुम्हारा है!

जाने क्या रिश्ता है, जाने क्या नाता है, जितना भी उंड़ेलता हूं भर-भर फिर आता है। दिल में क्या झरना है?
मीठे पानी का सोता है?

मुसकाता रहे चंद्र धरती पर रात भर चेहरे पर मेरे त्यों
मुखमंडल तुम्हारा है।
तुम्हारा ही सहारा है
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
या मेरा जो होने सा लगता है
होता सा संभव है
सभी वह तुम्हारे ही कारण के कार्यो का घेरा है कार्यों का वैभव है।

जिंदगी में जो कुछ भी है, जो कुछ है,

सहर्ष स्वीकारा है,
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
वह तुम्हें प्यारा है!
भक्त की यही भाव-दशा है। भक्त न कुछ छोड़ता, न कुछ तोड़ता। भक्त न भागता,
न त्यागता। भक्त तो कहता है, जो कुछ है, सब तुम्हारा है। छोडूं तो क्या छोडूं! पकडूं तो क्या पकडूं! पकडूंगा तो भी दावा हो गया। छोडूंगा तो भी दावा हो गया कि मेरा था, छोड़ा। जो कुछ है, सब तुम्हारा है। और तुमने दिया है तो निश्चित ही वह तुम्हें प्यारा है; नहीं तो देते ही क्यों? जैसा तुमने बनाया है वैसा तुम्हें जरूर प्यारा है। तुम्हारी मर्जी मैं तुम्हारी मर्जी में पूरा-पूरा जीऊंगा, रत्ती भर हेर-फेर न करूंगा। बुरा हूं या भला हूं, तुम्हारा हूं। भक्त की यह दशा अपूर्व है।
रवींद्र सत्यार्थी, उसकी ही पहली-पहली खबर आनी शुरू हो रही है। बीज टूट रहा है, उसके ही पहले अंकुर फूट रहे हैं। इन अंकुरों को सम्हालना, इनसे बहुमूल्य और कुछ भी नहीं है। इन अंकुरों के चारों तरफ बागुड़ लगाना कि ये सबल हो सकें, सशक्त हो सकें। इन्हीं से बड़ा वृक्ष बनेगा। बहुत फूल खिलेंगे, बहुत पक्षी बसेरा लेंगे।
एक-एक संन्यासी को ऐसा वृक्ष बन जाना है कि बहुत पक्षी उस पर बसेरा ले सकें, बहुत फूल उसमें खिल सकें, बहुत राहगीर उसके नीचे छाया ले सकें। और यह समझ में आ जाए तो जीवन फिर एक अभिनय है। फिर जैसे रामलीला में रावण कोई तुम्हें बना दे तो तुम कोई कुछ एकदम मार-काट पर उतारू नहीं हो जाते कि रावण और मुझे? कि मैं तो राम ही बनूंगा। रावण भी बन जाते हो, क्योंकि तुम जानते हो, अभिनय है। और पर्दा गिरेगा और पीछे सब एक हैं। राम और रावण दोनों साथ बैठ कर चाय पी रहे हैं,। तुम जिद नहीं करते कि मैं राम ही बनूंगा। कि मैं कैसे रावण बन सकता हूं? अभिनय है तो फिर सब ठीक है। लीला है, खेल है, तो फिर सब ठीक है।
सब परमात्मा पर छोड़ दो तो फिर बचता क्या है? एक अभिनय बचता है। और जहां अभिनय है वहां चित्त निर्भार हो जाता है। पति हो, वह भी अभिनय। पत्नी हो, वह भी अभिनय है। जो काम मिल जाए जो काम हाथ पड़ जाए, पूरा कर लेना। जितनी कुशलता से बन सके उतनी कुशलता से पूरा कर लेना। सफल होओ तो ठीक, असफल होओ तो ठीक; फलाकांक्षा का कोई प्रश्न नहीं है।
शब्दों की कथा एक मेरी है,
गीतों के पात्र सब तुम्हारे हैं।

तुमसे जो कुछ पाया,
अपना कह दिखलाया,
देने औ" पाने की व्यथा एक मेरी है,
उपजे जो श्रेय-राग, मात्र वे तुम्हारे हैं।

चलना ही पथ जाना,
तुमको ही अथ माना,
भटके चरणों की गति-श्लथा एक मेरी है,
जीवनमय लक्ष्य-प्राप्त, गात्र सब तुम्हारे हैं।

तुमको क्या कम है,
यह मेरा ही भ्रम है,
पर कहने औ" सुनने की प्रथा एक मेरी है,
पग-पग के प्रेरक तो शास्त्र ही तुम्हारे हैं।

ले लो, मत मान करो
मेरा अभिमान धरो,
भ्रम ही हो टूट जाएः कथा नहीं मेरी है,
मेरे संगः गीत-कथा-पात्रः बस तुम्हारे हैं।

वही है एक जो अनेक-अनेक रूपों में, अनेक-अनेक अभिनय में प्रकट हो रहा है--
मित्र में भी, शत्रु में भी; अपने में भी, पराए में भी; जीवन में भी और मृत्यु में भी। सब उसके रूप हैं। भूल मत जाना। बस, इतनी ही याद रहे तो संन्यास। इतनी ही याद रहे कि मैं सिर्फ अभिनेता हूं। जो काम लेना हो, ले ले। मैं केवल बांस की पोंगरी हूं, जो गीत गाना हो गा ले। मैं कौन हूं जो बीच में अड़चन डालूं? मैं बीच में आऊं ही न। इसको ही मैं संन्यास कहता हूं। लेकिन हम भूल-भूल जाते हैं। इस जीवन की तो बात ही क्या कहें! इस जीवन
को तो हम सत्य मान कर ही जी रहे हैं। तो इसमें तो याद रखना कि यह अभिनय है, बड़ा कठिन होता है। भूल-भूल जाते हैं। अभिनय करते समय भी लोग कभी-कभी भूल जाते हैं कि अभिनय है और वास्तविक हो उठते हैं।
ऐसा एक रामलीला में हुआ। जिसे रावण बनाया था वह कुछ रामलीला के मैनेजर से कुछ बातचीत हो गई, झगड़ा हो गया। झगड़ा कुछ खास नहीं था। हर रोज रामलीला के बाद जो प्रसाद मिलता था, उसमें उसको प्रसाद थोड़ा कम मिला। तो उसने कहा, दिखा देंगे मजा, चखा देंगे मजा! मैनेजर ने सोचा भी न था कि मजा वह ऐसे चखाएगा। जब दूसरे दिन रामलीला शुरू हुई और सीता का स्वयंवर रचा तो रावण भी आया है स्वयंवर में, फिर दूत आता है भागा हुआ लंका से कि लंका में आग लग गई है रावण! चलो। और वह चला जाता है। लेकिन आज मामला बिगड़ा हुआ था। रावण ने कहाः ऐसी की तैसी लंका की! जल जाने दो। सारी जनता जो सोई होगी-- अक्सर तो लोग सोए ही रहते हैं, वे भी चौंक कर बैठ गए। यह कोई रामलीला हो रही है? जो बिल्कुल सोए थे, गहरे घुर्राटे ले रहे थे, उन सबने भी आंख खोल दी। और मैनेजर तो भीतर घबड़ाया कि मारा! यह मैंने नहीं सोचा था कि बदला यह इस ढंग से लेगा। दूत भी थोड़ा हैरान हुआ कि क्या करे? उसने फिर कहा कि महाराज, आप चलें। लंका में आग लग गई है। उसने कहाः सुना नहीं तुमने? कि लगी रहने दो आग, जल जाने दो लंका! आज तो सीता को विवाह करके ही लौटूंगा। और उसने आव देखा न ताव, उठा और तोड़ दिया धनुषबाण शंकर जी का। धनुषबाण तो धनुषबाण ही था, कोई शंकर जी का था! रामलीला ही चल रही थी। उसने उठा कर उसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया।
जनक बैठे हैं सिंहासन पर, देख रहे हैं, अब बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, करें क्या? क्योंकि कोई जो भी पाठ याद किया है वह लागू नहीं होता। और वह रावण सामने खड़ा हो गया ताल ठोक कर। उसने कहा कि जनक, निकाल, कहां है सीता! यह हो गई खत्म रामलीला इस बार, अब दुबारा नहीं होगी।
तो जनक बूढ़ा आदमी था, कई दिन से, कई सालों से काम करता था जनक। उसे कुछ सूझ आई कि कुछ तो करना ही पड़ेगा। उसने कहा, भृत्यो! परदा गिराओ। यह धनुषबाण असली नहीं था, शंकर जी का नहीं था। मेरे बच्चों के खेलने का धनुषबाण उठा लाए! पर्दा गिरा कर, धक्कम-धुक्की देकर किसी तरह रावण को निकाला। मुश्किल ही पड़ी क्योंकि रावण बनाते ही उसको हैं जो खूब मजबूत ढंग का हो। गांव का सबसे बड़ा पहलवान वही था। बा मुश्किल उसको निकाल पाए। जल्दी से कोई दूसरा रावण खड़ा किया, फिर पर्दा उठा, फिर से रामलीला ठीक से शुरू हुई।
अभिनय में भी भूला जा सकता है कि अभिनय है। अभिनय में भी हम चीजों को वास्तविक मान ले सकते हैं। तो यह तो जिंदगी है, जिसको हम वास्तविक माने हुए हैं। बचपन से ही हमें इसे वास्तविक समझाया गया है, मनाया गया है, मान लिया है। इसे हमने नाटक की तरह सोचा नहीं है।
संन्यास में दीक्षा का अर्थ होता है कि अब हम इसे नाटक की तरह सोंचेगे। अब हम पृथ्वी को एक बड़ा मंच समझेंगे। उसमें सब अभिनेता हैं, सबको दिए गए पार्ट हैं, सबको अपना-अपना अभिनय पूरा कर लेना है। मगर हम अपने को अभिनय में डुबाएंगे नहीं, दूर-दूर खड़े-खड़े साक्षी रहेंगे। वह साक्षीभाव ही ध्यान है।
सब उसका है इसलिए फल की कोई चिंता नहीं हैः इसलिए कल की कोई चिंता नहीं है। और सब अभिनय है इसलिए चित्त निर्भार है। ऐसा हो तो ठीक, वैसा हो तो ठीक। जीत तो जीत, हार तो हार, सब बराबर है। जीत और हार में कोई भी भेद नहीं है, ऐसी जो प्रतीति है वह सघन हो जाए तो बस, परमात्मा को मिलने में कोई बाधा न रही। सब उसका है; अच्छा हो, बुरा हो, सब खेल है। मैं साक्षीमात्र।

मैं समर्पित। मैं उसके हाथ का एक उपकरण। बस, रवींद्र सत्यार्थी, इतनी ही बात सध जानी चाहिए। तू कर जो तेरा जी चाहे--
इतना तुम पूरे मन से कह सको। कह सकोगे एक दिन ऐसा आशीर्वाद देता हूं।
भाव उमगना शुरू हुआ है, उसे सम्हालना। क्योंकि अकसर ऐसा हो जाता है कि जितने श्रेष्ठ भाव होते हैं, बड़ी मुश्किल से पैदा होते हैं और मर बड़े जल्दी जाते हैं। और जितने निकृष्ट भाव होते हैं, बड़े जल्दी पैदा होते हैं, और मरते बड़े मुश्किल से हैं। घास-पात ऐसे ही उग आता है, गुलाब ऐसे ही नहीं उगते।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक आदमी ने मकान लिया। बगीचा लगाने की सोच रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन का प्यारा बगीचा है। मुल्ला से उसने पूछा कि मैंने बीज बोए हैं, बीज उगने भी शुरू हो गए, मगर घास-पात भी उग रहा है। तो यह मैं कैसे समझूं कि कौन घास-पात है और कौन मेरा बीज! मुल्ला ने कहाः इसको समझना बड़ा सीधा है। दोनों को उखाड़ कर फेंक दो, जो फिर से उग आए वह घास-पात। घास-पात अपने से ही उग आता है। उखाड़ते जाओ, फिर-फिर उग आता है। उसे बोना नहीं पड़ता। उसे उखाड़ना पड़ता है तब भी निकल आता है। और फूलों के बीज बोए-बोए भी मुश्किल से उगते हैं। और जितने कीमती फूल हों उतने ही मुश्किल होते जाते हैं। और चेतना के फूल तो सर्वाधिक कठिन हैं।

चौथा प्रश्नः ओशो! आप मेरे अंतर्यामी हैं। क्या मेरे हृदय में मीरां
और चैतन्य के से प्रेम के गीत फूटेंगे? क्या उनकी तरह मैं पागल होकर नाच सकूंगा।

हरिहर! जो एक व्यक्ति की संभावना है वह सभी की संभावना है। जो बुद्ध
को हो सका, तुम्हें हो सकता है। जो मीरां को हुआ वह भी तुम्हें हो सकता है। कैसा होगा, इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। क्या रंग लेगा इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती क्योंकि मनुष्य कोई यंत्र नहीं है, मनुष्य एक स्वतंत्रता है।
इसलिए मैं नहीं कह सकता कि क्या रंग होगा जब तुम्हारे फूल खिलेंगे।
तो जूही के होंगे कि गुलाब के होंगे कि चंपा के होंगे, यह नहीं कहा जा सकता। तुम मीरां जैसे नाचोगे, महकोगे, या महावीर जैसे मौन हो जाओगे, यह नहीं कहा जा सकता। इतना भर कहा जा सकता है कि फूल निश्चित खिलेंगे। फूल खिलेंगे। मौन के होंगे कि गीत के होंगे, इस संबंध में भविष्यवाणी करने का कोई उपाय नहीं है। मगर उससे भेद नहीं पड़ता। असली चीज खिलना है। चंपा खिली कि चमेली खिली, यह सवाल नहीं है। फूल पीले थे कि सफेद थे, यह सवाल नहीं है। असली घटना है खिलना। तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह खिलेगा।
और इस जगत में दो ही तरह के लोग हैंः पचास प्रतिशत व्यक्ति महावीर की तरह और पचास प्रतिशत व्यक्ति मीरां की तरह। ये दो ही तरह के लोग हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं हरिहर, कि तुम्हारे भीतर मीरां जैसा नाच जगे क्योंकि पचास प्रतिशत संभावना वह भी है। मगर बस पचास प्रतिशत। दूसरी पचास प्रतिशत संभावना भी है। और यह मत सोचना कि महावीर का मौन मीरा के गीत से कुछ दीन-हीन है। न यह सोचना कि मीरां के गीत महावीर के मौन से कुछ कम हैं। ढंग का ही भेद है। मौन के भी फूल होते हैं, मौन का भी गीत होता है। मौन का भी संगीत होता है, नाद होता है। चुप्पी भी बोलती है, मौन भी मुखर होता है। कुछ बातें हैं जो मौन से ही कही जा सकती हैं; जिन्हें गाने का एक ही ढंग हैः चुप हो जाना।
तो यह मत सोचना कि मीरा या महावीर में कोई नीचा-ऊंचा है। मीरा का एक ढंग है कि उसके भीतर जो जन्मा, वह शब्दों में अभिव्यक्त हुआ। महावीर के भीतर जो जन्मा, वह मौन में अभिव्यक्त हुआ। अभिव्यक्त दोनों हुए, दोनों खिले। जो महावीर के मौन को समझ सकते थे, उन्होंने महावीर के मौन को सुना और समझा। और जो महावीर के मौन को नहीं समझ सकते थे वे उनके पास आए और देखा कि कुछ भी नहीं है। जो मीरां के गीत समझ सकते थे उनके भीतर मीरां के गीतों ने धुन जगा दी। और जो नहीं समझ सकते थे उन्होंने समझा, निर्लज्ज! लोकलाज खोकर राह-राह नाचती है। महारानी होकर और यह ढंग अख्तियार किया। जो नहीं समझ

सकते थे वे मीरा को नहीं समझे, जो नहीं समझ सकते थे वे महावीर को नहीं समझे। जो समझ सकते थे वे महावीर को भी समझे, मीरां को भी समझे।
लेकिन अगर तुम्हारे भीतर ऐसी सरसराहट मालूम होती हो कि मीरा तुम्हें आकर्षित करती हो, आंदोलित करती हो, तो हो सकता है, तुम्हारी भी संभावना मीरां की तरह हो नाचने और गाने की है। मगर संभावना ही कहूंगा। कल की बात हमें आज न तो कहनी चाहिए, न कही जा सकती है। कल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। कल जो होगा, शुभ होगा।
देवता के मौन से जब भीख मांगी,
नाद के मधुकलश मुखरित छंद पाए!
और कभी-कभी उलटा हो जाता है--मांगने गए थे मौन की भीख और मिले गीतों के मधुकलश!

देवता के मौन से जब भीख मांगी,
नाद के मधुकलश मुखरित छंद पाए!
प्रभा-मंडल है दिवा-निशि-नाथ जिनके
जब कभी देखा उन्हें, दृग बंद पाए!

नाचते उन्मत्त बन कर शूलधर जब,
फूल झरते शील संयम साधना के! स्वेद-कण विज्ञान, पद-रज ज्ञान-गरिमा दास योगी-यती उनकी कामना के!

हैं विरोधाभास समरसता चरण दो,
छांह उनकी परम प्रज्ञातीत माया! मृत्तिका से भी मृदुल कोमल हृदय है, वज्रदृढ़ ब्रह्मंड कांचनकांति काया!

श्वास के दो तार आकर्षण-विकर्षण
नींद में शत सृष्टियों का स्वप्न-सर्जन, अचल पलकों पर विक्रीडित लोक लीला
प्रखर जागृति में प्रलय का घोर गर्जन!

मौन ऐसे देवता से भीख मांगो,
नाद के मधुकलश मुखरित छंद पाए!
प्रभा-मंडल है दिवा-निशि-नाथ जिनके
जब कभी देखा उन्हें दृग बंद पाए!
और यह भी हो सकता है कि महावीर जैसे मौनी सदगुरु के पास बैठो और गीत फूटें। और यह भी हो सकता है कि मीरा के गीत सुनो और मौन में डूब जाओ। ये सब संभावनाएं हैं। मगर अगर तुम्हारे मन में अभीप्सा है, प्रार्थना है तो उसे दबाना भी मत। जो सहज हो, जो तुम्हारा स्वछंद हो, उसे प्रकट होने देना।
बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी?
प्रेम-पाटल-पुष्प-प्रतिमे!
सत्यमय सौंदर्य की अयि निष्कलुष, शुचि छवि-मधुरिमे!
मैं झुका आराधना सा,

तुम वरद आशीष-करतल, क्या न नत शिर पर धरोगी?
बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी? प्रेम-पाटल-पुष्प-प्रतिमे!

रात्रि में तुम झिलमिलातीं, दूर की नीहारिका सी पंथ-भूले बाल-दृग में अश्रु की लघु तारिका सी

मैं भ्रमर, तुम पंखुरी की छांह सी छहरा रही हो

दूर होकर आंसुओं में और उतरी जा रही हो

करुणलय की हूक को पिक-कूक सी झंकारती तुम
इस पुजारी कवि-कुटी की, अमर ज्योतित आरती तुम

कब हृदय का तम हरोगी?
बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी?

खोज में पथ-धूलि से भी, फूल मैं चुनता रहा हूं पत्थरों के मौन से भी चरण-ध्वनि सुनता रहा हूं

मैं स्वयं के नयन-जल में, जलज बन पलता रहा हूं,
मरण-जीवन-पंथ पर गति-प्राण-बन चलता रहा हूं

धर कणित पग, मूक वाणी में रणित गति कब भरोगी?
बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी?
प्रेम-पाटल-पुष्प-प्रतिमे!
किए जाओ प्रार्थना--बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी! किसी भी क्षण बीन झंकृत हो सकती है। झंकृत हो तो ठीक, शुभ; और सन्नाटा ही रह जाए तो भी शुभ। दोनों में मूल्य का कोई भी भेद नहीं है। शून्य सिद्ध हुए हैं, और जिनके भीतर से खूब संगीत जगा, ऐसे सिद्ध हुए हैं। दोनों का अनुभव एक, दोनों की उपलब्धि एक, दोनों की अनुभूति एक। पर कोई गाता है, कोई चुप रह जाता है। यह प्रत्येक की आंतरिक क्षमता पर निर्भर करता है।
जैसे स्त्री और पुरुषों का भेद है ऐसा ही यह भी भेद है। इसमें जो पुरुष होंगे--मेरा अर्थ शारीरिक रूप से नहीं है, जिनकी चित्त की दशा पुरुष की होगी, वे चुप रह जाएंगे। जिनकी चेतना की दशा स्त्री की होगी उनके भीतर बड़े गीत, छंद फूटेंगे। तुम देखते नहीं! छोटे-छोटे बच्चों में पहले बच्चियां बोलती हैं, फिर बच्चे बोलते हैं। पहले भी बोलती हैं और जिंदगी भर भी बोलती रहती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसके एक मित्र ने पूछा कि जब तुम्हारे पिता जी मरे तो उनके आखिरी शब्द क्या थे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः आखिरी शब्द? माता जी आखिरी दम तक साथ थीं, उन्हें बोलने का अवसर ही नहीं मिला।
तुमने देखा, छोटी बच्चियां, छोटी-छोटी बच्चियां एक साल पहले बच्चों
से बोलने लगती हैं और उनके बोलने में कुशलता होती है। स्त्रैण चित्त की क्षमता है अभिव्यक्ति, पुरुष चित्त की क्षमता है मौन। महावीर पुरुष चित्त के परम परिष्कार हैं, जैसे मीरा स्त्री चित्त का परम परिष्कार है। फिर पुरुषों में भी मीरा जैसे लोग हुए हैं--जैसे चैतन्य, जैसे कबीर, जैसे सूर, जैसे दूलनदास। और फिर स्त्रियों में भी पुरुषों जैसे लोग हुए हैं--जैसे राबिया, जैसे कश्मीर की लल्ला।
जैन तीर्थंकरों में एक स्त्री तीर्थंकर भी हुई, मल्लीबाई। मगर जैन शास्त्रों में मल्लीबाई को भी मल्लीनाथ ही कहा जाता है, बाई का उपयोग नहीं किया जाता। इसलिए अधिक लोगों को यही ख्याल है कि मल्लीनाथ भी पुरुष थे। और इसके पीछे कारण भी हैं क्योंकि जैन शास्त्र कहते हैं कि स्त्री देह से मोक्ष हो ही नहीं सकता, पुरुष देह से ही मोक्ष हो सकता है। इसलिए मल्लीबाई को उन्होंने स्त्री माना ही नहीं। मोक्ष हुआ; उसको पुरुष ही माना, मल्लीनाथ ही माना। यह पुरुषों की परंपरा है, यह मौनियों की परंपरा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्त्री-देह से मोक्ष नहीं होता। यह तो वैसे
ही होगा जैसे मीरां को मानने वाले कहने लगें कि पुरुष-देह से मोक्ष नहीं होता। यह आधा सत्य है। हां, इस परंपरा में, महावीर की परंपरा में स्त्री- देह से मोक्ष होना बड़ा मुश्किल है; असंभव ही मानना चाहिए। क्योंकि यह पूरी परंपरा की प्रक्रिया पुरुष की है, पौरुषिक है; संकल्प की है, समर्पण की नहीं; संघर्ष की है, समर्पण की नहीं; दुर्धर्ष संघर्ष की है।

इसलिए तो महावीर को महावीर नाम मिला। नाम तो उनका वर्धमान था लेकिन दुर्धर्ष संघर्ष किया। वह जो क्षत्रिय होना है, वह जो पुरुष होना है, वह कोई महल छोड़ देने से ही नहीं छूट जाता, तलवार छोड़ देने से ही कोई क्षत्रियपन नहीं छूट जाता है। तलवार भी छूट जाए तो हाथ क्षत्रिय के ही हैं; और प्राण क्षत्रिय के हैं, क्षत्रिय के ही हैं। और तुम ब्राह्मण के हाथ में तलवार भी दे दो तो भी क्या करेगा? खुद ही को मार-मूर ले, नुकसान कर ले और। क्षत्रिय के हाथ में लकड़ी भी तलवार बन सकती है, हाथ भी तलवार हो सकते हैं। उसकी आत्मा, उसके भीतर का स्वभाव क्षत्रिय का है।
जैनों की परंपरा क्षत्रियों की परंपरा है। उनके चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। संघर्ष उसका स्वर है और मौन उसकी साधना है। इसलिए यह बात ठीक ही है कि अगर मल्लीबाई पहुंच गई तो चमत्कार है; मानना चाहिए कि वह पुरुष ही है, आंतरिक रूप से पुरुष है।
और फिर तुम्हें पता है, कृष्ण-भक्तों में ऐसे लोग भी हैं जैसे मीरा ने कहा... मीरा जब गई वृंदावन के एक मंदिर में, जहां कि स्त्रियों को आने की मनाही थी क्योंकि मंदिर का पुजारी बड़े विक्षिप्त रूप से ब्रह्मचर्य के पीछे पड़ा था। स्त्री को देखता ही नहीं था। मंदिर के बाहर नहीं आता था और मंदिर में स्त्रियों को नहीं आने देता था। जब मीरां पहुंची तो उसने आदमी बाहर खड़े कर रखे थे कि मीरां को अंदर नहीं घुसने देना। मगर मीरा का नाच, उसकी मस्ती! वे भूल ही गए द्वारपाल और मीरा नाचती भीतर प्रवेश कर गई। उन्हें याद जब तक आए, जब तक याद आए तब तक तो वह भीतर पहुंच भी चुकी थी। पुजारी पूजा कर रहा था, उसके हाथ से थाल गिर गया घबड़ाहट में। जो लोग दमन कर लेते हैं वासनाओं का उनकी यही गति होगी। स्त्री को देख कर उसके हाथ से थाल गिर गया, ऐसी कमजोरी! बहुत नाराज हो गया। उसने मीरां से कहा कि भीतर क्यों प्रवेश किया? मेरे मंदिर में स्त्री को प्रवेश नहीं है।
मीरा ने जो वचन कहे वे याद रखने जैसे हैं। मीरा ने कहाः मैंने तो सोचा
था कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं है। तो आप भी एक पुरुष और हैं? मैंने तो सुन रखा है कि कृष्ण को जो भी मानते हैं वे सभी यह मानते हैं कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं है। और आप यह क्या पूजा कर रहे हैं? किसकी पूजा कर रहे हैं? अभी तक सखी-भाव पैदा नहीं हुआ, अभी तक राधा नहीं बने? अभी पुरुष हो तुम, अभी तक तुम पुरुष हो?
तीर की तरह चुभ गई होगी छाती में बात लेकिन क्रांति घट गई। पैरों पर गिर पड़ा पुजारी; उसने कहा, मुझे क्षमा कर दो, यह तो मुझे ख्याल में ही न आया कि केवल कृष्ण ही पुरुष हैं। कृष्ण के मार्ग पर तो कृष्ण ही पुरुष हैं क्योंकि वह मार्ग स्त्रैण-चित्त का मार्ग है। परमात्मा एकमात्र पुरुष है, बाकी सब स्त्रियां हैं। यह समर्पण का मार्ग होगा।
अगर तुम समर्पण के मार्ग से चल सको हरिहर, तो तुम्हारे भीतर गीत पैदा होंगे, तुम्हारी वीणा बजेगी, तुम नाचोगे। अगर तुम समर्पण के मार्ग से न चल सको, संकल्प का मार्ग स्वीकार करो, वह तुम्हें रुचिकर लगे तो तुम्हारे भीतर मौन के फूल खिलेंगे। दोनों सुंदर, दोनों शुभ। और दोनों में कुछ भी चुनाव करने की आवश्यकता नहीं है। जो तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल होगा, घटेगा। और वही उचित है। और जो तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल हो उसी के अनुसार चलना। ऐसा न कर लेना कि अपनी आकांक्षा को अपने स्वभाव के ऊपर थोपने लगो। ऐसा न कर लेना कि स्वभाव तो संकल्प का हो और गीत और नाच होना चाहिए इसलिए अपने ऊपर आरोपित करने लगो संकल्प को छोड़ कर समर्पण को, तो तुम झूठे हो जाओगे; तो फिर तुम्हारा नाच ऊपर-ऊपर रहेगा गीत ऊपर-ऊपर रहेगा। तुम उससे भीगोगे नहीं आर्द्र न होओगे। उससे कुछ लाभ भी न होगा, वह व्यर्थ हो जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता को ध्यान में रखना चाहिए। स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः। जो महावीर का धर्म है वह मीरा का नहीं है, जो मीरा का धर्म है वह महावीर का नहीं है। महावीर मीरा के रास्ते से चले, बड़े पाखंड में पड़ जाएंगे और मीरा महावीर के रास्ते से चले तो मिथ्या हो जाएगी। इसलिए कोई आकांक्षा थोपना मत। सहज भाव से अपने स्वभाव को, अपनी निजता को जीओ। जो भी उसमें से फूल निकलेंगे, शुभ होगा। कोई नहीं जानता।

बीज के टूटने के पहले कोई घोषणा नहीं कर सकता कि बीज टूटेगा, फूल कैसे होंगे, पत्ते कैसे होंगे!
और यह शुभ है, यह सुंदर है कि मनुष्य के संबंध में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। मनुष्य की स्वतंत्रता ऐसी है। हां, तुम्हारे संबंध में छोटी-छोटी भविष्यवाणियां हो सकती हैं। वही ज्योतिषी तुम्हारे संबंध में करते हैं। मगर वे व्यर्थ की बातें हैं, बाहर की बातें हैं। भीतर की बातों के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। कोई ज्योतिषी नहीं कह सकता कि किस घड़ी में, किस मुहूर्त में ध्यान फलेगा--कोई ज्योतिषी नहीं कह सकता। हां, यह बता सकता है कि लाटरी की टिकट मिलेगी या नहीं मिलेगी; कि तुम्हारा घोड़ा जीतेगा कि नहीं जीतेगा; कि धंधे में लाभ होगा कि नहीं होगा। इस तरह की क्षुद्र बातें बता सकता है क्योंकि ये क्षुद्र बातें गणित के भीतर आ जाती हैं। लेकिन कुछ ऐसा विराट भी है जो गणित के बाहर छूट जाता है, तर्क के बाहर छूट जाता है। न कभी भीतर आता है न आ सकता है।
इसलिए कोई नहीं कह सकता किस घड़ी, किस पल में समाधि फलेगी। और कोई नहीं
कह सकता कि तुम्हारी समाधि में कैसे फूल लगेंगे! कोई भी नहीं कह सकता। लगेंगे तभी लोग जानेंगे। लगेंगे तभी तुम भी जानोगे। इतना ही मैं कह सकता हूं कि अगर चलते रहो तो एक दिन पहुंच जाओगे; एक दिन फूल जरूर लगेंगे। और तुम भी चमत्कृत होओगे और तुम भी विस्मय-विमुग्ध होओगे क्योंकि तुम्हारे लिए भी वे बिल्कुल अनजान और अपरिचित होंगे, नये होंगे। तुम्हारी भी उनसे मुलाकात पहली बार होगी। तुम अपने आमने-सामने पहली बार खड़े होओगे, अपने परम सौंदर्य को पहली बार देखोगे। उस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। लेकिन अगर तुम्हें लगता हो कि तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल तुम्हारी प्रार्थना है जो जरूर प्रार्थना करो--
बीन मेरी मौन, कब झंकृत करोगी?
प्रेम-पाटल-पुष्प-प्रतिमे!

आखिरी प्रश्नः ओशो! संतन की सेवा का इतना महत्व क्यों है?

आनंद मैत्रेय! संतन की सेवा तो केवल बहाना है, शिष्य अपने गुरु के पास रहना चाहता है; वह कोई निमित्त खोजता है--कोई भी निमित्त! ऐसा नहीं है कि गुरु के पैर दुख रहे हैं इसलिए वह गुरु के पैर दबा रहा है। बल्कि इसलिए कि गुरु के पास होना चाहता है इसलिए पैर दबा रहा है। पैर दबाना सिर्फ बहाना है कि थोड़ी देर और यहां सरकूं, थोड़ी देर और यहां रहूं, थोड़ी देर और यहां रमूं, थोड़ी देर इस हवा में श्वास और लूं, थोड़ी देर यह सौंदर्य और देखूं, थोड़ा और प्रसाद पी लूं। पैर दबाना तो बहाना है कि कोई छोटा-मोटा काम गुरु का कर दूं, कि बुहारी ही लगा दूं उसके आंगन में, कि उसके कपड़े धो दूं कि उसके लिए रोटी पका दूं--ये सब बहाने हैं।
संतन की सेवा का इतना महत्त्व इसलिए है कि संतों के पास होना, उनके सामीप्य को अनुभव करना रूपांतरित होने की प्रक्रिया है। संतों के पास होना उनसे संक्रमित होने की प्रक्रिया है। उनके पास होना उनके रंग में रंगने का ढंग है। और उनके पास ही तो धीरे-धीरे उनके साथ उड़ने का सामर्थ्य आता है। और उनके पास उठते-बैठते ही तो अज्ञात में गति करने की क्षमता आती है। सत्य के अज्ञात सागर में नाव छोड़ने के लिए बड़ा साहस चाहिए, बड़ा जोखम उठाने की क्षमता चाहिए। सदगुरु के पास बैठते-बैठते ऐसा बल आ जाता है, ऐसी प्रबल हुंकार आ जाती है।
पंख खोल, पंख खोल, द्विज मनसिज, पंख खोल;
सुन रे, उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल!
सदगुरु की मौजूदगी कहती ही क्या है--पंख खोल, पंख खोल, द्विज मनसिज, पंख खोल! तुम पंख बंद किए बैठे हो, सारा आकाश तुम्हारा है। सुन रे उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल! वह जो उड़ चुका है आकाश में, जो जा चुका है मानसरोवर तक वह तुम्हें भी याद दिला रहा है कि तुम हंस हो, मत कीचड़ से भरे नदी-नालों में भटकते रहो। मानसरोवर तुम्हारा है। मानसरोवर का स्वच्छ जल तुम्हारा है। मानसरोवर का अमृत तुम्हारा है।

पंख खोल, पंख खोल द्विज मनसिज, पंख खोल; सुन रे, उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल!

अन्न-कण-चयन में ही नित त्वदीय चंचु पगी; तृण-तृण के प्रेक्षण में सतत तव दृष्टि लगी; निशि-वासर तव हिय में इह लीला-लौ सुलगी टपक रहे तब दृग से व्यथा-अश्रु गोल-गोल, पंख खोल, पंख खोल, द्विज मनसिज, पंख खोल!

यह तेरा खगी-मोह और नीड़-निलय-वास,
यह तेरी सतत रहनि पार्थिव के आस-पास,
ये न तव स्वभाव अरे, इनका तू नहीं दास; हेर गगन, उन्मुख बन, अंतर की ग्रंथि खोल! सुन-सुन उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल!

सोच रहा तूः रज-कण-निर्मित तव गात्र, पत्र; सोच रहाः भू-अंकुर-तृण है तब शिरश्छत्र, कहता होगा कि भूमि-भाव व्याप्त यत्र-तत्र; पर भोले, क्यों भूला निज चेतनता अमोल? पंख खोल, पंख खोल, द्विज मनसिज, पंख खोल!

तव कानन, तव पादप, तव कुलाय सीमित हैं, प्राण अवधि, जीवन निधि के उपाय सीमित हैं, पर क्या निःसीमा के भाव न अंतर्हित हैं? भिंगो रही तुझे नित्य नेति की तरंग लोल; सुन-सुन उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल!
आज तुझे अंबर से अमर निमंत्रण आया;
अथवा, निःसीमा से उमड़ एक धन आया, --
जिसका रव मंद्र, मदिर, उन्मन वन-वन छाया;
उड़ चल, रे, उड़ चल, अब छोड़ तृंत का हिंडोल,
सुन-सुन उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल!
सदगुरु के पास गूंज ही हो रही है आकाश की, उस दूर की पुकार आ रही है।

भिंगो रही तुझे नित्य नेति की तरंग लोल;
सुन-सुन उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल।
पंख खोल, पंख खोल, द्विज मनसिज पंख खोल;
किसी तरह और थोड़ी देर और थोड़ी देर सदगुरु के पास हाने का मौका मिल जाए। इस बहाने तो सही इस बहाने, उस बहाने सही तो उस बहाने। पास होने की आकांक्षा! क्योंकि उस पास होने में ही उपनिषद का जन्म होता है। उस पास होने में ही वेदों के मंत्रोच्चार सुने जाते हैं। उस पास होने में ही कुरान की आयतें गूंजती हैं। उस पास होने में ही दूर-दूर अनंत का तारा दिखाई पड़ता है, पहली बार दिखाई पड़ता है। सेवा तो निमित्त मात्र है। असली बात इतनी है कि जितना पीया जा सके; सरोवर के पास जितना बैठा जा सके!

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
नौवां प्रवचन

चंदरोज को जीवना

चारा पील पिपील को, जो पहुंचावत रोज।
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज।।

कोउ सुनै राग अरु रागिनी, कोउ सुनै जु कथा पुरान।
जन दूलन अब का सुनै, जिन सुनी मुरलिया तान।।

दूलन यह परिवार सब, नदी-नाव-संजोग।
उतरि परे जहं-तहं चले, सबै बटाऊ लोग।।

दूलन यह जग आइके, काको रहा दिमाक।
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक।।

दूलन बिरवा प्रेम को, जामेउ जेहि घट माहिं।
पांच पचीसौ थकित भे, तेहि तरवर की छांहि।।

धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन जगमाहिं।
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाहीं नाहिं।।

जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क।
छत्र खसै, धरनी धसै, तीनेउं लोक गरक्क।।

कतहुं प्रकट नैनन निकट, कतहूं दूरि छिपानि।
दूलन दीनदयाल, ज्यों मालव मारू पानि।।

सघन विजन के सूनेपन में,
संघर्षो की घनी तपन में,
खोजा कहां कहां पर तुझको पाया अपने अंतर्मन में।

बहता रहा निरंतर लेकिन,
मैं क्या हूं यह ज्ञात नहीं था।
सपनों से अनजान रहा पर,
नयनों से अज्ञात नहीं था।
कैसी थी द्विविधा की माया,
भूल गया मैं देख न पाया,
किसके अगणित चित्र बने हैं मेरे आंसू के दर्पण में।

स्थिर नत बैठा मंदिर में,
जब सहमा विश्वास छल गया।
हर पत्थर आराध्य हो गए,
जब अंधा अनुराग हिल गया।
शाश्वत अपराधी थी काया,
भूल गया मैं देख न पाया,
शैशव सा निर्वाण छिपा था मेरे ही दूषित आंगन में। भ्रांति उलझती रही जाल में,
लेकिन गांठ नहीं खुल पाई।
टूट गई तंद्रा भावों की,
लेकिन मूर्ति नहीं बन पाई।
चक्षु ज्ञान ने जब भटकाया,

भूल गया मैं समझ न पाया,
कौन राह दिखलाता मुझको छिप कर सांसों की धड़कन में।

पूजन का पाखंड ओढ़ कर,
तन बैठा गंगा के तट पर।
गुरिया हर क्षण रही फिसलती,
चिंतामणि की हर करवट पर।
तन सुरसरि में नित्य डुबाया,
भूल गया मैं सोच न पाया,
सारे पाप धुला करते हैं आत्मशुद्धि के आराधन में।

नामों की महिमा न्यारी सुन,
दुख में रटता रहा निरंतर।
पाप छिपा लेने को अपने,
झूठा धर्म बनाया तस्कर।
विविध उपायों को अपनाया,
भूल गया मैं देख न पाया,
मेरे सारे कलुष छिपे हैं मेरे ही अशुद्ध चिंतन में।

सघन विजन के सूनेपन में,
संघर्षों की घनी तपन में,
खोजा कहां कहां पर तुझको पाया अपने अंतर्मन में।
मनुष्य एक खोज है--एक शाश्वत खोज, एक सनातन खोज। साफ भी नहीं है कि किसे हम खोज रहे हैं। खोज ही न लें उसे तब तक साफ भी कैसे हो? ठीक-ठीक पता भी नहीं है किस मंजिल की ओर हम चले हैं। मिल ही न जाए मंजिल तब तक ठीक-ठीक पता भी कैसे हो? ऐसी बेबूझ खोज है।
लेकिन एक बात स्पष्ट है, पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि मनुष्य जैसा है वैसे में तृप्त नहीं है। कुछ खोया है, कुछ चूका है। कुछ होना चाहिए जो नहीं है। उसे फिर हम जो भी नाम देना चाहें दें--कहें परमात्मा, कहें आत्मा, कहें मोक्ष, कहें निर्वाण, कहें सत्य। लेकिन एक बात सभी के भीतर छिपी है कि मनुष्य को जैसा होना चाहिए वैसा वह नहीं है। कुछ चूका-चूका है। कुछ बिंदु से, केंद्र से हटा-हटा है। जहां होना चाहिए वहां नहीं है।
और इसलिए एक बेचैनी है, एक संताप है। अहर्निश एक चिंता है। एक चिंता
का बादल घेरे हुए है आदमी को। कितने ही सुख हों, वह चिंता नहीं जाती; और कितना ही धन हो वह बात नहीं भूलती कि मुझे जहां होना था वहां नहीं हूं; जो होना था वह नहीं हूं; जो मुझे मिलना था अभी नहीं मिला है। अभी खोज करनी है, अभी और यात्रा शेष है। सब मिल जाए इस जगत का तो भी यह अभाव खड़ा ही रहता है, और सघन होकर खड़ा हो जाता है।
इस अभाव के कारण ही धर्म है। धर्म इसलिए नहीं है कि परमात्मा है। परमात्मा का तो हमें पता कहां है? लेकिन एक बात का हमें पता है कि हमारे भीतर अभाव है, कोई रिक्त स्थान है। और जब प्यास हो तो पानी भी होता है और भूख हो तो भोजन भी होता है। और हमारे भीतर अभाव है तो उसे भरने वाला भी होगा। उस भरनेवाले का नाम ही परमात्मा है। जो उसे भर देगा वही परमात्मा है। परमात्मा है या नहीं, यह सवाल नहीं है; हमारे भीतर अभाव है। और अभाव है तो भरनेवाला भी होगा। जैसे प्यास है तो पानी भी होगा और भूख है तो भोजन भी होगा।
और आश्चर्यो का आश्चर्य तो तब प्रकट होता है, जब जिसे हम खोजते थे उसे अपने ही भीतर पा लेते हैं। जिसे हमने न मालूम चांद-तारों की कितनी-कितनी लंबी यात्राओं पर खोजा, दूर-दूर क्षितिजों के पास जिसके लिए हम भटके-- कितने जन्म, कितनी दौड़ें! और नहीं पा सके। आश्चर्यो का आश्चर्य तो उस दिन, जिस दिन उसे हम अपने ही भीतर पा लेते हैं।
सघन विजन के सूनेपन में,
संघर्षों की घनी तपन में,

खोजा कहां कहां पर तुझको पाया अपने अंतर्मन में।
शायद इसीलिए हम उसे खोज नहीं पाते क्योंकि वह खोजनेवाले में ही छिपा है। बीज को तोड़ो तो क्या पाओगे? न फूल मिलेंगे न फल। बीज को तोड़ो तो क्या पाओगे? एक रिक्तता। मगर उसी रिक्तता में कहीं फूल छिपे हैं, कहीं फल छिपे हैं, कहीं विराट वृक्ष छिपा है। अपने को ऐसे ही देखोगे तो खाली पाओगे, अपने को ठीक संदर्भ में रख कर देखोगे तो भरा पाओगे, बस संदर्भ की बात है।
बीज को ऐसे ही तोड़ोगे तो फूल नहीं, फल नहीं, कुछ भी नहीं; लेकिन बीज को अगर भूमि में डाल दोगे और टूटने दोगे भूमि में, ठीक संदर्भ में तो जल्दी ही अंकुर आएंगे। अंकुराएगा बीज। जल्दी ही हरे पत्ते फूट आएंगे। जल्दी ही तुम पाओगे एक वृक्ष खड़ा हो गया। जल्दी ही तुम पाओगे फूल लद गए, सुगंध उड़ने लगी। यह सब छिपा था उसी बीज की रिक्तता में, उसी बीज के शून्य में।
ऐसी दशा मनुष्य की है। मनुष्य बीज है जिसमें परमात्मा छिपा है। मगर ऐसे ही काटो तो मनुष्य के भीतर कुछ भी न पाओगे। इसलिए विज्ञान आत्मा को नहीं पाता; ऐसे ही बीज को काट लेता है। धर्म आत्मा को पाता है क्योंकि धर्म ठीक संदर्भ में बीज को गलाता है। उस संदर्भ का नाम धर्म है। उसी संदर्भ का नाम ध्यान। उसी संदर्भ का नाम प्रार्थना, पूजा, अर्चना। ये सब उसी की विधियां हैं। जैसे कोई भूमि को साफ करे, कंकड़-पत्थर हटाए, घास-पात उखाड़ दे; फिर बीज को डाले, फिर पानी सींचे और फिर वसंत की प्रतीक्षा करे।
बस, धर्म का वास्तविक प्रयोजन इतना ही है कि तुम्हें ठीक संदर्भ, ठीक भूमि मिल जाए तुम्हारा बीज तो टूटे, ऐसे ही न टूट जाए; ठीक पृष्ठ-भूमि में, ठीक संयोग में टूटे, सत्संग में टूटे। तुम भी फूल बनोगे। और बनोगे फूल तभी तुम प्रसन्न हो सकोगे, प्रफुल्ल हो सकोगे; तभी तुम तृप्त हो सकोगे।
चारा पील पिपील कौ, जो पहुंचावत रोज
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज
दूलन कहते हैंः जो हाथी को भी भोजन पहुंचाता है और जो चींटी को भी; छोटे की भी जिसे फिकर है और बड़े की भी; क्षुद्र की भी और विराट की भी--वह कौन है? दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज। इस सारे अस्तित्व के भीतर छिपा हुआ वह कौन है जो वृक्षों में हरा है, फूलों में लाल है, सूरज में सोना है, चांद में चांदी है। वह कौन है जो इस सारे विस्तीर्ण अस्तित्व को संभाले है? वे कौन से हाथ हैं जिनके सहारे यह विराट आयोजन चल रहा है? उसे खोज लेना चाहिए।
दूलन कहते हैं, उसे खोजे बिना तृप्ति नहीं हो सकेगी। उसकी जरूर खोज कर लेनी चाहिए। उसको पाया तो सब पाया, उसको खोया तो सब खोया। उसकी प्राप्ति में ही प्राप्ति है। क्योंकि उसके पाते ही फिर कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता। फिर सब पा लिया। उसको पाते ही शेष भी कैसे रह जाएगा कुछ? मालिक को ही पा लिया तो उसकी मालकियत भी पा ली। सम्राट को पा लिया तो उसका साम्राज्य भी पा लिया। और उसके बिना तुम मांगते रहो, मांगते रहो, मांगते रहो, भिखमंगे हो और भिखमंगे रहोगे। और तुम्हारे हाथ का भिक्षापात्र न कभी भरा है और न कभी भरेगा। मालिक से ही भरना होगा।
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज
कोउ सुनै राग अरु रागिनी, कोउ सुनै जु कथा पुरान
जन दूलन अब का सुनै, जिन सुनी मुरलिया तान
कहते हैं, मैंने तो सुन ली उसकी मुरली की तान। मैंने तो उसका अनाहत नाद सुन लिया। मैं तो रंग गया उसके आनंद में। तुम्हें भी पुकारता हूं कि तुम भी अब जगो। घड़ी आ गई। प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया! अब तुम भी ओढ़ो प्रेम के रंग में, प्रेम के रस में रंगी गई चदरिया को। तुम भी रंगो अब प्रभु की प्रीति में, भक्ति में भाव में। मैंने तो सुन ली उसकी मुरलिया। मैंने तो उसका अनाहत नाद सुन लिया। और जब से उसका नाद सुना है तब से सब नाद फीके हो गए। जब से उसका संगीत सुना है तब से और सब संगीत केवल शोरगुल हो गए। जिसने उसकी रोशनी देखी उसके लिए सब रोशनियां अंधेरी हो जाती हैं। जिसने उसके आनंद को अनुभव किया उसके लिए सारे सुख दुखों जैसे हो जाते हैं। जिसने उसका फूल खिला देखा उसके लिए सारे फूल व्यर्थ हो गए, कांटे हो गए। जिसने उस अमृत

जीवन की एक बूंद पी ली उसके लिए बाकी सारे जीवनों में कोई सार न रहा, अर्थ न रहा। उसके लिए और सब जीवन मृत्युवत हो गए।
कोउ सुनै राग अरु रागिनी, ...
दूलन कहते हैं किसी को मैं सुनता हूं राग सुनते, किसी को रागिनी सुनते। कोई वीणा सुन रहा है, कोई और-और संगीतों में लीन है।
... कोउ सुनै जु कथा पुरान
कोई कथाएं सुन रहा है प्रभु की, कोई पुराण पढ़ रहा है। लोग शास्त्रों में डूबे हैं, शब्दों में डूबे हैं, ध्वनियों में डूबे हैं।
जन दूलन अब का सुनै, ----
लेकिन अब मैं क्या सुनूं? मुझे सुनने को कुछ भी नहीं बचा, जब से उसे सुना।
... जिन सुनी मुरलिया तान
उसका अनाहत नाद मैंने सुन लिया है।
एक नाद है इस अस्तित्व का। जब तुम परिपूर्ण शांत हो जाते हो, शून्य हो जाते हो तब सुनाई पड़ता है। जब तुम्हारे चित्त में कोई भी शोरगुल नहीं रह जाता, विचारों की दौड़-धूप नहीं रह जाती, विचारों का सतत प्रवाह जब अवरुद्ध हो जाता है, जब तुम्हारे भीतर सन्नाटा होता है--बस सन्नाटा! न शब्द बनते, न विचार, न वासना, न भाव, न कल्पना, न स्मृति उठती! जब तुम्हारे भीतर सारा प्रवाह क्षीण हो जाता है चित्त का, चित्त-वृत्ति निरोध हो जाता है जब, जब तुम्हारे भीतर बस तुम ही होते हो, जैसे खाली दर्पण, जिस पर कोई प्रतिबिंब नहीं बनता, वैसी अवस्था में तुम्हें वह नाद सुनाई पड़ता है जो इस अस्तित्व का नाद है; जो इस अस्तित्व के प्राणों में समाया हुआ है, जो इस अस्तित्व के हृदय की धड़कन है, जो इस अस्तित्व की श्वासों की हलन-चलन है। उस नाद को अनाहत नाद कहा है।
अनाहत इसलिए कि वह दो चीजों के टकराने से पैदा नहीं होता, आहत नहीं है। तबला बजाओ तो दो चीजें टकरा गईं, हाथ तबले से टकराया। वीणा बजाओ तो दो चीजें टकरा गईं, अंगुलियों ने तार छेड़े। वह अनाहत नाद है। वह दो चीजों के टकराने से नहीं होता क्योंकि उस शून्य में एक ही है, दो नहीं हैं। वह एक की ही मौज है। वह उस एकाकी का नृत्य है। वह एकांत संगीत है। उसको ही काव्य की भाषा में उसकी मुरली की तान कहा है। वह बज ही रही है सतत। जिन्होंने जाना है उन्होंने तो ऐसा जाना कि यह सारा अस्तित्व उसी नाद से बना है, उसी नाद से निर्मित है, उसी नाद का सघन रूप है; लेकिन चुप होना सीखना पड़े, मौन होना सीखना पड़े। जितनी सूक्ष्म बात सुननी हो उतनी ही गहराई मौन की होनी चाहिए। और जब परम मौन फलित हो जाए तो ही तुम परम संगीत भी सुन सकोगे। वह तुम्हारे भीतर बज रहा है, तुम्हारे बाहर भी बज रहा है। हम उसी के महोत्सव के अंग हैं।
धरती जब डूबे सागर में,
एकाकार प्रलय होती है।
डूब चुका हूं तुममें इतना,
जितना स्वर में लय होती है।

तेरी सुधियों के सागर में भीग गया है तन मन सारा, सांसों की असीम गहराई मेरा डूबा हुआ किनारा।
चंचल लहरों सा आंचल ही मेरे जीवन की गतिमयता, मृत्यु अतल सी मधुर गोद में महामिलन की अमर सफलता।

त्याग प्रेम की अमर कहानी,
जिसमें हार विजय होती है।
धरती जब डूबे सागर में,
एकाकार प्रलय होती है।
डूब चुका हूं तुममें इतना,
जितना स्वर में लय होती है।

बाती जले शलभ भी जलता दीपक तो आधार पात्र है,
अमर प्राण जन्मों का साथी नश्वर तन व्यवहार मात्र है।
तन के हित ही सीमाएं हैं हृदय मुक्त अंबर असीम है, सीमाहीन हुआ जब तन भी सीमा बन जाती असीम है।

भेद नहीं रहता जब मन में,
काया तभी विलय होती है।
धरती जब डूबे सागर में,
एकाकार प्रलय होती है।
डूब चुका हूं तुममें इतना,
जितना स्वर में लय होती है।

अनजाने पनघट तक तेरे आया रीता कलश उठाए,
तुमने चितवन की डोरी से बांध प्रेम में प्राण डुबाए।
अब तो कुछ ऐसा लगता है पनघट से ही घट का जीवन,
पनघट से ही घट की सुंदरता घट से ही पनघट का यौवन।

पता नहीं था मुझको पहले
प्रेम प्यास अक्षय होती है।
धरती जब डूबे सागर में,
एकाकार प्रलय होती है।
डूब चुका हूं तुममें इतना
जितना स्वर में लय होती है।
जैसे स्वर में लय डूबी है; लय को स्वर से अलग नहीं किया जा सकता। जैसे किरण से रोशनी को अलग नहीं किया जा सकता ऐसे जब तुम अपने भीतर के शून्य में डूब जाते हो। एक तुम्हारे भीतर महाप्रलय हो जाती है। अहंकार गया और गया सदा को। और गया सारा शोरगुल और सारा बाजार अहंकार का। शून्य रहा; उसी शून्य में पूर्ण का पदार्पण होता है।
डूब चुका हूं तुममें इतना,
जितना स्वर में लय होती है।
धरती जब डूबे सागर में,
एकाकार प्रलय होती है।
जैसे धरती सागर में डूब जाए और प्रलय हो जाए, ऐसे ही तुम जब अपने ही शून्य में लीन हो जाते हो तब अनाहत सुनाई पड़ता है; तब उसकी मुरली की तान सुनाई पड़ती है। मंदिरों में तुमने कृष्ण की मूर्ति बना रखी है मुरली लिए हुए। लाख करो पूजा वहां, कुछ भी न होगा। वह तो प्रतीक है। वह तो केवल काव्य प्रतीक है, प्यारा प्रतीक है। समझो-बूझो तो बड़ा प्यारा है। और ऐसे ही सिर पटकते रहो, आरती उतारते रहो तो बिल्कुल व्यर्थ है। वह अनाहत नाद का प्रतीक है।
कृष्ण के साथ राधा का नाम ऐसे जुड़ा है जैसे काया के साथ छाया जुड़ी होती है। लेकिन शास्त्र कहते हैं कि राधा कब हुई, कहना मुश्किल है। पुराने शास्त्रों में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। राधा का उल्लेख बहुत बाद में शुरू हुआ। मध्ययुग के संतों ने राधा का उल्लेख करना शुरू किया। और अब तो राधा उतनी ही ऐतिहासिक मालूम होती है जितने कृष्ण। लेकिन कभी उसका नाम भी नहीं था। राधा कभी हुई ऐसा नहीं है, राधा प्रतीक है। राधा बड़ा मीठा प्रतीक है। जिन्होंने भीतर के अनाहत नाद में डुबकी लगाई है वे कुछ ऐसा अर्थ करते हैंः वे कहते हैं, राधा धारा का उलटा रूप है, केवल प्रतीक है। धारा बहती है बाहर की तरफ, नीचे की तरफ। गंगा उतरी हिमालय से, चली सागर की तरफ। छोड़ दिया स्रोत, गंगोत्री छोड़ दी। चली गंगा सागर की तरफ। धारा बहती है दूर की तरफ। गंतव्य उसका बहुत दूर है। धारा अपने स्रोत से दूर होती जाती है, प्रतिपल दूर होती जाती है।
अनाहत नाद को सुननेवाले कहते हैं कि धारा को उल्टा करके राधा शब्द बनाया है। जब तुम्हारी चेतना की धारा बाहर की तरफ न बह कर भीतर की तरफ बहती

है, जब तुम गंगा-सागर की तरफ न जाकर गंगोत्री की तरफ चल पड़ते हो, जब तुम अपने में ही डुबकी मारने लगते हो तब तुम्हारे भीतर राधा का जन्म होता है।
धारा राधा बन जाती है। और जैसे ही तुम राधा बने कि कृष्ण से मिलन है; कि सुनी उसकी बांसुरी; कि सुनाई पड़ी उसकी तान; कि दिखाई पड़ा उसका नृत्य। जिन्हें भी खोजना है अनाहत नाद को उन्हें राधा बनना होगा।
राधा कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं है। राधा प्रत्येक भक्त के भीतर घटने वाली घटना का नाम है। राधा की अवस्था भक्त की चरम अवस्था है। बस, कृष्ण से मिलने के क्षण भर पूर्व राधा का जन्म होता है--बस क्षण भर पूर्व! क्षण भर राधा नाचती है कृष्ण के आस-पास, आती-जाती पास, आती-जाती पास, आती- जाती पास और फिर कृष्ण में लीन हो जाती है। जिस दिन तुम अपनी ही चेतना में, अपने ही मूलस्रोत में लीन हो जाते हो उस दिन प्रलय घट गई, अहंकार गया। और जहां अहंकार नहीं है वहीं वह परम संगीत है। तुम्हारा अहंकार व्याघात है, व्यवधान है। तुम्हारे अहंकार के कारण छंद बंध नहीं पा रहा है, टूट-टूट जाता है। गीत जम नहीं पाता, उखड़-उखड़ जाता है। राग बैठ नहीं पाता, बांसुरी बज नहीं पाती। तुम्हारा अहंकार बांसुरी में भरा है, बजे बांसुरी तो कैसे बजे? अहंकार से खाली हो बांसुरी, बस पोली पोंगरी रह जाए। कबीर ने कहा कि मैं तो बांस की पोली पोंगरी हूं। और जब से बांस की पोली पोंगरी हो गया हूं तब से अहर्निश, दिन और रात उसका संगीत मुझसे बह रहा है।
दूलन यह परिवार सब, नदी-नाव-संजोग
उतरि परे जहं-तहं चले, सबै बटाऊ लोग
यह संसार, यह परिवार, प्रियजन, मित्र, यह भीड़-भाड़, यह संबंधों का विस्तार नदी-नाव संयोग है। तुम नदी पार होने गए, नाव पर बैठे, और भी बहुत लोग बैठे। फिर थोड़ी वार्ता भी हुई, जान-पहचान भी हुई। पूछा, कहां से आते हैं, कहां जाते हैं! नाम-धाम, पता-ठिकाना। मैत्री भी बन गई शायद, शत्रुता भी निर्मित हो गई शायद। सब हो गया। और देर नहीं लगनी है, जल्दी ही नाव दूसरे किनारे लग जाएगी। और फिर सब बटोही उतर पड़े और अपनी-अपनी राह चल पड़े। जन्म नाव में बैठना है, मृत्यु नाव से उतर जाना है। बीच में सब मित्रताएं हैं, शत्रुताएं हैं। कितना हम फैलाव नहीं कर लेते! कितना हम पसारा नहीं कर लेते! कितनी आसक्तियां, कितने मोह, किस-किस भांति हम एक-दूसरे से बंध नहीं जाते, एक-दूसरे को बांध नहीं लेते! कितने बंधन! और कितना कष्ट पाते हैं उन बंधनों से। और यह जानते हुए कि मौत आती होगी। यह लगी नाव किनारे, यह लगी नाव किनारे--और उतर जाएंगे बटोही। न जन्म के पहले उनसे हमारा कुछ संबंध था, न मृत्यु के बाद कोई संबंध रह जाएगा। न हम उन्हें पहले जानते थे नदी में बैठने के पहले, नाव में उतरने के पहले, न फिर कभी जानेंगे। मगर थोड़ी देर को घड़ीभर को साथ, और हमने कितना संसार रचा लिया! दूलन यह परिवार सब, नदी-नाव-संजोग
उतरि परे जहं-तहं चले, सबै बटाऊ लोग

फूलों को मैंने खिलते और बिखरते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं उपवन तेरा मधुमास बना रह पाएगा।

होते हैं जहां फूल लाखों पतझार वहीं पर आता है,
पतझार जहां डसता होता मधुमास वहीं मुस्काता है।
यह परिवर्तन की धूप-छांह जग जीवन का शाश्वत क्रम है, केवल मुसकाने की उमंग सपनों में पलता विभ्रम है।
सपनों को मैंने बनते और टूटते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं हर स्वप्न तुम्हारा पूरा ही हो जाएगा।

जिन नयनों में मधुस्वप्न भरे उनमें ही आंसू पलते हैं, जिन अधरों से है तृप्ति सुखद वे ही तृष्णा में जलते हैं।
सपने तो रूठे नयनों से पर चुका न आंसू का सागर,
खारी जल बढ़ता रहा और फूटी केवल रीती गागर।

गागर को मैंने भरते और फूटते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं यह कलश तुम्हारा सदा भरा रह पाएगा।

जो भी जन्मा इस धरती पर पैदा होते ही रोया है,
जागा जीवन भर रोते ही दो पल न चैन से सोया है।
सुख रूप और श्रृंगार सदा महका दो दिन फिर चला गया,
जिसने अभिमान किया निज पर वह अहं स्वयं से छला गया।

सूरज को मैंने चढ़ते और उतरते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं अभिमान तुम्हारा तुम्हें अमर कर पाएगा।
फूलों को मैंने खिलते और बिखरते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं उपवन तेरा मधुमास बना रह पाएगा।
वसंत आते हैं, जाते हैं। जीवन आता है, बिखरता है। फूल खिलते हैं, धूल में मिल जाते हैं। इस क्षणभंगुरता को स्मरण रखो, सदा स्मरण रखो। क्योंकि इस क्षणभंगुरता का स्मरण बना रहे तो शाश्वत की खोज पैदा हो सकती है। क्योंकि क्षणभंगुर तृप्त नहीं करता। जो आज है और कल नहीं हो जाएगा, उसके होने में सार भी क्या है! अभी जो हाथ में है और अभी जो हाथ से छूट जाएगा, क्षण भर को इसे पकड़ रखने में अर्थ भी क्या है? पानी के बबूले हैं फिर, बने और मिटे। इनका भरोसा क्या है? थोड़ी देर के सपने हैं और टूटे। और फिर कितने ही प्रीतिकर सपने क्यों ने हों, जब टूट ही जाने हैं तो एक बात निश्चित है, वही टूटता है जो नहीं है।
यह धर्म की शाश्वत आधारशिलाओं में से एक है--वही टूटता है जो नहीं है।
जो है वह सदा है। जो है वह न तो आता और न जाता। जो आता है जाता है, वह नहीं है। इसलिए आते-जाते को माया कहा है। माया का इतना ही अर्थ हैः लगता है कि है। बस लगता है कि है। ठीक से लग भी नहीं पाता कि हाथ से छिटक जाता है, बिखर जाता है।
फूलों को मैंने खिलते और बिखरते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं उपवन तेरा मधुमास बना रह पाएगा।

सपनों को मैंने बनते और टूटते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं हर स्वप्न तुम्हारा पूरा ही हो जाएगा।

गागर को मैंने भरते और फूटते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं यह कलश तुम्हारा सदा भरा रह पाएगा।

सूरज को मैंने चढ़ते और उतरते दोनों देखा है,
कैसे कह दूं अभिमान तुम्हारा तुम्हें अमर कर पाएगा।
जरा गौर से देखो! जरा चारों तरफ आंख खोल कर देखो! जो है वह छायाओं की तरह भागा जा रहा है। जो अभी था, अभी नहीं है। जो अभी हो गया है, अभी नहीं हो जाएगा। यहां क्या पकड़ने योग्य है? यहां क्या छाती से लगाने योग्य है? यहां जिसे तुम छाती से लगा रहे हो वह भी नहीं बचेगा और छाती भी नहीं बचेगी। न हाथ रह जाएंगे न जिसे तुमने हाथों में पकड़ रखा है वह रह जाएगा। यह बात अगर गहरी बैठ जाए, तीर की तरह चुभ जाए तो जगाने के काम आती है।
इस जगत में केवल वे ही जागते हैं जो इस जगत की क्षणभंगुरता को देख लेते हैं और क्षणभंगुरता में व्यर्थता को जान लेते हैं। जब संसार असार मालूम पड़ता है तो फिर चैन नहीं पड़ती। फिर एक बेचैनी पैदा होती है कि सार कहां है? फिर हम क्या खोजें? फिर हम किस शरण में जाएं? फिर हम किस छाया को खोजें जो हमें छोड़ेगी नहीं? उसी घड़ी में कोई जाता है--बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। उस क्षण कोई खोजता है किसी बुद्ध का साथ। उस क्षण कोई खोजता है बुद्धों की संगति। उस क्षण कोई खोजता है बुद्धों का सार क्या है, उनके जागरण का मूल सूत्र क्या है, धर्म क्या है! जब तक तुम सपनों पर भरोसा करोगे, सत्य की खोज नहीं होगी शुरू। जब

तक सपनों को ही सत्य माने रहोगे, कैसे सत्यों को खोजोगे? सपना सपना दिखाई पड़े, सत्य की खोज होनी अनिवार्य है, अपरिहार्य है; फिर बचा नहीं जा सकता। दूलन यह जग आइके, काको रहा दिमाक
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक
दूलन कहते हैं, इस संसार में आकर किसकी रही? कौन बचा पाया अपनी लाज? कौन अपने अहंकार को संभाल पाया? किसका सिर ऊंचा रहा?
दूलन यह जग आइके, काको रहा दिमाक
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक
बड़े-से-बड़े सिर, सिकंदरों के सिर भी गिरे धूल में और मिले धूल में। कितने अकड़ कर चलते थे ये लोग! कैसी इनके हाथों में नंगी तलवारें थीं! कितना दंभ था! चलते थे तो पृथ्वी कंपती थी। हंसती होगी पृथ्वी क्योंकि पृथ्वी तो भलीभांति जानती है कि मुझसे ही बने हो और मुझमें ही मिल जाओगे। थोड़ी देर उछल लो, कूद लो, फिर कब्र में सो जाना है। मेरे ही मिट्टी के अंग हो, मुझ पर ही अकड़ कर चल रहे हो!
लेकिन फिर भी भ्रांति जारी है। कितने सिकंदर आए कितने सिकंदर गए, पर भ्रांति नहीं टूटती। हर नया बच्चा फिर वही भ्रांति लेकर आ जाता है। हम सीखते ही नहीं। शायद मनुष्य के जीवन में सबसे बड़े रहस्य की बात यही है कि सब तरफ मृत्यु को स्मरण दिलाने वाली घटनाएं घट रही हैं। यह पत्ता अभी हरा था और पीला होकर गिर गया, मगर तुम्हें होश नहीं आएगा। तुम इस पीले पत्ते को कुचलते हुए, पैर से रौंदते हुए चले जाओगे। तुम्हें याद भी न आएगा कि यह पीला पत्ता तुम्हारी पूरी कथा कह गया है।
यह अरथी गुजर गई राह से। कल इसी आदमी से रास्ते पर जयरामजी भी हुई थी।
आज यह आदमी समाप्त हो गया। ले चले लोग इसे बांध कर मरघट की तरफ। और तुम राह के किनारे खड़े होकर बड़ी सांत्वना प्रकट करते हो, बड़ी संवेदना! कहते, बड़ा बुरा हुआ। कच्ची गृहस्थी थी, बच्चों का क्या होगा? जो मर गया उसके प्रति तुम बड़ी संवदेना प्रकट करते हो, मगर तुम्हें एक क्षण को भी याद नहीं आती कि कल तुम्हारी अरथी ऐसे ही गुजरेगी और दूसरे लोग राह के किनारे खड़े होकर तुम्हारे प्रति संवेदना प्रकट करेंगे--तुम्हारी कच्ची गृहस्थी के प्रति, तुम्हारे बच्चों के प्रति। जरा कुछ अपनी तो याद करो! हर अरथी तुम्हारी अरथी है, अगर समझ हो। और हर पीला पत्ता तुम्हारी मौत है, अगर कुछ समझ हो। हर पानी का बबूला जब टूटता है, तुम्हीं टूटते हो।
अंग्रेजी में कहावत है कि मत भेजो पूछने किसी को कि चर्च में घंटियां किसके लिए बजती हैं! क्योंकि जब कोई ईसाई मरता है तो चर्च की घंटियां बजती हैं खबर देने को कि कोई मृत्यु हो गई। कहावत है--मत भेजो किस को पूछने कि चर्च की घंटियां किसके लिए बजती हैं? तुम्हारे लिए ही बजती हैं।
जो व्यक्ति ऐसा देखने लगे--हर पीला पत्ता मेरी कथा, मेरी व्यथा; हर अरथी मेरी अरथी, हर चिता मेरी चिता--वह कितनी देर तक सपनों में खोया रहेगा? कितनी देर तक? उसे जागना ही होगा। यह दंश ऐसा होगा कि जगा देगा। यह पीड़ा ऐसी होगी कि उसे आंख खोल कर उठ कर बैठ जाना होगा। उसे सत्य की खोज पर निकलना होगा।
यह इंद्रधनुष के रंगों का संसार मिले न मिले तो क्या।
जब स्वयं कल्पना झूठी है साकार मिले न मिले तो क्या।

जितना मोहक लघु चित्र जगत्,
उतना ही विस्तृत शून्य गगन।
वैसे जग भी विस्तृत लेकिन,
उसका उतना जो जहां मगन।

इस जग में उल्टी अजब रीति,
रोते देखा पाने वाला।
सब लुटे यहां आकर लेकिन,
हंसते देखा खोने वाला।

इस महाशून्य की सीमा सा विस्तार मिले न मिले तो क्या।
जब लुटना है तो वैभव का भंडार मिले न मिले तो क्या।

क्या है यदि जग के हर सुख से,
चाहों की झोली भर जाए।
शूलों के बो देने पर भी,
उपवन फूलों से मुस्काए।

पर फूल सभी दो दिन महके,
आए मुरझा कर चले गए।
जिसने भी प्यार किया जग में,
वह सदा अंत में छले गए।

मधुवन के सुंदर फूलों सा फिर प्यार मिले न मिले तो क्या।
जब जीवन ही क्षणभंगुर है अधिकार मिले न मिले तो क्या।
नयनों ने जिसको कहा सत्य,
अंतः ने उसको कहा झूठ।
इस झूठ सत्य के विभ्रम में,
हर सत्य हाथ से गया छूट।

कब सांस रही कब प्यास रही,
कब जीने की अभिलाष रही।
धोखा ही केवल रहा सत्य,
तृष्णा मरघट के पास रही।

तृष्णा में डूबे नयनों कोशृंगार मिले न मिले तो क्या।
जब छलना ही है जगत सत्य आधार मिले न मिले तो क्या।
यहां पाकर भी क्या होगा? यहां पाने वाले और न पाने वाले सब तो बराबर हो जाते हैं। मृत्यु तो दोनों को नंगा कर जाती है, दोनों के हाथ रिक्त कर जाती है।
इस महाशून्य की सीमा सा विस्तार मिले न मिले तो क्या।
जब लुटना है तो वैभव का भंडार मिले न मिले तो क्या।
सब बराबर है। यहां सम्राट और प्यादे और पिद्दी, सब बराबर हैं। थोड़ा-सा शोरगुल है, थोड़ा सा उपद्रव है, थोड़ी सी कहानी है। पूरी भी नहीं हो पाती कहानी और लोग पूरे हो जाते हैं। किसकी कहानी कब पूरी हो पाती है? कौन अपनी आकांक्षाएं पूरी कर पाता है? कौन अपनी अभीप्साएं पूरी कर पाता है? कौन कह सकता है कि मेरी आकांक्षाएं आ गईं पूर्णता पर? कितने ही दौड़ो, तुम्हारे और क्षितिज के बीच की दूरी बराबर रहती है। कितने ही दौड़ो, तुम्हारी और तुम्हारी वासना के बीच की दूरी बराबर उतनी की उतनी रहती है--मिले तो, न मिले तो।
यह इंद्रधनुष के रंगों सा संसार मिले न मिले तो क्या।
जब स्वयं कल्पना झूठी है साकार मिले न मिले तो क्या।
इंद्रधनुष सा संसार है यह। दीखता खूब प्यारा, हाथ कुछ भी नहीं लगता।
इंद्रधनुषों पर मुट्ठी बांधी, हाथ कुछ भी नहीं लगता। शायद हाथ थोड़ा भीग जाए क्योंकि इंद्रधनुष कुछ भी नहीं है, हवा में लटकी हुई पानी की छोटी- छोटी बूंदें; जिनसे सूरज की किरणें गुजर गईं और जाल रच गईं रंगों का। मरते वक्त हाथ गीला भी नहीं होता; इंद्रधनुष में तो हाथ गीला भी हो जाएगा। मरते वक्त हाथ बिल्कुल खाली और बिल्कुल रूखा होता है। कितने इंद्रधनुष पकड़े, कितने इंद्रधनुषों के पीछे दौड़े! छोटे बच्चे ही तितलियों के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं, बूढ़े भी तितलियों के पीछे दौड़ रहे हैं। छोटे बच्चों और बूढ़ों में कोई भेद नहीं है। छोटे बच्चे भी खिलौनों में उलझे हैं, बूढ़े भी खिलौनों में उलझे हैं। खिलौने किन्हीं के छोटे हैं, किन्हीं के बड़े हैं, बस इतना ही भेद है। छोटे बच्चे भी उसी अहंकार की यात्रा पर हैं

जिस पर बूढ़े भी। छोटे बच्चे क्षमा किए जा सकते हैं, उनका अनुभव क्या! मगर बूढ़े जो मौत के कगार पर आ गए, जिनका एक पैर कब्र में है, वे भी अभी आपा-धापी में लगे हैं--और थोड़ा छीन लें और थोड़े बड़े पद पर हो जाएं और थोड़ी प्रतिष्ठा और थोड़ा यश मिल जाए और थोड़ा नाम हो जाए और थोड़ी अकड़ रह जाए। थोड़ा सोचना।
थोड़ा विचारना। दौड़ने के पहले थोड़े ठिठकना।
मधुवन के सुंदर फूलों सा फिर प्यार मिले न मिले तो क्या।
जब जीवन ही क्षणभंगुर है अधिकार मिले न मिले तो क्या।

तृष्णा में डूबे नयनों को श्रृंगार मिले न मिले तो क्या।
जब छलना ही है जगत सत्य आधार मिले न मिले तो क्या।
एक बार यह दिखाई पड़ जाए, अपना अंत दिखाई पड़ जाए तो तुम संन्यस्त हो गए।
इसे मैं संन्यास कहता हूं; यही दीक्षा है। मृत्यु दीक्षा देती है मनुष्य को, और कोई दीक्षा नहीं दे सकता। इसलिए मृत्यु गुरु है और इसीलिए गुरु को मृत्यु कहा है। आचार्यो मृत्युः।
गुरु को मृत्यु कहा है क्योंकि मृत्यु से बड़ा और कोई गुरु नहीं है। नचिकेता ने ही मृत्यु के देवता से दीक्षा नहीं ली थी, सभी नचिकेताओं को मृत्यु के देवता से ही दीक्षा लेनी पड़ती है। जो भी कभी सत्य की खोज पर निकला है उसे मृत्यु से ही दीक्षा लेनी पड़ती है। मृत्यु की दीक्षा के बिना द्वार ही नहीं खुलता अमृत का। तुम मृत्यु को पहचानो। गीता और कुरान और बाइबिल पढ़ने से कुछ भी न होगा, मृत्यु को पहचानो।
अक्सर तो ऐसा होता है कि गीता, कुरान, बाइबिल वैसे लोग पढ़ते हैं जो मृत्यु से डरे हुए हैं। मृत्यु के डर के कारण पढ़ते हैं। मृत्यु से बचने के लिए पढ़ते हैं कि कोई आश्वासन दे दे कि आत्मा अमर है। कि कहीं भरोसा भीतर बैठ जाए कि मुझे नहीं मरना है; कि मैं तो रहूंगा। इसलिए लोग शास्त्र पढ़ते हैं। शास्त्र पढ़कर सांत्वना खोजते हैं। यह तो उल्टी बात हो गई।
मृत्यु को पढ़ो तो शास्त्रों को समझ सकोगे। शास्त्रों को पढ़ा तो कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम मृत्यु को भी झुठलाने लगो। कहीं ऐसा न हो जाए कि मृत्यु और अपने बीच एक पर्दा बना लो और वही पर्दा फिर तुम्हारे और परमात्मा के बीच पर्दा हो जाएगा। मृत्यु को तो देखना ही होगा आंख भर कर। मृत्यु इस जीवन का सबसे बड़ा सत्य है--सबसे सुनिश्चित, सर्वाधिक सुनिश्चित। और कुछ निश्चित नहीं है, बस मृत्यु ही निश्चित है। धन मिलेगा नहीं मिलेगा, पद मिलेगा नहीं मिलेगा, कोई कुछ कह नहीं सकता। एक बात निश्चित है कि मृत्यु मिलेगी। कुछ भी उपाय करो, मृत्यु मिलकर ही रहेगी। इधर जाओ कि उधर, भिखारी रहो कि सम्राट, मृत्यु मिल कर रहेगी। मृत्यु कभी अपना वचन नहीं तोड़ी है, उसका भर भरोसा है।
इस जगत में अगर किसी पर श्रद्धा करनी हो तो मृत्यु पर ही करनी चाहिए क्योंकि मृत्यु कभी किसी को धोखा नहीं देती। आती ही है, कभी दगा नहीं करती। तुम कहीं भी छिपो, खोज लेती है। कभी वचन-भंग नहीं करती। इस मृत्यु के महासत्य को जो पहचान लेता है आंख भर कर, आंख मिला कर जो देख लेता है मृत्यु की आंखों में, उसके जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है; वही क्रांति संन्यास है। फिर वह घर में रहे, बाजार में रहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। मृत्यु की याद ने उसकी दौड़-धूप बंद कर दी, उसकी आपा-धापी गई, उसकी महत्वाकांक्षा मर गई। मिला तो ठीक, नहीं मिला तो ठीक। सफल हुए तो ठीक, असफल हुए तो ठीक। यश हुआ तो ठीक, अपयश हुआ तो ठीक। आएगी कल मौत, सब पर पानी फेर जाएगी। यशस्वी, अयशस्वी, सब धूल चाट जाएंगे।
ठीक कहते हैं दूलन--
दूलन यह जग आइके, काको रहा दिमाक
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक

जो दर्पण नयन जला डाले,
क्यों उससे आंखें चार करे।
उसको हंसकर अपनाए क्यों,
जिसको न हृदय स्वीकार करे।

अभिलाषाओं का गला घोंट,
कोई कब तक जी सकता है।
विष से प्याला भरकर कोई,
क्या अमृत कह पी सकता है।
छल सकती हैं प्यासी आंखें, पर हृदय नहीं छल सकता है।
जल सकता बिना तेल दीपक,
बिन बाती कब जल सकता है।
विष को विष कहकर पी जाए,
क्यों सुधा समझ कर प्यार करे।

माना जीवन नाटक है पर,
सब मनचाहे का खेल यहां।
हर गलत भूमिका लेने पर,
हो जाता सब बेमेल यहां।
विष अंतर में मुख में पय हो, वह छलनाओं की गागर है।
जो शूलों को भी फूल कहे,
वह धोखे का सौदागर है।
क्यों स्नेह करे डस कर उससे, जो धोखे का व्यापार करे।

यह रंग-बिरंगी सी दुनिया, किसके घर सब कुछ आ पाए।
उसकी होती उतनी दुनिया,
जिसके मन जितनी भा जाए।
मनचाहे का सब रंग ढंग,
मनचाहे का हंसना रोना।
है प्यार किसी को माटी से,
तो चाह रहा कोई सोना।
जब अपने मन का दुख सुख है,
तब क्यों कृत्रिम व्यवहार करे।
जो दर्पण नयन जला डाले,
क्यों उससे आंखें चार करे।
उसको हंसकर अपनाए क्यों,
जिसको न हृदय स्वीकार करे।
.जरा आंख मिलाओ मौत से और तुम्हारा हृदय तत्क्षण एक इनकार से भर जाएगा--इनकार उस सबसे जो व्यर्थ है; इनकार उस सबसे जो मौत छीन लेगी; इनकार उस सबसे जिसमें कल तुम इतने रस-लिप्त होकर दौड़ रहे थे। तुम्हारा हृदय इनकार कर देगा। तुम्हारी अंतर्वाणी कह देगी कि मत व्यर्थ में समय गंवाओ। बहुत दौड़ लिए, अब रुको। बहुत खोज लिए बाहर, अब भीतर खोजो।
उसको हंस कर अपनाए क्यों,
जिसको न हृदय स्वीकार करे।
फिर झूठी हंसी, फिर झूठी औपचारिकता, फिर झूठे ढोंग गिरने लगते हैं, अपने से गिरने लगते हैं।
विष को विष कह कर पी जाए,
क्यों सुधा समझ कर प्यार करे।
जीता तो आदमी तब भी है--जान कर कि मौत आ रही है। लेकिन तब वह जानता है
कि विष विष है, अमृत नहीं है। यह जीवन मृत्यु का ही एक विस्तार है। मौत आखिर में नहीं आती सत्तर साल के बाद, जन्म के क्षण से ही आनी शुरू हो जाती है। मौत सत्तर साल पर फैली हुई है। यह पूरा जीवन मृत्यु की ही लंबी श्रृंखला है; धीमी-धीमी, आहिस्ता-आहिस्ता घटती हुई मौत है।
क्यों स्नेह करे डर कर उससे,

जो धोखे का व्यापार करे।
इस जीवन में डरे-डरे, भयभीत, घबड़ाए हुए क्यों हम जिएं? डर क्या है? जहां सभी छिन जाना है वहां डरने योग्य भी क्या है?
तुम्हें यह पता है, पिछले दो महायुद्धों में मनोवैज्ञानिक बहुत चकित हुए यह बात जान कर कि सैनिक युद्ध पर जब तक जाते नहीं तब तक डरते हैं; लेकिन जैसे ही युद्ध के मैदान पर पहुंच जाते हैं, उनका सब डर समाप्त हो जाता है। यह चकित होने वाली बात थी। होना तो उल्टा था। उलटा होता तो तर्कयुक्त होता। अपनी छावनियों में तो डरते हैं मौत से, घबड़ाते हैं कि हमारा नंबर न आ जाए जाने का। छाती धड़कती रहती है। ठीक से सो नहीं सकते। रोज-रोज सैनिक जा रहे हैं, आज नहीं कल हमारा नंबर आता होगा। लेकिन जब नंबर आ जाता है और जब चल ही पड़ते हैं और जब पहुंच ही जाते हैं रणक्षेत्र में जहां गोलियां चल रही हैं, बम गिर रहे हैं, आग भड़क रही है, लोग मर रहे हैं, लाशें बिछी हैं, वहां जाकर एकदम भय समाप्त हो जाता है।
मनोवैज्ञानिक बहुत चौंके इस बात से। ऐसा क्यों? यहां तो भय बढ़ना चाहिए। भय बिल्कुल समाप्त हो जाता है युद्ध के मैदान पर। कारण स्पष्ट हो गया। कारण यह है कि जब मौत सुनिश्चित ही मालूम हो जाती है तो भय समाप्त हो जाता है। जब तक सुनिश्चित नहीं है तभी तक भय है। जब सामने ही खड़ी है, जब मौत होनी ही है तो अब होगी। तो ठीक है, अब होगी तो होगी! फिर युद्ध के मैदान पर सैनिक ताश भी खेलते हैं। कल जिनके साथ ताश खेले थे, आज वे नहीं हैं, कल शायद हम भी नहीं होंगे, मगर फिर ताश खेलते हैं। शराब भी पीते हैं। रात मस्त होकर नाचते भी हैं, गीत भी गाते हैं। कल सुबह का कोई भरोसा ही नहीं है। खाई-खंदकों में पड़े होते हैं, बम वर्षा हो रही है और गीत गुनगुनाते हैं--प्रेम के गीत, प्रेयसियों के गीत, जगत के सौंदर्य के गीत!
यह चमत्कार कैसे घटता है? गणित सीधा है। कितना ही तर्क के विपरीत मालूम पड़ता हो, मगर गणित सीधा है। जब मौत बिल्कुल निश्चित है तो भय का कोई कारण नहीं रह जाता। और जहां भय नहीं है वहां लोभ नहीं है।
यह तुम ख्याल रखना--भय, लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जितना भयभीत आदमी होता है उतना लोभी। जितना लोभी उतना भयभीत। भय नहीं होता तो लोभ भी नहीं होता। लोभ नहीं होता तो भय भी नहीं होता। दोनों साथ आते हैं, साथ जाते हैं। दोनों का गठबंधन है। दोनों में तलाक नहीं हो सकता। दोनों सदा से भांवर में बंधे हैं।
आदमी डरता जरूर है, डर कर मौत से आंख चुराता है। ऐसे सिद्धांतों की आड़
ले लेता है जिनमें भरोसा है कि आत्मा अमर है। ऐसे सिद्धांतों की आड़ ले लेता है कि भगवान है और भगवान बचाएगा। मैं जरा पूजा कर लूं, सत्यनारायण की कथा करा दूं, यज्ञ-हवन कर लूं, फिर कोई डर नहीं है। मंदिर हो आऊं की हर रविवार को चर्च हो आऊं कि कभी-कभी नमाज पढ़ लूं कि प्रार्थना कर लूं कि कभी वेद दोहरा लूं कि कभी नमोकार मंत्र का स्मरण कर लूं। कुछ उपाय कर लूं छोटे- मोटे, फिर सब ठीक है। थोड़ी परमात्मा की खुशामद कर लूं। उसी को तुम प्रार्थना कहते हो, स्तुति कहते हो। शायद खुशामद काम कर जाएगी। वह तो तारणहार है। वह बचाएगा, वह तो बचावनहार है। उसकी शरण गह लूं। मगर यह भय से हो रहा है सब और लोभ से हो रहा है। और जहां भय है और लोभ है वहां धर्म की किरण नहीं उतरती।
सिद्धांतों-शास्त्रों में तुम क्यों जाते हो? या तो भय के कारण या लोभ
के कारण। या तो नरक का भय या स्वर्ग का लोभ। और जो नरक और स्वर्ग की भाषा में सोच रहा है वही सांसारिक है।
राबिया को एक दिन लोगों ने बाजार में देखा बुखारा के, एक हाथ में मशाल लिए थी और एक हाथ में एक मटकी जल से भरी हुई। और भागी चली जा रही थी पागल की तरह। राबिया को लोग समझते थे कि थोड़ी दीवानी तो है, मगर बड़ी प्यारी औरत थी। जैसे मीरा भारत में, ऐसी राबिया भारत के बाहर। ऐसा किसी ने नहीं देखा था कभी राबिया को भागते, हाथ में मशाल और एक मटकी लिए। लोगों ने पूछाः राबिया कहां भागी जाती हो? पागल तो हम तुम्हें मानते ही हैं, मगर आज पागलपन भी सीमा के बाहर है। यह मशाल किसलिए भरे दिन में? अभी सूरज निकला है, मशाल किसलिए? और यह हाथ में पानी की मटकी क्यों है?

तो राबिया ने कहाः मैं जा रही हूं कि तुम्हारे नरक को डुबा दूं पानी
से और तुम्हारे स्वर्ग में आग लगा दूं। क्योंकि जब तक तुम्हारा स्वर्ग और नरक नष्ट न हो तब तक तुम कभी धार्मिक न हो सकोगे। हे लोगो! तुम्हें यह कहने के लिए मैं बाजार में आई हूं। यह मशाल हाथ में ली है, मटकी हाथ में ताकि कोई न कोई पूछेगा तो मैं उत्तर दे सकूंगी।
नरक और स्वर्ग जब तक हैं तब तक तुम संसारी हो। संसारियों ने ही नरक और स्वर्ग की बात की है। ज्ञानियों ने मोक्ष की बात की है, नरक और स्वर्ग की नहीं। मोक्ष का अर्थ हैः लोभ से और भय से मुक्ति। और उसकी पहली व्यवस्था है--मौत के साथ आंख मिलाओ, भागो मत। मत मानो कि मौत नहीं है। मौत है, अभी तो मौत ही है। अभी कहां आत्मा! अभी तो मौत से आंख मिलाने तक की आत्मा तुम में नहीं है। इतने भी आत्मवान तुम नहीं हो; अभी कहां की आत्मा! आत्मा अभी दूर की मंजिल है। होती होगी, मगर तुम्हारे लिए नहीं है। हुई होगी महावीर को, कबीर को, नानक को, दूलन को, तुमको नहीं है। तुमने तो अभी मौत से भी साक्षात्कार नहीं किया, अमृत से तुम्हारा साक्षात्कार कैसे होगा? मृत्यु की आड़ में ही अमृत छिपा है। मौत से आंख मिलाओ और तुम अमृत से मिलने के हकदार हो गए। मौत को भेंट लो और तब तुम्हारे भीतर ही वह गूंज उठेगी जो वेद कहते हैंः अमृतस्य पुत्रः--कि तुम अमृत के पुत्र हो। मौत को भेंटनेवाला ही अमृत का पुत्र है।
दूलन यह जग आइके, काको रहा दिमाक
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक
दूलन बिरवा प्रेम को, जानेउ जेहि घट माहिं
पांच पचीसौ थकित भे, तेहि तरवर की छांहि
देखना इस गणित को। बूझना इस गणित को। मौत की बात करते-करते एकदम प्रेम
की बात आ गई। मौत की बात करते-करते एकदम यह कैसी छलांग? मगर यह छलांग नहीं है। मौत के बाद बस प्रेम की ही बात रह जाती है करने योग्य। जिसने मौत को देख लिया उसके जीवन में न भय रह जाता न लोभ। उसके जीवन में प्रेम ही बचता है। उसकी सारी जीवन-ऊर्जा प्रेम हो जाती है। उसी प्रेम की पराकाष्ठा प्रार्थना है।
जो भयभीत है, जो लोभी है उसके पास तो ऊर्जा ही नहीं है प्रेम करने की। लोभी आदमी प्रेम नहीं करता, कर ही नहीं सकता। कृपण आदमी को तुमने कभी प्रेम करते देखा? कृपण प्रेम करने से डरता है, भयभीत होता है। मित्र भी नहीं बनाता क्योंकि मित्र बनाने का मतलब है कि कभी जरूरत पड़ जाए मित्र को और मांगने आ जाए। और कहावत है कि जो वक्त पर काम पड़े वही मित्र। ऐसी झंझट क्यों करनी! मित्र भी नहीं बनाता, दोस्ती भी नहीं बनाता। प्रेम के नाते भी खड़े नहीं करता। कोई मांगने आ जाए तो फिर इनकार करना मुश्किल हो जाएगा। अपने को दूर-दूर रखता है।

मैं एक घर में बहुत दिनों तक रहा। गृहपति जो थे, वे न अपने बच्चों से सीधे बोलें, न अपनी पत्नी से सीधे बोलें, न अपने नौकर-चाकर से सीधे बोलें। हमेशा तिरछे, हमेशा भागे-भागे! मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है? न आप कभी पत्नी से प्रेम से बोलते हुए दिखाई पड़ते, न कभी बच्चों के साथ बैठे दिखाई पड़ते। घर में नौकर-चाकर हैं वे भी आदमी हैं, आप उनकी तरफ देखते ही नहीं, जैसे वे हैं ही नहीं। आपको मैं देखता हूं घर से एकदम भागते हुए दुकान की तरफ, दुकान से घर की तरफ आते हुए। दुकान पर भी मैंने आपको देखा, घर पर भी आपको देखा, दुकान पर ही आप कहीं ज्यादा सदय मालूम पड़ते हैं--तुलनात्मक रूप से ही कहना चाहिए।
उन्होंने कहा, बात है, इसके पीछे बात है। जिसदिन भी पत्नी से प्रेम से बोलो कि बस, उपद्रव! कि वह कहती है कि जौहरी की दुकान पर एक नया हार आया है। बस प्रेम से बोले नहीं कि उसने जेब में हाथ डाला नहीं। कि एक नई साड़ी खरीदनी है, कि अब कार पुरानी पड़ गई है, अब नई ले डालो। बच्चों से प्रेम से बोलो कि उनका जेब में हाथ गया। किसी को साइकिल खरीदनी है, किसी को बंदूक खरीदनी है, किसी को कुछ खरीदना है, किसी को कुछ। नौकर-चाकरों की तरफ देखो कि उनकी तनख्वाह बढ़ाने का मौका आ गया। देखा कि उन्होंने कहा कि मालिक, साल

भर हो गया... । तो मैं देखता ही नहीं। मैं अंगीकार ही नहीं करता कि नौकर मौजूद हैं। मैं स्वीकार ही नहीं करता कि वे हैं। मेरी तरफ से मैं उनको मानता ही नहीं कि वे हैं। मैं इस भांति ही अपने को दूर-दूर रख कर बचाता हूं, नहीं तो उनका सबका हाथ मेरी जेब में है।
फिर मैंने कहा कि मेरी समझ में आ गया कि न दुकान पर आप क्यों थोड़े सदय मालूम पड़ते हैं क्योंकि वहां आपका हाथ ग्राहकों की जेब में है। वहां थोड़े मुस्कुराते हैं, वहां थोड़े सदय मालूम पड़ते हैं। घर एकदम कठोर हो जाते हैं। कृपण व्यक्ति प्रेम से भयभीत होता है। और कृपण कोई क्यों होता है? भय
के कारण कृपण होता है। सोचता है धन इकट्ठा कर लूं तो सुरक्षा रहेगी। वृद्धावस्था में काम आएगा, बीमारी में, असमय में, दुर्घटना में। जब कोई साथ नहीं देगा तब भी धन साथ देगा। जब मित्र का काटने लगेंगे तब भी धन साथ देगा। जब बच्चे अपने-अपने रास्तों पर चल पड़ेंगे, तब भी धन साथ देगा। तो धन इकट्ठा कर लूं, धन दुर्दिन का साथी है। भयभीत होकर धन को इकट्ठा करता है। भयभीत होकर लोभी हो जाता है। और जितना लोभी होता जाता है उतना भयभीत होता जाता है क्योंकि फिर उसे डर लगने लगता कि मेरे पास इतना धन है कोई ले न ले! कोई चोरी न हो जाए, कोई बैंक का दिवाला न निकल जाए। कहीं धंधे में घाटा न लग जाए।
यह.जरा तुम देखना, जैसे-जैसे भय से लोभ पैदा हेता है वैसे-वैसे लोभ से
भय पैदा हेता है। जिनके पास बहुत धन है वे सो ही नहीं पाते। क्योंकि रात-दिन उनको चिंता लगी है कि कहीं कोई नुकसान हो जाए। जिनके पास कुछ नहीं है वे ही निश्चित सो जाते हैं। है ही नहीं कुछ, चिंता भी क्या हो! जिसके पास कुछ है वह तो न जागता, न सोता, न जीता, फिकर में ही लगा रहता है, सुरक्षा ही करता रहता है। भय लोभ को बढ़ाता है लोभ भय को बढ़ाता है और तुम्हारी सारी ऊर्जा इन्हीं दो में बह जाती है। प्रेम बने तो कैसे बने? प्रेम का बिरवा रोपो तो कहां रोपो? भूमि नहीं बचती। बस घास-पात ही उग आता है। ये ही कंटीली झाड़ियां लोभ की और भय की। ये ही नागफनी के झाड़ लोभ और भय के फैलते चले जाते हैं। गुलाब उगे तो कहां उगे? जगह नहीं बचती। चंपा खिले तो कहां खिले? जगह नहीं बचती। तुम्हारे पास ऊर्जा भी नहीं बचती, सुविधा भी नहीं बचती, अवकाश भी नहीं बचता। प्रेम के लिए अवकाश चाहिए। प्रेम के लिए ऊर्जा चाहिए। प्रेम के फूल बड़े कोमल फूल हैं। जब तक उनकी साज-सम्हाल न हो, वे नहीं खिलते। और अभागा है वह जिसके जीवन में प्रेम नहीं। क्योंकि उसे छाया न मिलेगी, न उसे अनुभव होगा संतोष का कभी, न परितोष की वर्षा होगी उस पर, न उसे कभी परितृप्ति मालूम होगी। जब खिलते हैं फूल प्रेम के तुम्हारे जीवन में, तभी तुम भरे-पूरे होते हो। तभी तुम्हें लगता है कि आया और व्यर्थ नहीं आया, सार्थक हुआ। जैसे फूल से भर जाता है वृक्ष, लद जाता है दुल्हन की भांति, ऐसे तुम जब फूलों से लद जाते हो प्रेम के तब तुम्हारे जीवन में भी कृतार्थता होती है।
दूलन बिरवा प्रेम को, जानेउ जेहि घट माहिं
इसलिए मृत्यु से एकदम प्रेम की बात शुरू होती है। मृत्यु को तुमने समझ लिया तो भय गया, लोभ गया। भय की जरूरत नहीं है, मृत्यु होगी ही। कितना ही भय करो, बच नहीं सकते तो बचने की जरूरत ही क्या है? प्रयोजन ही क्या है? भागने का अर्थ क्या है? और जब बच ही नहीं सकते और जो भी तुम बचाओगे वह मौत छीन ही लेगी तो फिर लोभ का अर्थ क्या है? फिर लोभ और भय का गणित टूट गया। वह तर्कसरणी व्यर्थ हो गई। और तब तुम्हारे पास इतनी ऊर्जा बच जाती है। जो लोभ में लगी थी, भय में लगी थी वह सारी की सारी ऊर्जा बच जाती है। वह ऊर्जा प्रेम बनती है।

दूलन बिरवा प्रेम को, ...
अब प्रेम के बिरवे को रोपा जा सकता है। अब तुम्हारा हृदय खाली है। अब तुम्हारे इस शून्य में प्रेम फैल सकता है। प्रेम का बिरवा अब जमाओ। अब घड़ी आ गई। ऐसे ही क्षण में प्रेम का बिरवा जमाया जा सकता है।
दूलन बिरवा प्रेम को, जानेउ जेहि घट माहिं
अब जमा लो। क्योंकि जिस घट में यह बिरवा प्रेम का जम जाए...

पांच पचीसौ थकित भे, तेहि तरवर की छांहि
तुम्हारी तो बात ही क्या, तुम्हारी तो सारी थकान मिट ही जाएगी और भी पांच-पच्चीस तुम्हारी छाया में बैठ कर अपनी थकान मिटा लेंगे। तुम तो तृत हो ही जाओगे और पांच-पच्चीस तुम्हारी सुगंध से आंदोलित होकर तृप्त होने लगेंगे। तुम्हारे पास सत्संग जम जाएगा। तुम्हारा दीया क्या जला, औरों के बुझे दीये भी जलने लगेंगे। ज्योति से ज्योति जले! फूल से फूल खिले! तुम्हारे फूल को खिलता देख कर औरों की कलियों के भी प्राण छटपटा उठेंगे। तुम्हारे भीतर वर्षा होती अमृत की देख कर औरों को भी ढांढस बंधेगा हिम्मत बंधेगी कि निकल पड़ें हम भी इस यात्रा पर; कि खोजें हम भी राम को।
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज
किसी सदगुरु को देख कर, किसी उपलब्ध पुरुष को देख कर--जिसके प्रेम के बिरवे में फूल आ गए, तुम्हारे भीतर भी यह खोज पैदा होनी सुनिश्चित है। तुमने जब जग की पीड़ा को,
अपना ही नहीं बनाया है।
जब प्रेम ज्योति की बाती को,
नैनों में नहीं जलाया है।
कैसे समझोगे गीतों का होता मादक आधार है क्या।
जीवन मधुवन करने वाला होता नैसर्गिक प्यार है क्या।

जब तुमने अपनी चाहों में,
सिंदूरी सपने भरे नहीं।
वेदना निरख कर पीड़ित की,
आंसू नयनों से झरे नहीं।
जब भूख तुम्हारे जीवन में,
आराध्य अर्चना की प्रतिमा।
अपनी तृष्णा की तृप्ति मात्र,
जब निज कृतित्व की है गरिमा।
कैसे समझोगे अंतः में होने वाला विस्तार है क्या।
देवत्व दिला सकने वाला निज स्वार्थहीन उपकार है क्या।

यह विश्व एक मधुशाला है,
पर हृदय सिर्फ पीने वाला।
मादक सी बिखरी कण-कण में,
निस्सीम वेदना की हाला।
जब तुमने केवल अधरों से,
विष-घृणा निगलना सीखा है।
जब तुमने केवल निज मन के,
अंगार उगलना सीखा है।
कैसे समझोगे अमृत की होती अनंत रसधार है क्या।
मन में मस्ती भरने वाली भावों की मृदु झंकार है क्या।

हर गीत भावना का मंदिर,
अपने प्राणों का अर्चन है।
हर पंक्ति स्वयं में पावनता,
जग प्रेम ज्योति का वंदन है।
जब तुम्हें नियति से मधुर कंठ,
का दान नहीं मिल पाया है।
जब तुम्हें प्रकृति से हंसने का,
वरदान नहीं मिल पाया है।
कैसे समझोगे गीतों में झंकृत वीणा का तार है क्या।
संगीत अमर करने वाला स्वर संगम का उपहार है क्या।
थोड़ा सा प्रेम तुम्हारे भीतर जगे तो ही तुम्हारे भीतर परमात्मा को पहचानने वाली पहली आंख, पहली बार पलक खुले। तुम प्रेम से भरो तो परमात्मा

है--तो ही परमात्मा है। मत पूछो कोई और प्रमाण। कोई और प्रमाण नहीं है। तुम प्रेम से भरो तो परमात्मा है। प्रमाण ही प्रमाण हैं मगर तुम प्रेम से भरो तो। मैं प्रेम को परमात्मा का एकमात्र प्रमाण कहता हूं।
कैसे समझोगे गीतों का होता मादक आधार है क्या।
जीवन मधुवन करने वाला होता नैसर्गिक प्यार है क्या।

कैसे समझोगे अंतः में होने वाला विस्तार है क्या।
देवत्व दिला सकने वाला निज स्वार्थहीन उपकार है क्या।

कैसे समझोगे अमृत की होती अनंत रसधार है क्या।
मन में मस्ती भरने वाली भावों की मृदु झंकार है क्या।

कैसे समझोगे गीतों में झंकृत वीणा का तार है क्या।
संगीत अमर करने वाला स्वर संगम का उपहार है क्या।
थोड़ा तुम्हारी वीणा बजे तो समझोगे। थोड़ा तुम्हारा प्रेम उमगे तो समझोगे। थोड़ा तुम्हारा दीया जले तो समझोगे।
दूलन बिरवा प्रेम को, जानेउ जेहि घट माहिं
जिस हृदय में प्रेम का बिरवा आ गया, बस सब आ गया। आ गई प्रार्थना, आ गई पूजा। खुल गए मंदिर के द्वार।
पांच पचीसौ थकित भे, तेहि तरवर की छांहि।
तुम्हारी तो छोड़ ही दो, तुम्हारी तो सारी थकान मिट ही जाएगी जन्मों- जन्मों की। तुम तो पहली बार ऊर्जा के अजस्र स्रोत हो जाओगे। तुम्हारे भीतर से तो अनंत धन प्रकट होने लगेगा। तुम तो धनी हो ही जाओगे, यह तो बात ही नहीं है लेकिन तुम्हारे आस-पास पांच-पच्चीस वृक्ष की छाया के नीचे बैठ जाएंगे। उनकी थकान भी मिटेगी, उनके प्राण भी जुडेंगे और तुम्हारे भीतर बहती रसधार उनके भीतर रसधार की संभावना की याद दिलाएगी उन्हें, स्मरण कराएगी उन्हें, सुधि जगाएगी उनके भीतर। तुम्हारे वृक्ष पर होते हुए पक्षियों का गुंजार उनके भीतर भी कोई सोई आशा को झंकृत करेगा, किसी संभावना को उभारेगा। उनके मन में भी सपना उठेगा आकाशों में उड़ने का। उनके पंख भी फड़फड़ाएंगे। उनको भी स्मृति आ जाएगी कि यह मेरे भीतर भी हो सकता है। यही हरापन, ये ही फूल, ये ही पक्षियों के गीत, यही छाया, यही माधुर्य, यही रस का झरना मेरे भीतर भी टूट सकता है।
एक व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, अनेकों के लिए रास्ता बन जाता है। एक व्यक्ति उस किनारे पहुंचता है, अनेकों को पुकार सुनाई पड़ जाती है। धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन जग मांहि
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाहीं नाहिं
दूलन कहते हैंः ख्याल रखना लेकिन, यह प्रेम का पौधा बड़ा कोमल है, बड़ा सुकोमल, बड़ा नाजुक। यह घास-पात नहीं है कि अपने आप उग आए; कि भैंसें चरती रहें तो भी उगता रहे; बच्चे खेलते-कूदते रहें तो भी उगता रहे; कि लोग इस पर से गुजरते रहें तो भी उगता रहे। यह प्रेम का बिरवा कोमल गुलाब का पौधा है; अति सुकोमल है। पैदा मुश्किल से होता है, मर बड़े जल्दी जाता है। जमाना कठिन, उखड़ना बहुत आसान। ऊंचाइयों के रास्ते ऐसे ही होते हैं। पहुंचना बहुत मुश्किल, भटक जाना बहुत आसान। चढ़ना कठिन, गिर जाना आसान। जितनी ऊंचाई पर पहुंचोगे उतने संभल कर चलना पड़ेगा। और प्रेम सबसे बड़ी ऊंचाई है, उसके पार और कुछ भी नहीं है।
धृग तन धृग मन धृग जनम, ...
इसलिए कहते हैं ख्याल रखना, धिक्कार है तुम्हारे तन को, धिक्कार है तुम्हारे मन को, धिक्कार है तुम्हारे जनम को, धिक्कार है तुम्हारे जीवन को, अगर प्रेम का पौधा लगे और उखड़ जाए, बात बनते बनते बिगड़ जाए।
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाहीं नाहिं
अगर लगा लो एक बार पौधा तो निभाना। अगर प्रार्थना को जगाओ तो फिर पानी डालते जाना। फिर सुरक्षा करना, बागुड़ लगाना, बचाना।

और स्मरण रहे, चूंकि यह संसार प्रेम से शून्य है, प्रेम से रिक्त है,
जब भी किसी व्यक्ति के जीवन में प्रेम का बिरवा लगता है, चारों तरफ से उसे तोड़ने और नष्ट करने वाले लोग आ जाते हैं। चारों तरफ से! अपने भी पराए हो जाते हैं। मित्र भी दुश्मन हो जाते हैं। कोई यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि तुम्हारे भीतर और प्रेम का पौधा लग जाए। क्यों? क्योंकि तुम्हारा प्रेम का पौधा उनके लिए आत्मग्लानि का कारण हो जाता है। उनके अहंकार को चोट लगती है, उनके अभिमान को भारी घाव पहुंचते हैं। तुम पाने लगे और मुझे नहीं मिला? अभी मैं नहीं पहुंचा और तुम पहुंचने लगे? यह वे बरदाश्त नहीं कर सकते। वे सब तुम पर टूट पड़ेंगे। वे तुम्हारे पौधे को नष्ट करने का हर उपाय करेंगे। तर्क देंगे, खंडन करेंगे, तुम्हें विक्षिप्त कहेंगे, पागल कहेंगे। तुम्हारे मार्ग में हजार तरह की अड़चनें, बाधाएं खड़ी करेंगे। तुम्हारे गुलाब के पौधे पर हजार पत्थरों की वर्षा होगी। सजग होना! जितनी बड़ी संपदा हो उतना ही आदमी को सजग होना चाहिए। कहीं बात बनते-बनते बिगड़ न जाए! बनते-बनते बिगड़ जाती है। बिगड़ना इतना आसान है और बिगाड़ने वाले इतने लोग हैं।
सारा वातावरण प्रेम के विपरीत है; प्रेम का विरोधी है, दुश्मन है, शत्रु है। सारा वातावरण घृणा, वैमनस्य, ईर्ष्या से भरा है। प्रेम की यहां जगह कहां? सबके घरों में घास-पात की खेती हो रही है। तुम्हारे घर में गुलाब के फूल खिलेंगे, पास-पड़ोस के लोग बरदाश्त नहीं करेंगे। तुमने अपने को समझा क्या है? गुलाब के फूल बो रहे हो। पहले तो हंसेंगे, पागल कहेंगे और अगर तुम अपनी जिद में लगे ही रहे, अपने संकल्प में भरपूर डूबे ही रहे, ... नासमझ कहेंगे, दीवाना कहेंगे, हंसेंगे, उपेक्षा करेंगे। लेकिन तुम माने ही नहीं और अपनी खेती में लगे ही रहे और तुमने गुलाबों की खेती करके दिखा ही दी तो जिन्होंने तुम्हें पागल कहा था, विक्षिप्त कहा था, हंसे थे, उपेक्षा की थी वे सब टूट पड़ेंगे। तुम्हारे खेत को नष्ट कर देना चाहेंगे। क्योंकि तुम्हारा खेत इस बात का प्रमाण है कि वे भी जो हो सकते थे, नहीं हुए हैं। और यह कोई भी बरदाश्त नहीं करता कि मैं हार गया हूं कि मैं असफल हूं कि मेरा जीवन एक दुर्घटना है।
फिर उनकी भीड़ है, तुम अकेले हो। वे बहुत हैं, उनकी संख्या है, उनकी सत्ता है, उनकी शक्ति है। बहुत सम्हलना। बहुत होशपूर्वक चलना। इसीलिए बुद्धों ने संघ बनाए ताकि तुम अकेले न रह जाओ, कुछ संगी-साथी हों। कम से कम कुछ ही सही! थोड़ा संग-साथ रहेगा, थोड़ी हिम्मत रहेगी, थोड़ा बल रहेगा। एक-दूसरे को हिम्मत देने का अवसर रहेगा, बिल्कुल अकेले न पड़ जाओगे।
धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन जगमांहि
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाहीं नाहिं
द्वारे तक सावन तो बरसा है रोज-रोज,
आंगन का बिरवा पर प्यासा ही सूख गया।
देहरी की मांग भरी,
चूनर को रंग मिला।
अनगाए गीतों को,
सांसों का संग मिला।
चढ़ते से यौवन की उमर बढ़ी रोज-रोज, चाहों का बचपन पर राहों में छूट गया।
द्वारें तक सावन तो बरसा है रोज-रोज, आंगन का बिरवा पर प्यासा ही सूख गया।

उपवन की सेज सजी,
सोंधी सी रात हुई।
अंगूरी स्वप्न जगे,
पागल बरसात हुई।
हरियाई शाखों में फूल खिले रोज-रोज, अंकुर सा सपना पर अनब्याहा टूट गया।
द्वारे तक सावन तो बरसा है रोज-रोज,

आंगन का बिरवा पर प्यासा ही सूख गया।

जितनी अंगारों सी,
अंतर की भूख जली।
उतनी पहचान गई,
द्वार द्वार गली गली।
भिक्षुक-सी ज्वाला को भीख मिली रोज-रोज,
भिक्षा का पात्र किन्तु रीता ही फूट गया।
द्वारे तक सावन तो बरसा है रोज-रोज,
आंगन का बिरवा पर प्यासा ही सूख गया।
परमात्मा रोज बरस रहा है तुम्हारे प्रेम के बिरवे के लिए, मगर तुम कुछ ऐसे बेहोश हो कि सावन रोज-रोज बरसता है फिर भी तुम्हारे आंगन के बिरवे को जल नहीं मिल पाता।
द्वारे तक सावन तो बरसा है रोज रोज,
आंगन का बिरवा पर प्यासा ही सूख गया।
परमात्मा प्रतिपल बरस रहा है, बरसता ही रहा है। उसकी तरफ से कंजूसी नहीं है, कृपणता नहीं है। उसकी तरफ से रत्ती भर बाधा नहीं है, व्यवधान नहीं है। मगर तुमने कुछ जीवन की ऐसी शैली बना ली है कि उसमें घृणा तो पनप जाती है, वैमनस्य तो पक जाता है, ईर्ष्या के, द्वेष के कांटे तो खूब खिल जाते हैं, प्रेम के फूल नहीं खिल पाते। भय और लोभ को छोड़ो तो उसका सावन, उसकी बूंदा-बूंदी तुम्हारे बिरवे तक पहुंचने लगे।
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाहीं नाहिं
अभागे हैं वे लोग जिन्होंने लगाई भी और निबाही न। तो उनके दुर्भाग्य
की तो बात ही क्या करना जिन्होंने लगाई ही नहीं, निबाहने की बात ही न उठी। उनकी तो बात ही नहीं की दूलन ने। उनको तो छोड़ ही दो गिनती के बाहर। वे तो रहे न रहे बराबर। वे तो हुए ही नहीं। मानो कि हुए ही नहीं। जन्मे ही नहीं वे कभी। जन्मे वे, जिनके जीवन में प्रेम की थोड़ी सी सुराग तो मिली थी, जरा सा रंध्र तो खुला था रोशनी के लिए, मगर उसको भी बंद कर लिया।
और समझना, जब भी प्रेम जगता है तो भय पैदा होता है, घबड़ाहट पैदा होती है। क्योंकि प्रेम का एक ही अर्थ होता है, अहंकार का समर्पण करना होगा। जहां भी प्रेम पैदा होता है वहां अहंकार विसर्जन करना होता है, और वहीं भय पकड़ता है। हम अहंकार को पकड़ते हैं, चाहे प्रेम मरे तो मर जाए। प्रेम को पकड़ो, अहंकार को मरने दो। अहंकार तो सिर्फ भिक्षापात्र है टूटा-फूटा, प्रेम संपदा है। प्रेम समाधि है। प्रेम सब कुछ है। प्रेम की ही नौका तुम्हें उस पार ले जा सकती है।
जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क
छत्र खसै, धरती धसै, तीनेउ लोक गरक्क
जिनके जीवन में प्रेम पूरा जग गया है उन्हें संसार सताने को आतुर हो जाता है। ऐसे ही नहीं जीसस को सूली पर लटका दिया। तुम्हारे ही जैसे लोग थे जिन्होंने सूली पर लटकाया। तुम्हारे ही जैसे उनके तर्क थे, तुम्हारे ही जैसा लोभ था, तुम्हारे ही जैसा भय था, तुम्हारे ही जैसी ईर्ष्या थी, तुम्हारे ही जैसा अहंकार था। जिन्होंने सुकरात को जहर पिलाया, तुम्हारे जैसे लोग थे। जिन्होंने मंसूर को, सरमद को मारा, तुम्हारे जैसे लोग थे। जब प्रेम का बिरवा पूरा खिलता है तो लोग ऐसे अभागे हैं कि बजाय उसकी छाया में बैठने के उसे काटने चल पड़ते हैं, कुल्हाड़ियां ले लेते हैं। लोग ऐसे विक्षिप्त और अंधे हैं कि बजाय उस प्रेम के पौधे का लाभ लें, सत्संग लें, उस पौधे को नष्ट करने लग जाते हैं, सूली पर लटका देते हैं गुलाबों को। इसलिए दूलन कहते हैं, लेकिन याद रखना, जिनको तुम सूली पर लटकाते हो उन्हीं के कारण पृथ्वी पर थोड़ी रौनक है। उन्हीं के कारण थोड़ा रस है, उन्हीं के कारण कहीं-कहीं छांव है, उन्हीं के कारण इस मरुस्थल में कहीं- कहीं मरूद्यान हैं, उन्हीं के कारण कांटों में कहीं-कहीं एकाध गुलाब खिला हुआ है। बस उन्हीं के कारण जीवन में थोड़ा नमक है।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है कि तुम हो पृथ्वी के नमक। तुम्हारे बिना पृथ्वी स्वादहीन हो जाएगी। नमक बहुत नहीं डालना होता है, साग-सब्जी में कि दाल में, जरा सा! मगर जरा सा नमक न हो कि सब बे-रौनक हो जाता है। एकाध बुद्ध, एकाध महावीर, एकाध मोहम्मद--और पृथ्वी पर नमक बना रहा है। जीवन में थोड़ा स्वाद रहा है।
.जरा सोचो तो, ये दस-पांच नाम काट दो दुनिया के इतिहास से और आदमी कैसा बे-रौनक नहीं हो जाएगा! उसकी आंखों में चमक न होगी। उसके पैरों में नृत्य न होगा। उसके कंठ में गीत न होंगे। आदमी एकदम जंगली जानवर हो जाएगा। इन थोड़े से लोगों ने ही आदमी को आदमियत दी है, संस्कार दिया है, सयता दी है इन थोड़े से लोगों के कारण ही... और मजा यह है कि तुम्हारे विपरीत, तुम्हारे बावजूद तुम्हें संस्कार दिया है। तुम नहीं चाहते थे तो भी इनकी छाया तुम्हें थोड़ा सा विश्राम दे गई है और इनकी गंध तुम्हें थोड़ा गंधायित कर गई है और इनकी किरण तुम्हें छू गई है और थोड़ी सी रोशनी दे गई है--तुम्हारे बावजूद, तुम्हारे विपरीत। तुमने इन्हें सूली दी है और ये ही तुम्हें सिंहासन दे गए हैं। इनके ही कारण तुम थोड़े से मनुष्य हो। तुम्हारे भीतर जो थोड़ी सी संभावना है दीये के जल उठने की, वह उनके कारण है जिनको तुमने बुझा दिया है। दूलन कहते हैं, जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क। जिस समय संत सताए जाते हैं उस समय सारी सृष्टि उलटी हो जाती है। तुम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेते हो। तुम जिस डाल पर बैठे हो उसी को काटने लगते हो।
जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क
जरा सोचो, जिस दिन जीसस को सूली लगी उस दिन अस्तित्व कैसा न रोया होगा!
उस दिन परमात्मा की आंखों से कितने न आंसू गिरे होंगे। अब तक भी रुके न होंगे। जिस दिन जीसस को लोगों ने सूली दे दी उस दिन परमात्मा को किस गहन अपमान का अनुभव नहीं करना पड़ा होगा। जिनके लिए आता है वे ही सूली दे देते हैं। सावन की घटाएं जिनके लिए घिरती हैं वे अपने बिरवे को बचा लेते हैं, चारों तरफ तंबू लगा देते हैं कि कहीं वर्षा न हो जाए बिरवे पर, कहीं बिरवे में हरियाली न आ जाए, कहीं बिरवे में फूल न खिल जाएं। मनुष्य अपना ही दुश्मन है।
जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क
उस दिन सृष्टि उलटी हो जाती है जब संत सताए जाते हैं। मगर संत सताए जाते रहे हैं और सृष्टि उलटी है! अभी वह दिन नहीं आया जब जीवित संतों का सत्कार हो सकेगा। हां, मुर्दा संतों का सत्कार होता है क्योंकि मुर्दा संतों से तुम्हें कोई अड़चन नहीं है। मुर्दा संत तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, तुम्हारा कुछ बदल नहीं सकते। मुर्दा हैं, खुद ही मुर्दा हैं, तुम्हारा क्या करेंगे? जीवित संतों का अभी तक सत्कार नहीं हुआ है। महावीर मर जाएं तो पूजो। जिंदा रहें तो पत्थर मारो, कानों में सलाखें खोंस दो। गांव-गांव भगाओ, टिकने मत दो। निंदा करो--यह नंगा आदमी! बुद्ध जिंदा हों तो पत्थर मारो। पागल हाथी छोड़ो, चट्टानें सरकाओ कि दब जाएं और मर जाएं, और मर जाएं तो मूर्तियां बनाओ। इतनी मूर्तियां बनाओ कि सारी पृथ्वी मूर्तियों से भर जाए। तुम भी खूब हो, अजीब लोग हो!
और जरा भी फर्क नहीं पड़ा है, बात अब भी वैसी की वैसी है। सब कुछ वैसा का वैसा है। अभी भी तुम यही कर रहे हो, अभी भी तुम यही करोगे।
जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क
छत्र खसै, ... उस दिन आकाश खिसका जाता है अपनी जगह से। धरती धसै, ... पृथ्वी पश्चात्ताप से अपने में ही सिकुड़ जाती है। धंस जाती है। अपने में ही डूब कर मर जाना चाहती है। कहते हैं न कि कोई जब बहुत आत्मग्लानि से भर जाता है तो कहता है कि पृथ्वी फट जाती और धंस जाता है। मगर पृथ्वी कहां धंसे? अपने में ही धंस जाना चाहती है।
सुकरात के लिए जहर जिस दिन तैयार किया जा रहा था, उस दिन पृथ्वी ने नहीं धंस जाना चाहा होगा? उसके सबसे प्यारे पुत्र को, उसकी महिमा को, उसके गौरव को जहर पिलाने की तैयारी की जा रही है। सदियों-सदियों में इस प्रतिभा के लोग पैदा होते हैं जैसे सुकरात। अगर धरती मां है तो मर जाना चाह होगा। छत्र खसै, धरती धसै, तीनेउं लोक गरक्क

तीनों लोक गर्क हो रहे हैं, होते रहे हैं। तुम संतों को सताते रहे हो, फिर भी संतों की तरफ से तुम्हारे लिए आशीष बरसते रहे हैं। जीसस ने मरते वक्त भी कहाः हे प्रभु! इन सबको माफ कर देना क्योंकि इन्हें पता नहीं, कि ये क्या कर रहे हैं। नाराज मत होना इन पर।
कतहुं प्रकट नैनन निकट, कतहूं दूरि छिपानि
दूलन दीनदयाल, ज्यों मालव मारू पानि
कतहुं प्रकट नैनन निकट, ...
परमात्मा खोजो तो इतने पास है जितनी कि तुम्हारी आंखें तुम्हारे पास हैं। जिन आंखों से परमात्मा को देखोगे उन में ही छिपा बैठा है।
कतहुं प्रकट नैनन निकट, कतहूं दूरि छिपानि
न खोजो तो बहुत दूर है; दूर से भी दूर है, अनंत दूर है।
दूलन दीनदयाल, ज्यों मालव मारू पानि
जो नहीं खोजते उनके लिए जैसे राजस्थान में पानी बड़ी मुश्किल से मिलता है, मरुस्थल में। और राजस्थान के पास ही मालवा है, और मालवा में पानी तो एकदम पास मिल जाता है। कुछ दूर नहीं है मालवा मरुस्थल से। तुम्हारे पास ही कोई बैठा हो जिसे परमात्मा भीतर मिल जाए। और तुम्हें दूर-दूर तक खोजे न मिले। खोज-खोज की बात है। ठीक खोजो तो पास ही मिल जाता है, गैर-ठीक खोजो तो दूर भी नहीं मिलेगा।
सघन विजन के सूनेपन में,
संघर्षों की घनी तपन में,
खोजा कहां-कहां पर तुझको पाया अपने अंतर्मन में।

शाश्वत अपराधी थी काया,
भूल गया मैं देख न पाया,
शैशव सा निर्वाण छिपा था मेरे ही दूषित आंगन में।

कैसी थी द्विविधा की माया,
भूल गया मैं देख न पाया,
किसके अगणित चित्र बने हैं मेरे आंसू के दर्पण में।

चक्षु ज्ञान ने जब भटकाया,
भूल गया मैं समझ न पाया,
कौन राह दिखलाता मुझको छिप कर सांसों की धड़कन में।
पास ही है। तुम्हारी धड़कनों में धड़क रहा है। तुम्हारी सांसों में आंदोलित हो रहा है। जरा भीतर लौटो। जरा आंखों को भीतर पलटाओ। बाहर देखना छोड़ो, भीतर देखो। शुरू-शुरू में तो अंधेरा ही मिलेगा। घबड़ाना मत। बाहर की आंखें आदी हो गई हैं इसलिए भीतर जब पहली दफा देखोगे, कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। देखते चले जाना, देखते चले जाना... जल्दी ही आंखें भीतर की आदी हो जाएंगी। तुम जानते हो न, चोरों को रात के अंधेरे में भी, दूसरो घर में भी दिखाई पड़ता है। जो चोर नहीं हैं, उनको रात के अंधेरे में अपने घर में भी दिखाई नहीं पड़ता, अपने घर में भी चीजों से टकरा जाते हैं, चोर के पास क्या चमत्कार है? कि दूसरे के घर में--जहां कभी गया भी नहीं, टकराता नहीं, चीजें गिरती नहीं। रात के अंधेरे में दीया भी जला नहीं सकता। चोर की कला का एक अनिवार्य अंग है--अंधेरे में देखने का अयास। बस अंधेरे में बैठ कर देखता है। इसका अभ्यास करता है। धीरे-धीरे आंखें अंधेरे में देखने की अयासी हो जाती हैं।
अंधेरा भी अंधेरा नहीं है सिर्फ देखने के अयास की बात है। आखिर उल्लू
को रात दिखाई पड़ता है न! अंधेरे में भी रोशनी है। बस तुम्हारे पास देखनेवाली आंख चाहिए। पूरब में तो उल्लू बुद्धूपन का प्रतीक समझा जाता है। किसी को गाली देना हो तो कहते हैं उल्लू के पट्ठे! मगर पश्चिम में उल्लू को बुद्धिमानी का प्रतीक समझा जाता है क्योंकि उसे रात के अंधेरे में दिखाई पड़ता है। उसे अंधेरे में दिखाई पड़ता है। मेरा मन भी करता है कि पूरब ने उल्लू के साथ सदव्यवहार नहीं किया। उल्लू के पास कुछ खूबी है।

वैसी ही खूबी ध्यान से उपलब्ध होती है। बैठे अपने भीतर देखते-देखते, देखते-देखते दिखाई पड़ने लगता है।
ऐसा नहीं कि हम बिल्कुल ही चुक गए, उल्लू को बिल्कुल नहीं पहचान पाए, ऐसा नहीं। एक दर्शनशास्त्र है हमारा, जिसका नाम हैः औलूक्य दर्शन। उस दर्शनशास्त्र ने स्वीकर किया है उल्लू की महिमा को। यह गुणवत्ता तुम्हारी भी हो सकती है। अभी तो अंधेरा मिलेगा। शुरू-शुरू अपने भीतर जाओगे तो अंधेरा पाओगे। इससे घबड़ा कर लौट मत आना। यह मत सोच लेना कि अंधेरा अंधेरा है, यहां क्या रखा है! चलें बाहर; वहां रोशनी है, वहीं खोजेंगे। अयास करना होगा अंधेरे में बैठने का। उसी अयास का नाम योग है, ध्यान है। बैठते ही रहो। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, परसों नहीं नरसों, एक न एक दिन तुम पाओगे कि धीरे-धीरे अंधेरा छटने लगा, अंधेरे में रोशनी आने लगी, आंखें देखने लगीं। और तब तुम्हारे भीतर ही वह मिल जाता है जिसकी तुम बाहर तलाश करते थे और नहीं पा सके।
आंज लिया तुझको क्या--
काजल सा नयनों में,
हर सपना तेरी मनुहार लिए आता है।
भावों की प्रतिमा में--
तेरा ही चित्र मधुर,
अनचाहे अनजाने रूप बदल आता है। धुंधली सी परछांही--
छूती जब अंतर को,
सांसों के सरगम पर गीत मचल जाता है।

बांध लिया तुझको क्या--
पायल सा गीतों में,
हर गुंजन तेरी झंकार लिए आता है।

मूक दिवा स्वप्नों में--
पागल सी स्मृतियां,
जलती दोपहरी को रात बना देती हैं।

जब भी तप जाता हूं--
जग के संघर्षों में,
मस्ती को मादक बरसात बना देती है।

साध लिया तुझको क्या--
मस्ती सा यादों में,
हर आंसू तेरा उदगार लिए आता है।

प्रेममयी दृष्टि जभी--
उठती जिस ओर मुखर,
तेरा ही शाश्वत विस्तार मुझे लगता है।

पीड़ा का रूप उसे--
कह दूं या प्यार कहूं,
रूप ही तेरा साकार मुझे लगता है।

मान लिया तुझको क्या--
पीड़ा सा छवियों में,
हर चिंतन तेराशृंगार लिए आता है।

आंज लिया तुझको क्या--
काजल सा नयनों में,

हर सपना तेरी मनुहार लिए आता है।
थोड़ा आंखों में काजल आंजने की कला सीखो। ध्यान से आंजो आंखों को। प्रेम से आंजो आंखों को। और तुम अपने भीतर ही उसे देख लोगे। और उसे देखना ही जीवन को कृतार्थ करना है। बिना देखे मत जाना। निर्णय जगने दो, संकल्प प्रगाढ़ होने दो कि इस बार जान कर ही जाएंगे। और मजा यह है कि जो जान कर गया उसे फिर लौट कर नहीं आना पड़ता। पाठ सीख लिया तो फिर पाठशाला में लौटने की जरूरत नहीं रह जाती।
बुद्ध से पूछोगे तो वे कहेंगे, ध्यान से आंज लो आंखों को। दूलनदास से पूछोगे तो दूलनदास कहेंगे, प्रेम से आंज लो आंखों को। मगर प्रेम का दूसरा पहलू ध्यान है। जिसने प्रेम से आंजा, ध्यान से अंज गईं आंखें। और ध्यान का दूसरा पहलू प्रेम है। तुम एक को ले आओ, दूसरा अपने आप आ जाता है। प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया! ओढ़ लो प्रेम के रंग-रस में रंगी गई चादर, और परमात्मा तुम्हारा है। और जीवन का साम्राज्य तुम्हारा है और अस्तित्व की शाश्वतता तुम्हारी है। इस जगत की सारी संपदा, इस जगत की अनंत संपदा तुम्हारी है। तुम सम्राट होने को पैदा हुए हो, क्यों भिखारी बने बैठे हो?
आंज लिया तुझको क्या--
काजल सा नयनों में,
हर सपना तेरी मनुहार लिए आता है।
जरा प्रेम से आंखें अंज जाएं कि ध्यान से, कि फिर तुम्हें हर जगह वही दिखाई पड़ने लगेगा। फूल-फूल में, पत्ती-पत्ती में, कांटे-कांटे में, पत्थर-पत्थर में तुम्हें उसी का दर्शन होने लगेगा। जरा सोचो, जिस दिन तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन तुम परमात्मा से घिर कर जीने लगो, कैसा होगा वह आनंद! कैसी होगी वह मस्ती, कैसी होगी वह मादकता! उस मादकता का नाम ही आनंद है, सच्चिदानंद है। वह तुम्हारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। उसे बिना पाए नहीं जाना है, उसे पाना है। उसे तुम पा सकते हो। वह तुम्हें मिला ही हुआ है, सिर्फ देखना है; सिर्फ लौट कर पहचानना है। बस प्रत्यभिज्ञा मात्र, पहचान मात्र और क्रांति घटित हो जाती है। प्रेम-रंग-रस-ओढ़ चदरिया!

आज इतना ही।

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
दसवां प्रवचन

बन गया हूं बांसुरी मैं

पहला प्रश्नः ओशो, मैं प्रार्थना में बैठता हूं तो बस चुप रह जाता हूं। प्रभु से क्या कहूं, क्या न कहूं, कुछ भी सूझता नहीं है। फिर सोचता हूं कि यह कैसी प्रार्थना! आप मार्ग दिखावें।

प्रार्थना भाव है। और भाव शब्द में बंधता नहीं। इसलिए प्रार्थना जितनी गहरी होगी उतनी निःशब्द होगी। कहना चाहोगे बहुत, पर कह न पाओगे। प्रार्थना ऐसी विवशता है, ऐसी असहाय अवस्था है। शब्द भी नहीं बनते। आंसू झर सकते हैं। आंसू शायद कह पाएं लेकिन नहीं कह पाएंगे कुछ। पर शब्दों पर हमारा बड़ा भरोसा है। उन्हीं के सहारे हम जीते हैं। हमारा सारा जीवन भाषा है।
तो स्वभावतः प्रश्न उठता है कि परमात्मा के सामने भी कुछ कहें। जैसे
कि परमात्मा से भी कुछ कहने की जरूरत है! हां, किसी और से बोलोगे तो बिना बोले न कह पाओगे। किसी और से संबंधित होना हो तो संवाद चाहिए। परमात्मा से संबंधित होना हो तो शून्य चाहिए। संवाद नहीं, वहां मौन ही भाषा है। जो कहने चलेगा, चूक जाएगा। जो न कह पाएगा वही कह पाएगा।
इसे खूब गहराई से हृदय में बैठ जाने दो; नहीं तो बस तोतों की तरह रटे हुए शब्द दोहराओगे। कोई गायत्री पढ़ेगा, कोई नमोकार पढ़ेगा। ओंठ तो दोहराते रहेंगे मंत्रों को और भीतर भीतर कुछ भी न होगा, क्योंकि भीतर कुछ होता तो ओंठ चुप हो जाते। भीतर कुछ होता तो कहां गायत्री, कहां नमोकार, कहां कुरान! कब के खो गए होते! भीतर शून्य होता, शब्दों को पी जाता। भीतर शून्य होता, शब्द शून्य में लीन हो जाते। जब तक गायत्री न भूले, गायत्री पूरी न होगी। जब तक नमोकार याद रहा तब तक नमोकार याद ही नहीं। जब तक कुरान की आयत तुम दोहराते रहे तब तक जानना अभी कुरान के जगत से तुम्हारा संबंध नहीं हुआ। वह तो उतरता है शून्य में, वह तो बोलता है मौन में।
परमात्मा से तो केवल एक ही नाता बन सकता है हमारा, एक ही सेतु--वह है, चुप्पी का। परमात्मा और कोई भाषा जानता नहीं। जमीन पर तो हजारों भाषाएं बोली जाती हैं। फिर एक ही जमीन नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पांच हजार जमीनों पर जीवन होना चाहिए। होना ही चाहिए पांच हजार पर तो। इससे ज्यादा पर हो सकता है, कम पर नहीं। फिर उन जमीनों पर और हजारों-हजारों भाषाएं होंगी। इन सारी भाषाओं को परमात्मा जानेगा भी तो कैसे जानेगा? एक ही भाषा तो विक्षिप्त करने को काफी होती है। इतनी भाषाएं, एक अकेला परमात्मा! बहुत बोझिल हो जाएंगी।
भाषा सामाजिक घटना है, भाषा नैसर्गिक घटना नहीं है। भाषा प्राकृतिक घटना नहीं है, मनुष्य की ईजाद है। बड़ी ईजाद है, महत्वपूर्ण ईजाद है, पर प्रार्थना के जगत में उसका कोई उपयोग नहीं है। जैसे नाव को पानी में चलाओ तो ठीक, जमीन पर घसीटो तो पागल हो। नाव पानी में ठीक है, जमीन पर खींचोगे तो व्यर्थ बोझ ढोओगे। ऐसे ही भाषा को प्रार्थना में मत ले जाओ। नाव को जमीन पर मत खींचो। भाषा को छोड़ दो। और तुम सौभाग्यशाली हो। यह अपने से हो रहा है। यह किए-किए नहीं होता।
तुम पूछते हो मैं प्रार्थना में बैठता हूं तो बस चुप रह जाता हूं। यही
तो प्रार्थना है। पहचानो, प्रत्यभिज्ञा करो, यही प्रार्थना है। यह चुप हो जाना ही प्रार्थना है। मैं तुम्हारी अड़चन समझता हूं। तुम सोचते होओगे गायत्री पढ़ूं, नमोकार पढूं, कुरान पढूं, कुछ कहूं। प्रभु की स्तुति करूं। कुछ प्रशंसा करूं परमात्मा की। कुछ निवेदन करूं हृदय का। और नहीं कर पाते हो निवेदन; जैसे जबान पर जंजीर पड़ गई, जैसे ओंठ किसी ने सी दिए। तो चिंता उठती है, यह कैसी प्रार्थना! न बोले न चाले, तो उस तक आवाज कैसे पहुंचेगी? उस तक आवाज पहुंचाने की जरूरत ही नहीं है।
दूलनदास ने कहा न अभी कुछ दिन पहले कि वह परमात्मा बहरा नहीं है! तुम चिल्लाओ इसकी कोई जरूरत नहीं है। सच तो यह है, इसके पहले कि भाव तुम्हारे

हृदय में उठे, उस तक पहुंच जाता है। इसके पहले कि प्रार्थना की जाए, सुन ली जाती है। कहने का उपाय ही नहीं है। कहने के पहले ही बात पहुंच गई। होनी चाहिए बात, हृदय में भाव होना चाहिए सघन, प्रेमसिक्त! तुम भाव से मग्न होकर मौन रह जाओ, प्रार्थना हो गई। उसी मौन में निवेदन हो जाएगा। वही मौन निवेदन है। उस मौन में ही जो नहीं कहा जा सकता, नहीं कभी कहा गया है, नहीं कभी कहा जाएगा--कह दिया जाएगा।
एक बार बस पास बुला लो,
फिर न कहूंगा,
सच कहता हूं।
मैं सोया था सोने देते क्यों सोते से मुझे जगाया,
सिंदूरी सपनों से रंगकर क्यों स्वर्णिम संसार दिखाया। कैसा दर्द जगाया तुमने सारा जग झूठा लगता है,
रस से भरा हुआ कंचन घट अधरों को फूटा लगता है।
अब पनघट तेरा भाता है,
जहां न रस चुकने पाता है,
अपने इस अनंत पनघट में,

एक बार बस कलश डुबा लो,
फिर न कहूंगा,
सच कहता हूं।

एक मंद आभास मात्र से मन सरवर का जल लहराया, तुमको ही आराध्य मान कर तेरे तट से जा टकराया। लेकिन कुछ ऐसा लगता है शायद तुमको पा न सकूंगा, इतनी दूर पा रहा तुमको उड़ कर भी मैं आ न सकूंगा। कहते सभी कठिन होता है,
जग में नहीं मिलन होता है,
महामिलन को मृत्यु दान कर,
एक बार बस गले लगाओ,
फिर न कहूंगा,
सच कहता हूं।

जाने क्या हो गया हृदय को सब कुछ तेरा ही लगता है, बिना तुम्हें पाए यह जीवन व्यर्थ और सूना लगता है। ऐसी मन की व्याकुलता है तेरे बिन अब रहा न जाता, तुमको सुधियों में पाकर दर्द विरह का सहा न जाता। ओ, मेरी सुधियों के वासी,
प्रेम स्वरूप अमर अविनाशी,

कर स्वीकार साधना मेरी,
एक बार मुझको अपना लो,
फिर न कहूंगा,
सच कहता हूं।
मगर यह सिर्फ भाव हो, शब्द न बने। यह तुम्हारे भीतर घनी प्रतीति हो। शब्द तो सब चीजों को छिछला कर जाते हैं। जैसे बड़े से बड़े शब्द, कीमती से कीमती शब्द किसी से तुम्हें प्रेम हो गया है और जब तुम कहते हो कि मुझे प्रेम हो गया है, तब तुम्हें लगता नहीं कि प्रेम शब्द में वह बात आती नहीं है जो तुम्हें हो गई है। प्रेम शब्द बड़ा छोटा पड़ जाता है। ये ढाई अक्षर उस जीवन के महाकाव्य को कैसे कहेंगे? उसकी गहराइयां बहुत हैं। प्रशांत महासागर की उतनी गहराई नहीं है जितनी हृदय में प्रेम की गहराई होती है। और न ही गौरीशंकर की उतनी ऊंचाई है जितनी हृदय में उठे हुए प्रेम के शिखर की ऊंचाई होती है। प्रशांत सागर उथला है और गौरीशंकर भी टीले-टाले हैं। कैसे

भरोगे उस ऊंचाई, उस गहराई को इस छोटे से ढाई अक्षर के शब्द में--प्रेम में? नहीं, भर नहीं पाएगा।
और फिर इसी प्रेम शब्द का उपयोग हम और हजार चीजों के लिए भी करते हैं। कोई कहता है, मुझे आइस्क्रीम से बड़ा प्रेम है। कोई कहता है, मुझे मेरी कार से बहुत प्रेम है और कोई कहता है, मुझे धन से बहुत प्रेम है। यही प्रेम शब्द छिछली से छिछली बात के लिए उपयोग में आता है। यही प्रेम शब्द जब परमात्मा से तुम्हारी लगन जुड़ जाती है तब भी उपयोग में आता है। अब आइस्क्रीम और परमात्मा में क्या संबंध जोड़ पाओगे? कोकाकोला में और मोक्ष में क्या संबंध जोड़ पाओगे? लेकिन कोकाकोला से भी प्रेम है, मोक्ष से भी प्रेम है।
हमारे शब्द बड़े थोड़े हैं, बड़े छोटे हैं, बड़े ओछे हैं; बस कामचलाऊ हैं। ठीक है, लोक-व्यवहार चल जाता है। लेकिन प्रार्थना कोई लोक-व्यवहार नहीं है। प्रार्थना अंतर्निवेदन है। शब्द-शून्य अस्तित्व के चरणों में समर्पण है। झुको! तुम्हारे झुकने में बात हो जाएगी। मौन हो जाओ। आंखों को बंद हो जाने दो। क्योंकि कुछ चीजें हैं जो खुली आंख से दिखाई पड़ती हैं और कुछ हैं जो सिर्फ बंद आंख से दिखाई पड़ती हैं। कुछ चीजों के लिए बंद आंख ही खुली आंख है।
और अगर आंसू झर उठें तो समझना तुमने फूल चढ़ा दिए उसके चरणों में। डोल उठो मस्ती में, जैसे कोई शराब पिए हो कि पैर कहीं पड़ें, कहीं रखो। तो समझना कि बात हो गई। आंखों में एक लाली छा जाए, एक मादकता छा जाए। जीवन रसविभोर होने लगे। प्राणों के पंछी पंख तड़फड़ाने लगें, उड़ने की तैयारी होने लगे। मगर यह सब निःशब्द है, इसमें शब्द की कहीं कोई आवश्यकता नहीं है। और तुम चकित हो जाओगे, जब तुम्हारे भीतर एक भी शब्द नहीं बनता तो सारा अस्तित्व तुम में कुछ उंड़ेलने लगता है। क्योंकि तुम खाली गागर हो जाते हो। खाली गागर हो जाना प्रार्थना है। और तब सागर उतर जाते हैं। फिर गागर में भी सागर समा जाते हैं। फिर बूंद में भी समुंद उतर आते हैं।
कबीर ने कहा हैः हेरत हेरत हे सखि रह्या कबीर हिराई; बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाई। लेकिन फिर दूसरे दिन सुधार कर दिया। दूसरे दिन थोड़ी सी बात बदल दी और गजब की बात कर दी। जरा सी बदलाहट, और चमत्कार हो गया। दूसरे दिन लिखा कि नहीं-नहीं, ऐसा ठीक नहीं है।
हेरत हेरत हे सखि रह्या कबीर हिराई
समुंद समानी बुंद में सो कत हेरी जाई
पहले दिन कहा था, बूंद समुद्र में समा गई, अब उसे कैसे वापस लाएं? दूसरे दिन कहा कि नहीं-नहीं, समुद्र ही बूंद में समा गया है, अब उसे कैसे वापिस लाएं? प्रार्थना में, तुम्हारी छोटी सी प्राणों की बूंद में परमात्मा का सागर समा जाता है। प्रार्थना में तुम परमात्मा तक नहीं जाते, परमात्मा तुम तक आता है। तुम तो बस शून्य होते हो, मौन होते हो। तुम तो नहीं होते हो। यही शून्य और मौन होने का अर्थ है--तुम नहीं होते हो। और जहां तुम नहीं हो वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है। अनंत-अनंत रूपों में, हर फूल में उसकी गंध। हवा के झोंके में उसका झोंका। हर हरियाली में वही हरा। चांद-तारों में वही, सूरज में वही, लोगों में वही। हंसते हुए बच्चे की किलकारी में वही। हिरन की छलांग में वही। आकाश में उड़ गए पक्षी में वही। जब तुम बिल्कुल चुप हो जाते हो तब तुम्हारे सामने जीवन अपने सारे पर्दे गिरा देता है। तुम पात्र हो गए।
इसलिए यह मत कहो कि मैं चुप रह जाता हूं, क्या करूं! शब्द नहीं बनते। परमात्मा से क्या कहूं, क्या न कहूं! कुछ कहना ही नहीं है। वह जानता है।
तुम नहीं थे तब से जानता है, तुम नहीं होओगे तब भी जानता रहेगा। परमात्मा जानने की अवस्था है। वह परम वेद है। तुम चुप हो जाओ। तुम सन्नाटे में डूब जाओ। तुम मिट जाओ, तुम न हो जाओ और फिर देखो चमत्कार। फिर देखो घटते परमात्मा को चारों ओर।
मलयानिल बन छू-छू जाता उर को सुरभित श्वास किसी का!
यह मधु स्मित, फैली हो जैसे
शून्य गगन में स्निग्ध चांदनी,

यह अपरूप रूप, बजती हो
अंतहीन ज्यों रजत रागिनी,
यह अशेष सौंदर्य-स्रोत, इसका
चिर उद्गम-स्थान कहां है?
मुझे बहाए लिए जा रहा सागर सा उल्लास किसी का! मलयानिल बन छू-छू जाता उर को सुरभित श्वास किसी का! किसकी रूप-परिधि में निशि भर
चांद-सितारे घूमा करते?
किस लावण्य-शिखा को आकुल
प्राण-शलभ ये चूमा करते?
नयनों में छाया सहता सा
किसका चिर छवि-स्वप्न विमोहन?
उल्लासों के पुष्प खिलाता शत-शतशः मधुमास किसी का! मलयानिल बन छू-छू जाता उर को सुरभित श्वास किसी का! अमर वल्लरी फैल रही यह
आदिरहित सी, अंतरहित सी,
उमड़ रही अक्षय रस-धारा
करती सब कुछ परिप्लावित-सी
एक स्वप्न-संगीत, गूंज से
जिसकी रंध्र-रंध्र प्रतिघोषित,
बांध रहा जैसे तन-मन को सम्मोहनमय पाश किसी का! मलयानिल बन छू-छू जाता उर को सुरभित श्वास किसी का! रोम-रोम यह आज निवेदन--
पुष्प, गीत-वंदन-स्वन कोमल,
नवल प्रीति आरती-दीप-लौ-सी
झलमल-झलमल मृदु उज्ज्वल,
यह समस्त अस्तित्व स्वयं ही
बनता जाता मूक समर्पण,
चिर अमरत्व दिए जाता है मुझे अमृतमय हास किसी का!
मलयानिल बन छू-छू जाता उर को सुरभित श्वास किसी का!
चुप हो जाओ, तुम्हें उसकी श्वासें छूती हुई मालूम पड़ेंगी। चुप हो जाओ, तुम्हें उसकी धड़कन सुनाई पड़ेगी। चुप हो जाओ, तुम्हें उसके पैरों की आहट पास आती मालूम होने लगेगी।
मुझसे पूछते होः "आप मार्ग दिखावें, मार्ग समझावें।"
तुम मार्ग पर हो। बस, इस पर ही टिको। न शब्द बनाओ, न भाषा को बीच में लाओ। भाषा पहाड़ की तरह खड़ी हो जाती है भक्त और भगवान के बीच में। मनुष्यों से बोलना हो तो भाषा की जरूरत है, परमात्मा से बोलना हो तो भाषा की कोई भी जरूरत नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, मैं संन्यास तो लेना चाहता हूं पर संसार से बहुत भयभीत हूं। संन्यास लेने से मेरे चारों ओर जो बवंडर उठेगा उसे मैं झेल पाऊंगा या नहीं? आप आश्वस्त करें।

संन्यास का अर्थ हैः असुरक्षा में उतरना। संन्यास का अर्थ हैः अज्ञात में चरण रखना। संन्यास का अर्थ हैः जाने-माने को छोड़ना, अनजाने से प्रीति लगाना।
आश्वस्त तो तुम्हें कैसे करूं? बवंडर तो उठेगा। मेरा आश्वासन झूठा होगा। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि बवंडर निश्चित उठेगा, उठना ही चाहिए। अगर न उठे तो संन्यास पकेगा कैसे? जैसे धूप न निकले और सूरज न आए तो फल पकेंगे कैसे? आंधी न उठे, तूफान न उठे तो वृक्षों की रीढ़ टूट जाएगी। आंधी और तूफान के झोंके सहकर ही वृक्ष सुदृढ़ होता है।
बवंडर तो उठेगा। इतना ही आश्वस्त कर सकता हूं कि बिल्कुल निश्चित रहो, .जरा भी चिंता न करो, बवंडर उठेगा ही। और तुमने जितना सोचा है उससे

बहुत ज्यादा उठेगा। और उठता ही रहेगा; ऐसा नहीं कि आज उठा और कल शांत हो जाएगा। तुम जब तक जियोगे बवंडर उठता ही रहेगा और बवंडर रोज बड़ा होता जाएगा। संन्यास की परिपक्वता ही तब होती है। चुनौतियों में ही आत्मा का जन्म होता है। जितनी बड़ी चुनौतियां हों उतनी बड़ी आत्मा का जन्म होता है। आत्मा ऐसे ही नहीं पैदा होती। अपने को बचाए रखो, सुरक्षित सब तरह से, तो आत्मा नहीं पैदा होगी, तुम्हारे भीतर एक फुसफुसापन पैदा होगा। संघर्ष में तुम्हारे भीतर कुछ सघन होगा। संघर्ष में तुम्हारे भीतर कुछ सबल होगा। इसलिए जो बवंडर उठाएंगे वे शत्रु नहीं हैं, मित्र हैं। मित्र ही उठाएंगे। शत्रु मत समझ लेना उन्हें, वे तुम्हारे मित्र हैं। गालियां पड़ेंगी, पत्थर भी पड़ सकते हैं। लेकिन सौभाग्य मानना उस सबको; वरदान मानना, परमात्मा का प्रसाद मानना। ऐसे ही कोई व्यक्ति आत्मवान होता है।
लोगों की बड़ी अनुकंपा है कि जब भी वे देखते हैं कहीं आत्मा का जन्म हो रहा है तो सब तरफ से सहयोग करते हैं। फिर जैसा वे सहयोग कर सकते हैं वैसा करते हैं; जैसा जानते हैं वैसा करते हैं। मगर तुम्हारे अहित में नहीं है। तुम पूछते हो, मैं संन्यास तो लेना चाहता हूं पर संसार से बहुत भयभीत हूं। अगर संन्यास ऐसा हो कि जिसमें.जरा भी भय न मालूम पड़े तो उसे लेने का प्रयोजन क्या होगा? वह एक नई सुरक्षा होगी, एक नया बैंक-बैलेंस होगा। नहीं, अड़चनें आएंगी, बहुत आएंगी। कल्पनातीत अड़चनें आएंगी। जिन दिशाओं
से तुमने कभी न सोचा था कि अड़चनें आ सकती हैं उन दिशाओं से आएंगी। जिन्हें तुमने अपना माना है उनसे आएंगी। और ध्यान रखना, नाराज न होना, रुष्ट न होना, बेचैन न होना, अशांत न होना, क्रुद्ध न होना। क्योंकि अंत में तुम पाओगे कि उन्हीं सब चुनौतियों ने तुम्हें जीवन दिया, जीवन को निखार दिया, धार दी, तुम्हारी प्रतिभा को चमकाया।
जो धार नहीं रुकती है चट्टानों से भी,
सागर केवल उसका अभिनंदन करता है।

कागज की बनी नाव केवल,
दो क्षण पानी पर चलती है।
जो बिना तेल जलती बाती,
वह केवल दो क्षण जलती है।

तूफान घुमड़ कर जब चलता,
बुझ जाते अनगिन दीप जले।
जो जलते केवल जलने को,
वे दब जाते अंधियार तले।

जो दीप नहीं बुझते हैं तूफानों में भी, उजियारा उनकी बाती बन कर जलता है।
जो पांव नहीं रुकते हैं व्यवधानों में भी, पर्वत केवल उनके आगे ही झुकता है।

चलना, गिरना, फिर से चलना, उन्नति-सोपानों का क्रम है।
चलते-चलते ही मिट जाना,
जीवन का पावन संगम है।
उसका पौरुष ही पुण्य धाम,
जिसकी सांसों में तीरथ है।
जिसमें निश्चय का तेजपुंज, गंगा का वही भगीरथ है।

हर लक्ष्य उसी के लिए बना जो तप करता विश्वासों का।
हर फूल उसी की माला है,

जो दास नहीं मधुमासों का।
जो साहस का प्रतिबिंब न दे,
वह केवल दर्पण का पट है।
जिसके अधरों पर प्यास नहीं,
वह पनघट केवल मरघट है।

जो प्यास नहीं बुझती है मिट जाने पर भी,
अमृत केवल उसके अधरों को मिलता है।
कीमत चुकानी होती है। और जितने बड़े सत्य को खोजने चलोगे उतनी अधिक कीमत चुकानी पड़ेगी। सत्य मुफ्त नहीं मिलता। परम सत्य को पाने के लिए तो सब कुछ दांव पर लगा देना होता है। और संन्यास परम सत्य को पाने का प्रयास है। अभीप्सा है, आकांक्षा है--अनंत को अपने आंगन में बुला लेने की। अभीप्सा है, प्रार्थना है--विराट को अपने प्राणों में समा लेने की। तैयारी करनी होगी। जुआरी होना होगा। व्यवसाई संन्यासी नहीं हो सकता। जो दो-दो कौड़ी का हिसाब लगाए और जो सदा लाभ ही लाभ की सोचे वह संन्यासी नहीं हो सकता। यह तो दांव की बात है। इसलिए मैं फिर कहता हूं, जुआरी ही संन्यासी हो सकता है जो सब दांव पर लगा दे--इस पार या उस पार।
तुम कहते हो, संन्यास लेना चाहता हूं। लेना चाहते हो तो लो। व्यवधान
तो होंगे, अड़चन तो होगी। लेकिन अकसर ऐसा हो जाता है कि असली अड़चन तुम्हारे भीतर है। और बाहर की अड़चनें नहीं रोकतीं, भीतर की अड़चनें रोक लेती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि यह भय सिर्फ बहाना है। इस भय को बड़ा करके देख लेना सिर्फ बचने की एक प्रक्रिया है। कैसे लूं संन्यास? मैं तो लेना चाहता हूं मगर बवंडर उठेंगे। कैसे लूं संन्यास? समझा लिया अपने को कि मैं लेना भी चाहता हूं और बहाने भी खोज लिए कि क्यों नहीं लेता हूं। यह सिर्फ तर्काभास है। जिसे लेना है, लेना है; फिर परिणाम जो हो।
इस संसार में क्या बवंडर! क्या छीन लेंगे तुमसे? तुम्हारे पास अभी है क्या? पद जाएगा, प्रतिष्ठा जाएगी, धन जाएगा, मान-मर्यादा जाएगी--जाने ही वाली है। जो मौत छीन लेगी उसे अपने ही हाथ से छोड़ दो। मौत तो छीन लेगी; तब छोड़ने का मजा भी न मिलेगा। तब छोड़ने का जो गौरव है गरिमा है, वह भी चूक जाएगी। मौत तो छीन ही लेगी तो तुम्हीं क्यों नहीं छोड़ देते?
और मर्यादा का मूल्य क्या है? पानी पर खींची गई लकीरें हैं। और सम्मान
और सत्कार! किससे ले रहे हो सम्मान और सत्कार? जो खुद अंधे हैं, जो खुद मूर्च्छित हैं, उनके सम्मान और सत्कार का क्या मूल्य! अगर पागल तुम्हें फूलमालाएं भी पहना दें तो भी उन फूलमालाओं का क्या मूल्य है? पागलों ने पहनाई हैं। बुद्धिमान, कोई बुद्धपुरुष प्रेम से तुम्हारी ओर देख भर दे एक बार, उतना काफी है। सारे संसार के द्वारा फूलमालाएं चढ़ाई जाएं तो भी व्यर्थ हैं। जिन्हें खुद अपना पता नहीं वे तुम्हारा क्या सम्मान करेंगे! वे सम्मान कर रहे हैं किसी पारस्परिक लेन-देन के हिसाब से। सम्मान के द्वारा वे तुम्हारे पैरों में बेड़ियां डाल रहे हैं, हाथों में जंजीरें डाल रहे हैं। सम्मान के द्वारा तुम्हें बांध रहे हैं।
और संन्यास स्वतंत्रता है। संन्यास घोषणा है इस बात की कि मैं अपने जीवन को अपने ढंग से जीऊंगा। मैं वैसे जीऊंगा जैसी मेरी अंतःप्रेरणा होगी। मैं दूसरों की मानकर न जीऊंगा। मैं दूसरों का अनुकरण करके न जीऊंगा। मेरा जीवन एक अभिनय मात्र नहीं होगा। मेरा जीवन प्रमाणिक होगा, मेरा होगा; मेरी निजता से जन्मेगा, स्वतःर्स्फूत होगा। और संन्यास का क्या अर्थ है? अपने ढंग से जीऊंगा ताकि परमात्मा के सामने जब जाऊं तो यह कह सकूं कि तुमने जो प्रेरणा मुझे दी थी उसके ही अनुसार जीआ हूं। झुका नहीं, समझौता नहीं किया। और जिस दिन तुम जानोगे उस दिन तुम चकित होओगे कि बवंडर, तूफान, विरोध सब तुम्हें सहारा दे गए हैं।
मुझको फूलों से प्यार नहीं मैं कांटों का दीवाना हूं।
मैं जलने वाला दीप नहीं जलने वाला परवाना हूं।

सुख हो अधरों को प्यास नहीं,

दुख का मन को आभास नहीं।
आशाएं सब पूरी होंगी--
ऐसा मुझको विश्वास नहीं।
मैं जीवन को सुंदर बुनता, कर्मों का ताना-बाना हूं।

जो बंध न सके वह धारा हूं,
जो उठ न सके वह पारा हूं।
मानवता, प्रेम, शांति के हित--
मैं महाक्रांति का नारा हूं।
जिसको न रोक पाए पर्वत ऐसा राही मस्ताना हूं।

मिट जाऊं ऐसा बीज नहीं,
बिक जाऊं ऐसी चीज नहीं।
सबकी मनचाही जो कर दे--
वह तांबे की ताबीज नहीं।
मैं अपनी मस्ती में डूबा अनगाया एक तराना हूं।
संन्यास का अर्थ हैः ऐसी घोषणा कि मैं अपना गीत गाऊंगा, मैं उधार गीत
न गाऊंगा; कि मैं अपना जीवन जीऊंगा। कि मैं किसी का अनुकरण नहीं करूंगा। कि मैं चलूंगा पगडंडी पर, राजपथों पर नहीं। राजपथों पर भीड़ें चलती हैं। भीड़ें सदा भेड़ों की होती हैं। मैं अपना मार्ग बनाऊंगा। मैं परमात्मा को अपने ढंग से खोजूंगा। चाहे भटकूं, चाहे देर लगे, मगर खुद अपनी पगडंडी बना कर पहुंचूंगा। फिर मजा और है। जो परमात्मा की तरफ अपनी ही पगडंडी बना कर पहुंचता है उसके आनंद की सीमा नहीं है। और भीड़ न तो कभी पहुंचती न कभी पहुंच सकती है। सिंहों के लिए खुलता है द्वार, भेड़ों के लिए नहीं। भेड़चाल छोड़ो।
क्या बवंडर! कौन बवंडर उठाएगा? क्या छीन लेगा, क्या मिट जाएगा? हंसते- हंसते दे देना। अगर संन्यास लेने की आकांक्षा उठी है तो किसी कीमत पर झुको मत। हां, आकांक्षा ही न उठी हो तो किसी कीमत पर लेना मत। कोई लाख कहे, मैं लाख कहूं, भूल कर मत लेना। क्योंकि मेरे कहे लोग तो भेड़ हो गए। अपनी आकांक्षा से लोगे तो सिंह की गर्जना तुम्हारे भीतर होगी। जरा सा फर्क है। इतना बारीक फर्क है कि दिखाई भी नहीं पड़ता। मेरे कहे से लिया तो व्यर्थ हो गया। अपनी बूझ से, अपनी सूझ से लिया, अपनी अंतःप्रज्ञा से लिया तो क्रांति घटी। अप्पदीपो भव! अपने दीये खुद बनो। दूसरों की उधार रोशनी में कितने तो चले, पहुंचे कहां! शास्त्रों की मान कर, संतों की मान कर कितने-कितने जन्मों से तो तुम भटकते हो, उपलब्धि क्या है? खाली के खाली हो। प्राण भरे नहीं, फूल खिले नहीं, फल लगे नहीं, पंख खुले नहीं। खाली ही नहीं हो, कारागृह में भी पड़े हो। दूसरों की मान कर जिंदगी सींकचों में बंद हो गई है। मेरी मान कर संन्यास मत ले लेना। मैं लाख कहूं, मेरी मौज है, मैं कहता हूं। तुम्हारी मौज हो तब लेना। जब तुम्हारी मौज और मेरी मौज का मिलना हो तो मिलन है।
जो धार नहीं रुकती है चट्टानों से भी,
सागर केवल उसका अभिनंदन करता है।
मैं भी तुम्हारा अभिनंदन करूं उसी क्षण, जब तुम ऐसी धार बनो जो चट्टानों से न रुके।

जो दीप नहीं बुझते हैं तूफानों में भी,
उजियारा उनकी बाती बनकर जलता है।
बुद्धपुरुषों से केवल उनका ही संबंध हो पाता है जो दीप नहीं बुझते हैं तूफानों में भी। नहीं तो लोगों के पास आत्माएं ही नहीं हैं। लोग नपुंसक हैं। उनके भीतर न गौरव है न गरिमा है न तेज है न दीप्ति है न बुद्धिमत्ता है। बुद्धिमत्ता दूसरों की मान कर कभी पैदा भी नहीं होती। एक छोटे स्कूल में शिक्षक ने एक विद्यार्थी से पूछा--चूंकि विद्यार्थी के घर में भेड़ें हैं, उसने उसके योग्य प्रश्न बनाया। कि

तुम्हारी बगिया में भीतर दस भेड़ें हैं, एक छलांग लगा कर बाहर निकल गई तो कितनी भेड़ें पीछे बचेंगी? उस छोटे बच्चे ने कहाः एक भी भेड़ पीछे नहीं बचेगी। उस शिक्षक ने कहा कि तुझे गणित आता है कि नहीं? उसने कहा, गणित मुझे आता हो या न आता हो, भेड़ों को मैं अच्छी तरह जानता हूं। अगर एक भेड़ कूद गई तो सारी भेड़ें कूद जाएंगी। और भेड़ों को भी आपका गणित नहीं आता है। मेरी भेड़ों से पहचान है।
लोग ऐसे ही चल रहे हैं। हिंदुओं की जमात, मुसलमानों की जमात, जैनों की जमात! तुम अपनी मर्जी से सम्मिलित हुए हो तो बात और। तुम जन्म के कारण सम्मिलित हो गए हो तो बात और। संयोग है कि तुम किसी घर में पैदा हुए--कि मुसलमान कि हिंदू कि जैन बने। कि पिता और मां तुम्हें मंदिर ले गए तो मंदिर गए और मस्जिद ले गए तो मंदिर नहीं, मस्जिद गए; गुरुद्वारा ले गए तो गुरुद्वारा गए। ऐसे दूसरों ने तुम्हें संस्कारित कर दिया। तुम अपनी घोषणा कब करोगे? तुम कब कहोगे कि मैं स्वयं चुनूंगा? जिस दिन तुम धर्म को स्वयं चुनते हो उस दिन धर्म से तुम्हारा नाता जुड़ता है, तुम्हारे प्राण संयुक्त होते हैं।
जो पांव नहीं रुकते हैं व्यवधानों में भी,
पर्वत केवल उनके आगे ही झुकता है।

चलना, गिरना, फिर से चलना,
उन्नति-सोपानों का क्रम है।
चलते-चलते ही मिट जाना,
जीवन का पावन संगम है।
उसका पौरुष ही पुण्य धाम,
जिसकी सांसों में तीरथ है। जिसमें निश्चय का तेजपुंज,
गंगा का वही भगीरथ है।
गंगा उतरने को तैयार है, भगीरथ बनो!

हर लक्ष्य उसी के लिए बना,
जो तप करता विश्वासों का।
हर फूल उसी की माला है,
जो दास नहीं मधुमासों का।
जो साहस का प्रतिबिंब न दे,
जो केवल दर्पण का पट है।
जिसके अधरों पर प्यास नहीं,
वह पनघट केवल मरघट है।
मरघट तुम बहुत दिन रह लिए, अब पनघट बनो। अपनी प्यास को जगने दो, अपनी पुकार को जगने दो, अपनी प्रार्थना को जगने दो। कह दो संसार से, अपनी तरह जीऊंगा। जीऊंगा तो अपनी तरह जीऊंगा, अन्यथा मरना बेहतर है।
जो प्यास नहीं बुझती है मिट जाने पर भी,
अमृत केवल उसके अधरों को मिलता है।
अमृत तैयार है। मधुकलश भरा बैठा है कि तुम जरा आत्मवान हो जाओ तो उंडल जाए। तो इतना ही मैं तुमसे कहता हूंः संन्यास लेना हो, लेना अपनी मर्जी, अपने आनंद, अपने अहोभाव से। न तो किसी के कहने से रुकना और न किसी के कहने से लेना। क्योंकि दोनों बातें हो सकती हैं--कहने से रुक जाओ, कहने से ले लो। दोनों ही बातों में सब व्यर्थ हो जाएगा। याद रखना--
मुझको फूलों से प्यार नहीं मैं कांटों का दीवाना हूं।
मैं जलने वाला दीप नहीं जलने वाला परवाना हूं,
जो बंध न सके वह धारा हूं,
जो उठ न सके वह पारा हूं,
मिट जाऊं ऐसा बीज नहीं,
बिक जाऊं ऐसी चीज नहीं,
सबकी मनचाही जो कर दे--

वह तांबे की ताबी.ज नहीं।
मैं अपनी मस्ती में डूबा अनगाया एक तराना हूं।
संन्यास तुम्हारे प्राणों का गीत है, तुम्हारे प्राणों की सुवास है।
खिलो, मगर किसी और की मान कर नहीं, अपनी मान कर। प्राणों से उठने दो यह सुवास तो यही सुवास स्वतंत्रता है, परम मुक्ति है, सत्य है, निर्वाण है।

तीसरा प्रश्नः संत सदियों से गाते रहे हैं--गीत शाश्वत के, सनातन के।
यह गंगा अखंड बहती रही है। मैं सोच कर ही चमत्कृत हो उठता हूं। इतनी सृजनात्मकता का स्रोत कहां है?

संत सदियों से नहीं गाते रहे हैं, संतों से सदियों से एक ही गाता रहा है। संत नहीं, परमात्मा ही गाता रहा है। जब तक संत गाए तब तक कवि, जिस दिन संत से परमात्मा गाए उस दिन ऋषि। जब तक संत स्वयं अपना बोल बोले, अपना सोच-विचार, अपने अनुमान, अपना तर्कजाल, अपना सिद्धांत, अपना शास्त्र; जब तक संत की बुद्धि बीच में हो तब तक संत संत नहीं है। चाहे कितने ही मधुर उसके वचन हों, चाहे कितनी ही मधुसिक्त उसकी वाणी हो, पौरुषेय है, मनुष्य की ही है; पार से नहीं आई है इसलिए मुक्तिदायी नहीं हो सकती है। जब संत केवल वाहक होता है, केवल बांस की पोली पोंगरी होता है--परमात्मा के ओंठ पर रखी हुई। तुम्हें तो सुनाई पड़ते हैं गीत बांसुरी से ही आते हुए, मगर गीत परमात्मा के होते हैं। जब संत स्वयं नहीं बोल रहा होता, स्वयं शून्य हो गया होता है और परमात्मा को बोलने देता है तब वेद का जन्म होता है, उपनिषद का जन्म होता है, गीता का, कुरान का जन्म होता है, बाइबिल का जन्म होता है; तब बड़े अदभुत गीत उतरते हैं। मगर संत के उन पर हस्ताक्षर नहीं होते, उन पर हस्ताक्षर परमात्मा के होते हैं।
तो पहली बातः संत तो बहुत हुए लेकिन गायक एक है। बांसुरियां बहुत लेकिन बांसुरीवादक एक है।
दूसरी बातः वे जो गीत शाश्वत के और सनातन के हैं, मनुष्य गा भी नहीं सकता। मनुष्य तो क्षणभंगुर है। क्षणभंगुरता में कैसे शाश्वत का गीत उठेगा? मनुष्य तो मिटे तो ही शाश्वत का गीत बन सकता है। मनुष्य भूल ही जाए कि मैं हूं। उस विस्मृति में ही शाश्वत समय में झलकता है।
भक्त वही है जो भगवान की भक्ति में मस्त हो जाए ऐसा कि भूल जाए, जैसे शराबी भूल जाए; भूल जाए सारा संसार। न और की सुध रहे न अपनी सुध रहे। ऐसे मस्ती की अवस्था में शाश्वत और सनातन निश्चित गाता है, जरूर उतर आता है। तुमने पूछाः "चमत्कृत होता हूं यह देख कर। यह गंगा, अखंड गंगा बहती ही रही है।"
क्योंकि यह परमात्मा की गंगा है, बहती ही रहेगी। भौतिक गंगा तो कभी सूख भी सकती है लेकिन यह स्वर्गीय गंगा है, यह नहीं सूखेगी। जब तक वृक्षों में फूल लगेंगे, आकाश में तारे होंगे, पक्षी पंख फैलाएंगे और उड़ेंगे तब तक जब तक मनुष्य है और मनुष्य के भीतर अनंत को पाने की अभीप्सा जगती रहेगी और जब तक प्रार्थना उठती रहेगी तब तक कहीं न कहीं, किसी कोने में पृथ्वी के किसी हिस्से में तीर्थ बनता रहेगा, काबा निर्मित होता रहेगा। कोई गाएगा शाश्वत को, सनातन को। परमात्मा अखंड है इसलिए उसकी गंगा अखंड है। और हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे बावजूद भी कभी-कभी कोई कंठ परमात्मा को हमारे भीतर गुंजा देते हैं, हमारे बीच गुंजा देते हैं।
एक स्वर पाकर तुम्हारा,
बन गया हूं बांसुरी मैं।
मौन विजड़ित बांस सा मैं,
पड़ा था बेसुध अजाना।
किंतु तन-मन छेड़ तुमने,
कर लिया अपना न माना।
दर्द पीने को तुम्हारा,
बन गया हूं आंजुरी मैं।
अधर क्या तुमने मिलाए,

हुए रसमय भाव मेरे।
गीत अगणित सप्त स्वर में, गा उठे सब घाव मेरे।
मधु-अधर छूकर तुम्हारा,
बन गया हूं मधुकरी मैं।

यदि न देते वेदना तुम,
भावना क्यों जन्म लेती।
शब्द केवल शब्द रहते,
चिंतना यदि लय न देती।
कल्पने, होकर तुम्हारा,
बन गया हूं नभचरी मैं।
एक स्वर भी उतर आए उसका, एक झलक भी मार जाए वह, जरा सी देर को झरोखा खुल जाए, एक किरण उसकी उतर आए कि तुम्हारे भीतर गीतों ही गीतों की वर्षा हो जाएगी। तुम उठोगे तो गीत होगा, तुम बैठोगे तो गीत होगा। तुम सोओगे तो गीत होगा। गीत गाओ या न गाओ तुम्हारा होना ही गीतमय होगा। तुम्हारे चारों तरफ गीत की झर लगी रहेगी, बूंदा-बांदी होती रहेगी। तुम्हारा अस्तित्व काव्यमय हो जाएगा।
एक स्वर पाकर तुम्हारा,
बन गया हूं बांसुरी मैं।
बस एक स्वर काफी है। एक स्वर भी बहुत है। उसके मधुकलश की एक बूंद काफी है। ऐसा डुबाती है कि फिर उभरने का मौका नहीं मिलता। ऐसा मस्त करती है कि फिर मस्ती कभी टूटती नहीं। और जिसके जीवन में परमात्मा से थोड़ा-सा संबंध जुड़ गया हो, .जरा-सा कच्चा धागा भी जुड़ गया हो, उसके जीवन में सृजनात्मकता बह उठती है, अनंत-अनंत धारों में बह उठती है। क्यों? क्योंकि परमात्मा स्रष्टा है। उससे जुड़ने का लक्षण ही यही है कि तुम्हारे भीतर भी स्रष्टा का जन्म हो जाएगा; तुम्हारे भीतर भी सृजन की ऊर्जा तरंगें लेने लगेगी। अगर परमात्मा से जुड़ कर तुम्हारे भीतर सृजन पैदा न हो तो समझना कि तुम जुड़े नहीं, कुछ चूक हो गई। तुम भ्रांति में हो; या तो खुद धोखा खा गए हो या दूसरों को धोखा दे रहे हो।
इसलिए मैं कहता हूं कि तुम्हारे बहुत से तथाकथित साधु-संत या तो धोखे में हैं या धोखा दे रहे हैं। उनके जीवन में कोई सृजनात्मकता नहीं मालूम होती। न कोई गीत बनता मालूम होता है, न कोई नृत्य उठता मालूम होता है। उनके जीवन में आनंद नहीं, उल्लास नहीं, रंग नहीं, रस नहीं। यह जो दूलनदास कहते हैंः "प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया!"--कितने तुम्हारे महात्मा कह सकेंगे? राम-राम छपी हुई नाम की चदरिया ओढ़ लेंगे लेकिन कितने तुम्हारे महात्मा कह सकेंगे कि हमने प्रेम के रंग और रस में डुबाई गई चादर ओढ़ी है?
कहने की ही बात नहीं है, कितनों का जीवन इसका प्रमाण होगा? जब तक कोई नाच न उठे, गुनगुना न उठे, जब तक किसी के उठने-बैठने में सृजनात्मकता का प्रसाद न झरने लगे, जब तक किसी की आंखों में चांद-तारों की चमक न आ जाए, सागरों की गहराई न हो, उत्तुंग शिखरों की ऊंचाई न हो, जब तक किसी के हाथों में आकाश न रखा हुआ मालूम पड़े तब तक समझना, कुछ चूक हो रही है।
लेकिन सदियों से हम नकारात्मक हो गए हैं। हम किसी को इसलिए महात्मा मानते हैं कि उसने बहुत उपवास किए हैं। उत्सव कितने किए? उत्सव की कोई गिनती ही नहीं करता।
एक जैन मुनि से मैं मिला। उनके भक्तों ने कहा कि मुनि महाराज ने इस वर्ष एक साल में एक सौ बीस उपवास किए हैं। मैंने मुनि महाराज की तरफ देखा, उनकी रीढ़ सीधी हो गई, चेहरे पर दंभ आ गया। मैंने पूछा, और उत्सव कितने किए? श्रावक को तो कुछ समझ में ही नहीं आया कि यह प्रश्न भी कोई प्रश्न है? उत्सव! मुनि महाराज और उत्सव! वे केवल उपवास करते हैं। और उपवास, मैंने उनके श्रावकों को कहा, कहने की जरूरत नहीं, उनके चेहरे पर लिखा हुआ है। इससे ज्यादा मातमी चेहरा मैंने दूसरा देखा ही नहीं।

धर्म के नाम पर मातम है। जैसे घर में कोई मर गया हो, जैसे अर्थी बांधी
जा रही हो। लोगों की नकारात्मक दृष्टि हो गई है। कितने उपवास किए यानी कितने दिन भूखे मरे! कितना अपने को सताया! कांटे की सेज पर जो सोया है, लोग उसको नमस्कार करते हैं। अब यह पागल है, विक्षिप्त है। आदमी कांटे की सेज पर सोने को बनाया नहीं गया है।
तुमने किसी पशु को, किसी पक्षी को कांटों की सेज बना कर सोते देखा? पशु-पक्षी भी अपने लिए सुविधा बनाते हैं। पक्षी भी घोसला बनाता है, घोसले में घास-पात की गद्दी लगाता है। पशु भी अपने लिए मांद खोदता है जमीन में ताकि जमीन उत्तप्त होती है, गर्म होती, शीत से बच सके। झाड़ियों में छिप कर सोता है।
तुमने किसी पशु-पक्षी को कांटों की सेज बना कर उस पर लेटते देखा है? सिवाय आदमी के इतना पागलपन और कहीं नहीं होता। लेकिन हम इसकी पूजा करते हैं। इसलिए कुछ नासमझ, कुछ विक्षिप्त लोग यह भी करने को राजी हो जाते हैं। जिस चीज से पूजा मिले लोग वही करने को राजी हो जाते हैं। अगर सिर के बल खड़े होने से पूजा मिलती है तो लोग सिर के बल खड़े हो जाएंगे। हालांकि सिर के बल ज्यादा देर खड़ा होना खतरनाक है। एकाध क्षण के लिए तो ठीक है लेकिन ज्यादा देर खड़ा होना--मस्तिष्क को नष्ट करता है क्योंकि मस्तिष्क के तंतु बहुत बारीक होते हैं। और खून की धार अगर बहुत जोर से मस्तिष्क में पहुंचे तो तंतु टूट जाते हैं। बहुत बारीक तंतु हैं। उनके बारीक होने का तुम अंदाजा इसी से लगा सकते हो कि एक लाख मस्तिष्क के तंतु एक के ऊपर एक रखे जाएं तो एक बाल के बराबर मोटे होते हैं। उनकी बारीकी तुम इससे अंदाज लगा सकते हो, इस छोटी-सी खोपड़ी में सात अरब तंतु हैं। जमीन की जनसंख्या कम है, अभी चार अरब है। तुम्हारे भीतर मस्तिष्क की जनसंख्या बड़ी है--सात अरब!
ये जो नाजुक, अति नाजुक तंतु हैं जिनको आंख से देखा भी नहीं जा सकता,
जब तुम सिर के बल खड़े हो जाते हो और खून झटके के साथ जमीन के गुरुत्वाकर्षण के कारण सिर की तरफ भागता है, तो चेहरा भला थोड़ी देर को लाल होता मालूम पड़े लेकिन मस्तिष्क गंवा बैठोगे। इसलिए तुम्हारे हठयोगियों में बुद्धिमान आदमी मिल जाए यह.जरा असंभव है। सिर के बल खड़े होने वाले लोगों में तुम बुद्धि की कोई प्रखरता न पाओगे।
वैज्ञानिक कहते यही हैं कि आदमी में बुद्धि ही इसलिए पैदा हुई कि वह
दो पैर के बल खड़ा हो गया, नहीं तो बुद्धि पैदा नहीं होती। बंदर और आदमी में इतना ही फर्क है। बंदर में बुद्धि पैदा नहीं हो सकी। क्यों? उसके मस्तिष्क में खून का प्रवाह ज्यादा हो रहा है। इसलिए तंतु, बारीक तंतु पैदा नहीं हो सकते। मनुष्य दो पैर के बल खड़ा हो गया, सिर की तरफ खून का प्रवाह कम हो गया, क्योंकि जमीन की तरफ चीजें खिंचती हैं गुरुत्वाकर्षण से। सिर की तरफ खून का जाना कम हो गया, कम से कम हो गया। जितना कम खून गया उतने बारीक तंतु पैदा हो गए। जितने बारीक तंतु पैदा हो गए उतनी सूक्ष्म प्रतिभा का जन्म हुआ, अभिव्यक्ति हुई।
लेकिन अगर सिर के बल खड़े होने वाले लोगों को लोग सम्मान देते हों तो लोग सिर के बल खड़े हो जाएंगे। सिर गंवा देंगे, बुद्धि खो देंगे मगर सम्मान मिल जाएगा। कोई अपने को कोड़े मार रहा है, कोई धूप में नंगा खड़ा है, कोई शीत में नंगा खड़ा है, कोई जाकर जब बर्प पड़ रही हो तब बर्प में नंगा खड़ा है; इन सबको हम सम्मान देते हैं। यह असृजनात्मकता को सम्मान देना है। और इसका परिणाम यह हुआ है कि धर्म के नाम पर विक्षिप्त लोगों की भीड़ें इकट्ठी हो गई हैं। उनको देखना हो तो तुम कुंभ के मेले में चले जाना। एक से एक ज्यादा विक्षिप्त लोगों के समूह तुम देखोगे। सब तरह के पागल, जिनको पागलखानों में होना चाहिए, जिनकी मानसिक चिकित्सा होनी चाहिए। लेकिन वे सब तुम्हारे महात्मा हो गए हैं।
धर्म की हमें मौलिक व्याख्या बदलनी चाहिए। धर्म की हमें कसौटी ही सृजनात्मकता से करनी चाहिए--विधायक, नकारात्मक नहीं। किसने जीवन को कितना सौंदर्य दिया है यह कसौटी होनी चाहिए। किसने जीवन को कितने गीत दिए, कितना उत्सव दिया। किसने जीवन को कितना प्रेम दिया और प्रेम की संभावना दी। अगर तुम जिंदगी को थोड़ा सा सुंदर छोड़ जाओ जैसा तुमने पाया था तो मैं तुम्हें

धार्मिक कहूंगा। तुम जरा सा और रंग दे जाओ जिंदगी को, एकाध फूल और खिला जाओ तो मैं तुम्हें धार्मिक कहूंगा। जिंदगी में कुछ जोड़ जाओ--एक राग और, एक मल्हार और, मैं तुम्हें धार्मिक कहूंगा। क्योंकि तुम जब भी कुछ सृजन करते हो तभी तुम परमात्मा से जुड़ गए होते हो। या जब तुम परमात्मा से जुड़ गए होते हो तभी तुम्हारे भीतर सृजनात्मकता का जन्म होता है।
परमात्मा स्रष्टा है यह तो तुमने सुना है, बार-बार सुना है लेकिन इसका तुमने ठीक-ठीक तार्किक निष्कर्ष नहीं निकाला। अगर परमात्मा स्रष्टा है तो सृजन प्रार्थना होगी। अगर परमात्मा स्रष्टा है तो सृजन साधना होगी। क्योंकि स्रष्टा सृजन की ही भाषा समझ सकेगा। अगर परमात्मा ने यह विराट अस्तित्व बनाया, कुछ तुम भी बनाओ! छोटा सही, अपनी सीमा में छोटा ही होगा, हमारे हाथ भी छोटे हैं, क्षमता भी छोटी है। मगर एक मूर्ति तो गढ़ सकते हो! एक पत्थर को तो छैनी उठा कर रूप दे सकते हो! एक पत्थर में छुपी हुई प्रतिमा को तो प्रकट कर सकते हो! शब्दों में छंद तो बांध सकते हो! तूलिका उठा कर किसी चित्र में रंग तो भर सकते हो! जीवन में, जीवन के संबंधों में थोड़ी प्रेम की वातास तो घोल सकते हो। जीवन को थोड़ा उत्सवमय, नृत्यमय तो कर सकते हो! बजाओ वीणा। बजाओ बांसुरी। नाचो! मृदंग पर थाप पड़ने दो, मैं तुम्हें धार्मिक कहूंगा।
उत्सवपूर्ण जीवन धार्मिकता है।
जिस क्षण वाणी का हुआ प्राण से मिलन मौन
सर्जना पिघलकर धरती में साकार हुई!
कुछ तार पड़े थे बिखरे-से
सब कहते हैं--वे आदि-अंत-अवसान न जाने क्या-क्या थे-- स्वर सोए थे उनमें कितने
कितनी झंकारें उनमें थीं निस्पंद।
उन तारों पर कुछ गाऊं मैं--
बहलाऊं मन हे देव! तुम्हारा भी--
तुमने छोटी सी वीणा दी
फिर एक बार

जिस क्षण वीणा का हुआ प्राण से मिलन मौन वंदना पिघल कर धरती में साकार हुई!

मैं क्या जानूं--पथ भी विधान?
मैं तो भविष्य के ज्योति-शिखर पर
पग धरने वाला विहान
जिसकी विधायिका शक्ति--भावना भरी भक्ति। मैं पलक एक--मैं एक गान
उच्छ्वास एक--विश्वास एक
मैं ही तूली था देव! तुम्हारे हाथों में जिस पर श्रद्धा थी गई रीझ
फिर एक बार

जिस क्षण श्रद्धा का हुआ प्राण से मिलन मौन
साधना पिघल कर धरती में साकार हुई!
जिस क्षण वाणी का हुआ प्राण से मिलन मौन
सर्जना पिघल कर धरती में साकार हुई!
उतारो, परमात्मा को थोड़ा तुमसे पृथ्वी पर लाओ। सेतु बनो, द्वार बनो उसके। सीढ़ियां बनो कि नाचता परमात्मा तुमसे पृथ्वी पर उतर सके। बहुत हो चुकीं स्वर्ग की बातें जो कहीं और है। इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाओ। स्वर्ग कहीं और है और नरक तुमने यहां बना लिया! स्वर्ग कहीं और है तो तुम करते भी क्या फिर नरक न बनाते तो? या तो स्वर्ग होगा या नरक होगा। दोनों के बीच तटस्थ नहीं हो सकते।

या तो तुमसे कुछ सुंदर का सृजन होगा या फिर कुछ विध्वंस होगा। कुछ सुंदर का विनाश होगा। तुम तटस्थ नहीं हो सकते। जीवन तटस्थता मानता ही नहीं। जीवन में तटस्थता होती ही नहीं। या तो सुंदर को बनाओ या तुमसे कुछ कुरूप निर्मित होगा। या तो आगे बढ़ो अन्यथा पीछे हट जाओगे; वहीं के वहीं रुके नहीं रह सकते। या तो कुछ गाओ या गालियां तुमसे निकलनी शुरू हो जाएंगी। वह जो प्राण की ऊर्जा है, या तो गीत बने या गाली बने।
और चूंकि हमने समझा स्वर्ग कहीं और है--दूर सात आकाशों के पार, तो फिर
हम करते भी क्या? फिर हमने पृथ्वी को नरक बना लिया। तीन हजार सालों में पांच हजार युद्ध आदमी ने लड़े हैं। नरक में भी इतने युद्ध होते हैं, इसका कोई पुराणों में इतना उल्लेख नहीं है। तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध! एक साल में करीब-करीब दो महायुद्ध! आदमी मारता ही रहा, काटता ही रहा। प्रत्येक राष्ट्र की सत्तर प्रतिशत संपदा विध्वंस में लग रही है। और बनाओ अणुबम, और बनाओ उद्जन बम। वैसे भी जरूरत से ज्यादा तैयार हो गए हैं। आज से पांच साल पहले एक-एक आदमी को सात बार मारा जा सकता था, इस तरह की सात पृथ्वियां नष्ट की जा सकती थीं, इतने उद्जन बम थे। अब सात सौ बार मारा जा सकता है। पांच साल में काफी प्रगति हुई! एक आदमी एक ही बार में मर जाता है इसका ख्याल रखना। सात सौ बार मारने की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन राजनेता पूरा इंतजाम कर लेते हैं, कौन भूल-चूक करे! सात सौ बार पृथ्वी को नष्ट करने की तैयारियां हो गई हैं। और तैयारियां बंद नहीं हैं, तैयारियां जारी हैं। बमों के अंबार लगते जा रहे हैं।
क्या होगा? इतने विध्वंस का आग्रह! जबकि लाखों-करोड़ों लोग भूखों मर
रह हों, जबकि न मालूम कितने लोगों को दवा न मिलती हो, जब कि न मालूम कितने बच्चे बिना दूध के मर जाएंगे, तब गरीब से गरीब देश भी, हमारा देश भी--जिसको अहिंसक होने की भ्रांति है और जिसको धार्मिक होने का अहंकार है और जो घोषणा करता रहता है कि हम पुण्यभूमि हैं क्योंकि सारे अवतार यहीं हुए, यह देश भी अपनी संपदा का सत्तर प्रतिशत विध्वंस और युद्ध और सेनाओं पर खर्च करता है। यह कैसी विक्षिप्तता है! आदमी को क्या हो गया है? इतनी ऊर्जा से तो हम स्वर्ग को यहां बना सकते हैं, निश्चित बना सकते हैं। और ऐसा स्वर्ग कि देवता तरसें पृथ्वी पर जन्मने को। कथाएं कहती हैं कि देवता पुराने दिनों में तरसते थे। मुझे लगता नहीं क्योंकि पुराने दिन में भी हालात यही थे; शायद इससे बदतर थे, बेहतर तो नहीं थे।
राम और रावण भी ऐसे ही लड़ रहे थे। और ध्यान रखना, जो जीत जाता है, इतिहासकार उसके पक्ष में लिखते हैं। अगर रावण जीत गया होता तो तुम राम के पुतले जला रहे होते क्योंकि इतिहास तब रावण लिखवाता। अगर हिटलर जीत गया होता तो थोड़ा सोचो, इतिहास कौन लिखवाता, कैसा लिखा जाता? मुकदमे फिर भी चलते। जैसे नूरेनबर्ग में मुकदमे चले वैसे ही कहीं मुकदमे चलते लेकिन उन मुकदमों में जिन पर मुकदमे चलते वे होते रूजवेल्ट, चर्चिल, ट्रूमैन, स्टैलिन, इन लोगों पर मुकदमे चलते। इतिहास फिर भी लिखा जाता मगर चूंकि इतिहास हिटलर लिखवाता, इतिहास कुछ और ही होता। हिटलर होता उद्धारक, मनुष्य-जाति को बचाने वाला पापियों से, उद्धार करनेवाला।
युद्ध उस दिन भी होते थे, महाभारत उस दिन भी हुए। विध्वंस उस दिन भी जारी था। लोग इतने ही बेईमान थे लोग इतने ही चोर थे, लोग इतने ही दुष्ट थे जितने आज हैं, जरा भी कम नहीं थे। शायद थोड़े ज्यादा भला रहे हों। क्योंकि बुद्ध ने बयालीस साल सुबह और शाम, दोपहर और रात एक ही बात कही कि चोरी न करो, हिंसा न करो, ईर्ष्या न करो, दूसरे को कष्ट न दो। लोग जरूर ये ही कामों में लगे रहे होंगे, नहीं तो बुद्ध क्यों बयालीस साल तक... दिमाग खराब था? महावीर भी चालीस साल तक यही लोगों को समझाते रहेः हिंसा न करो। जरूर लोग हिंसा में रत होंगे। चोरी न करो, बेईमानी न करो। जैनों के पांच महाव्रत... । आखिर चोरों की दुनिया में ही अचौर्य का सिद्धांत पैदा होता है और पापियों की दुनिया में पुण्य की बातें करनी पड़ती हैं।
और तुम जरा सोच कर कहा करना कि सारे अवतारों का जन्म यहीं हुआ। उसका कारण यह हो सकता है कि सबसे ज्यादा उपद्रवी आदमी यहां थे। क्योंकि जहां बहुत लोग बीमार होते हैं वहां चिकित्सकों को आना पड़ता है। तुम्हारे

मोहल्ले में भी अगर किसी घर में रोज चला आ रहा है डाक्टर और रोज चले आ रहे हैं वैद्य और हकीम, तो क्या तुम सोचते हो उस घर के लोग बड़े स्वस्थ हैं? जहां इतने हकीम--सब हकीम और सब वैद्य और चिकित्सक आते हैं, और वह घर का आदमी बाहर आकर डींग मारे कि यह पुण्य-भूमि है। ऐसा एक हकीम नहीं जो यहां न आया हो। ऐसा एक वैद्य नहीं जो यहां न आया हो, ऐसा एक डाक्टर नहीं जो यहां न आया हो। सब यहीं पलते हैं।
वैसा ही तुम्हारा दावा है। इतने अवतार आए... आना पड़ा! कृष्ण कहते हैं न गीता में कि जब-जब धर्म की हानि होगी, मैं आऊंगा। तो तुम्हारे देश में धर्म की हानि कितनी बार नहीं हो चुकी होगी इसका हिसाब लगाया? इतनी बार कृष्ण को आना पड़ा! फिर भी तुम पुण्य-भूमि अपने को माने चले जाते हो।
नहीं, अब तक पुण्य-भूमि नहीं बन सकी, धर्मभूमि कहीं नहीं बन सकी। क्योंकि धर्मभूमि बनने का विज्ञान ही नहीं बन सका। धर्म को सृजनात्मकता दो। धर्म को विधायक करो। धर्म को जीवन-विरोध से बचाओ, जीवन के प्रेम में लगाओ। प्रेम रंग-रस ओढ़ चदरिया! धर्म को चादर बनाओ प्रेम की, रंग की, रस की। सारे इंद्रधनुष उस चादर पर हों। सारे गीत, सारे दीये उस चादर पर हों। होली हो, फाग हो उस चादर पर। भगोड़ापन न हो, पलायनवाद न हो। जीवन का अंगीकार हो अहोभाव के साथ।
धर्म की यही दृष्टि मैं देने की कोशिश कर रहा हूं। धर्म हो जीवन का प्रेम; जीवन का विरोध नहीं, निषेध नहीं। धर्म हो इस अदभुत जीवन के प्रति सम्मान, सत्कार। और हो कृतज्ञता की एक प्रतीति कि हे परमात्मा! तूने इतना प्यारा जीवन दिया, अब हम क्या करें? हम कैसे तेरी पूजा करें और कैसे तेरी प्रार्थना करें? एक ही उपाय है कि अगर हम थोड़ा इस जीवन को सुंदर कर पाएं, थोड़े और रंग भर दें, थोड़े और गीत भर दें तो ही प्रार्थना, तो ही साधना।
जिस क्षण वाणी का हुआ प्राण से मिलन मौन
सर्जना पिघल कर धरती में साकार हुई!
जब भी तुम्हारे भीतर प्रार्थना होगी, मौन होगा, शांति होगी, ध्यान होगा, सर्जना पिघल कर पृथ्वी पर साकार होगी!

कुछ तार पड़े थे बिखरे से
सब कहते हैं--वे आदि-अंत-अवसान, न जाने क्या-क्या थे--
स्वर सोए थे उनमें कितने
कितनी झंकारें उनमें थीं निस्पंद।
उन तारों पर कुछ गाऊं मैं--
बहलाऊं मन हे देव! तुम्हारा भी--
और क्या कहेगा भक्त? इतना ही कह सकता है

उन तारों पर कुछ गाऊं मैं--
बहलाऊं मन हे देव! तुम्हारा भी--
तुमने छोटी सी वीणा दी
फिर एक बार

जिस क्षण वीणा का हुआ प्राण से मिलन मौन
वंदना पिघल कर धरती में साकार हुई!
तुम्हें एक वीणा दी है परमात्मा ने। तुम्हारा हृदय एक वीणा है, छेड़ो इसके तार। साधो! इस वीणा से कुछ अदभुत स्वर उठ सकते हैं। उठाओ उन्हें। यह वीणा ऐसी ही पड़ी न रह जाए।
मैंने सुना है, एक घर में एक पुराना वाद्य, जिसे बजाना घर के लोग भूल
गए थे, सदियों-सदियों से रखा था, परंपरा से रखा था। पूर्वज छोड़ गए थे तो रहने दिया था। फिर घर में भीड़ भी बढ़ती गई, बच्चे भी बढ़ते गए। उस वाद्य को रखने की जगह भी नहीं थी तो उसको सरकाते गए। बैठकखाने से पीछे के कमरे में चला गया, पीछे के कमरे से कचरे की कोठरी में चला गया। लेकिन कचरे की कोठरी में कभी-कभी उसके कारण उपद्रव हो जाता। कोई बिल्ली रात उस पर कूद जाती, उसके तार झनझना जाते। कोई चूहा टंकार मार देता, तार तोड़ देता, आवाज हो

जाती। तो रात घर के लोगों की नींद में बाधा पड़ने लगी। आखिर एक दिन उन्होंने तय किया कि इसे हम रखे क्यों हैं? इसकी जरूरत क्या है? फिजूल जगह घेरता है, फेंक ही क्यों न दें?
उन्होंने उठाया और जाकर उसे कचरे-घर में डाल आए। वे घर लौट भी नहीं पाए थे कि ठिठक गए बीच में ही क्योंकि एक भिखारी ने, जो रास्ते से गुजरता था, उस अदभुत वाद्य के तार छेड़ दिए। वे लौट पड़े। राह चलते लोग रुक गए। कोई गुजर न सका वहां से। भीड़ स्तब्ध खड़ी हो गई। ऐसा अपूर्व संगीत किसी ने कभी सुना ही न था। अलमस्त होकर वह भिखारी उस अद्भभुत वाद्य को बजा रहा था।
जब वाद्य का संगीत पूरा हुआ और संगीत शून्य में लीन हो गया तो घर के लोगों को होश आया। उन्होंने भिखारी से कहा, वाद्य हमें वापस लौटा दो। यह हमारा है। आज उन्हें पता चला, यह बहुमूल्य है। पर उस भिखारी ने कहा, यह तुम्हारा था तो कचरे-घर पर फेंका क्यों? जिस क्षण फेंका उसी क्षण तुम्हारा नहीं रहा। और मैं तुमसे कह दूं कि वाद्य उसका है जो बजाना जानता है। तुम इसका करोगे क्या? फिर बिल्ली कूदेगी, फिर चूहा काटेगा, फिर बच्चे तारों को छेड़ेंगे। और जिससे अदभुत संगीत पैदा होता है उससे केवल शोरगुल पैदा होगा। तुम करोगे क्या? यह तुम्हारा नहीं है, तुम इसके मालिक नहीं हो। मालिक वही है जो इसे बजा ले।
जब तक तुम अपने हृदय को बजाना न सीख लोगे, अपने हृदय के मालिक नहीं हो।
तब तक हृदय पड़ा है बेकार। वीणा तो है, कहो परमात्मा से--
उन तारों पर कुछ गाऊं मैं--
बहलाऊं मन हे देव! तुम्हारा भी--
तुमने छोटी सी वीणा दी
फिर एक बार
जिस क्षण वीणा का हुआ प्राण से मिलन मौन
वंदना पिघलकर धरती में साकार हुई!
मैं क्या जानूं--पथ भी विधान?
मैं तो भविष्य के ज्योति-शिखर पर
पग धरनेवाला विहान
जिसकी विधायिका शक्ति--भावना भरी भक्ति। भक्ति कुछ और नहीं है, एक विधायक रस है जीवन में।

मैं पलक एक--मैं एक गान
उच्छ्वास एक--विश्वास एक
मैं ही तूली था देव! तुम्हारे हाथों में
जिस पर श्रद्धा थी गई रीझ
फिर एक बार

जिस क्षण श्रद्धा का हुआ प्राण से मिलन मौन
साधना पिघल कर धरती में साकार हुई!
जिस क्षण वाणी का हुआ प्राण से मिलन मौन
सर्जना पिघल कर धरती में साकार हुई!
तुम पूछते होः "संतों की सृजनात्मकता का स्रोत कहां है?"
परमात्मा स्रोत है सृजनात्मकता का। सब सृजनात्मकता का स्रोत परमात्मा है। और जब तुम उससे जुड़ोगे तो तुमसे भी बहेगा। और तुमसे बहे तो ही जानना कि जुड़े। तुम्हारा चेहरा लंबा और मातमी बना रहे, और तुम उपवास और व्रत और नियम, और अपने को गलाने और सड़ाने और परेशान करने में ही लगे रहो तो समझना कि शायद तुम्हारा शैतान से सत्संग हो गया है, भगवान से नहीं। भगवान तो उत्सव है। इन हरे वृक्षों में देखो। इन हरे वृक्षों से छन-छन कर आती हुई सूरज की किरणों में देखो। इन पक्षियों की आवाजों में देखो। भगवान तो उत्सव है। भगवान महोत्सव है। और जब तुम्हारे जीवन में भी उत्सव आता है तो गीत पैदा होंगे, मूर्तियां बनेंगी, मंदिर उठेंगे, रंग फैलेंगे, फाग होगी, गुलाल उड़ेगी।

और जब तुम्हारे जीवन में ऐसा आनंद का उत्सव आ जाए तो ही समझना कि तुम्हारी धर्म से पहचान हुई, सद्धर्म से पहचान हुई। एस धम्मो सनंतनो! ऐसा ही धर्म सनातन धर्म है, जो उत्सव ले आए।
लेकिन रुग्ण मनुष्य ने धर्म को भी रुग्ण कर दिया है। बीमार हाथों में पड़कर धर्म भी बीमार हो गया है। नकारात्मक आदमी मेरी दृष्टि में नास्तिक है। मेरी नास्तिक की परिभाषा यही है। आस्तिक मैं उसे कहता हूं जो विधायक है; जो जीवन को कहता है हां, समग्रता से; उसे मैं आस्तिक कहता हूं। ईश्वर को माने न माने, मानना न मानने का कोई मूल्य नहीं है, जीने का मूल्य है। जो इस तरह जीता है कि जीवन के साथ हां का उसका संबंध होता है, वह आस्तिक। नास्तिक वह है जिसका जीवन के साथ संबंध नहीं का संबंध है, नकार का संबंध है। जो हर चीज को तोड़ रहा है, हर चीज को खंडित कर रहा है। जो मृत्यु की सेवा में लीन है। जो परमात्मा से शिकायत कर रहा है। कि तुमने मुझे जन्म क्यों दिया? किस कसूर का दंड दिया है मुझे? किन पापों का फल भोग रहा हूं? जो परमात्मा से यह शिकायत कर रहा है वह नास्तिक है। वह किन्हीं पापों का फल नहीं है, यह तुम किन्हीं गलत किए गए कामों का दंड नहीं पा रहे हो, यह परमात्मा का प्रसाद है। इसे प्रसाद रूप ग्रहण करो ताकि तुम्हारे भीतर से धन्यवाद उठ सके। और जिसके भीतर से धन्यवाद उठा उसके भीतर से प्रार्थना उठी। धन्यवाद ही प्रार्थना है।

चौथा प्रश्नः मैं उदास क्यों हूं? ऐसे तो सब है--सुख-सुविधा फिर भी उदासी है कि घटती नहीं वरन बढ़ती ही जाती है। क्या ऐसे ही, व्यर्थ ही समाप्त हो जाना मेरी नियति है?

उदास हो तो अकारण नहीं हो सकते। तुम्हारे जीवन-दर्शन में कहीं भूल होगी। तुम्हारा जीवन-दर्शन उदासी का होगा। तुम्हें चाहे सचेतन रूप से पता हो या न हो, मगर तुम्हारी जीवन को जीने की शैली स्वस्थ नहीं होगी, अस्वस्थ होगी। तुम जीवन को ऐसे ढो रहे होओगे जैसे कोई बोझ को ढोता है।
मैंने सुना है, एक संन्यासी हिमालय की यात्रा पर गया था। भरी दोपहर, पहाड़ की ऊंची चढ़ाई, सीधी चढ़ाई, पसीना-पसीना, थका-मांदा हांफता हुआ अपने छोटे से बिस्तर को कंधे पर ढोता हुआ चढ़ रहा है। उसके सामने ही एक छोटी सी लड़की, पहाड़ी लड़की अपने भाई को कंधे पर बैठाए हुए चढ़ रही है। वह भी लथपथ है पसीने से। वह भी हांफ रही है। संन्यासी सिर्फ सहानुभूति में उससे बोलाः बेटी, तारे ऊपर बड़ा बोझ होगा। उस लड़की ने, उस पहाड़ी लड़की ने, उस भोली लड़की ने आंख उठा कर संन्यासी की तरफ देखा और कहाः स्वामी जी, बोझ तो आप लिए हैं, यह मेरा छोटा भाई है।
बोझ में और छोटे भाई में कुछ फर्क होता है। तराजू पर तो नहीं होगा। तराजू को क्या पता कि कौन छोटा भाई है और कौन बिस्तर है! तराजू पर तो यह भी हो सकता है कि छोटा भाई ज्यादा वजनी रहा हो। साधु का बंडल था, बहुत वजनी हो भी नहीं सकता। पहाड़ी बच्चा था, वजनी होगा। तराजू तो शायद कहे कि बच्चे में ज्यादा वजन है। तराजू के अपने ढंग होते हैं मगर हृदय के तराजू का तर्क और है।
उस लड़की ने जो बात कही, संन्यासी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है--उनका नाम था भवानी दयाल--उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मुझे ऐसी चोट पड़ी कि इस छोटी सी बात को मैं अब तक न देख पाया? इस भोली-भाली लड़की ने कितनी बड़ी बात कह दी! छोटी सी बात में कितनी बड़ी बात कह दी! छोटे भाई में बोझ नहीं होगा। जहां प्रेम है वहां जीवन निर्भार होता है।
तुम जरूर अप्रेम के ढंग से जी रहे हो। तुम्हारा जीवन-दर्शन भ्रांत है इसलिए तुम उदास हो। हालांकि तुमने जब प्रश्न पूछा होगा तो सोचा होगा कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे उत्तर दूंगा जिनसे सांत्वना मिलेगी। कि मैं कहूंगा कि नहीं--पिछले जन्मों में कुछ भूल-चूक हो गई है, उसका फल तो पाना पड़ेगा। अब निपटा ही लो। किसी तरह बोझ है, ढो ही लो, खींच ही लो।
राहतें मिलती हैं ऐसी बातों से। क्योंकि अब पिछले जन्म का क्या किया
जा सकता है? जो हुआ सो हुआ। किसी तरह बोझ है, ढो लो। मैं तुमसे यह नहीं कहता

कि पिछले जन्म की भूल है जिसका तुम फल अब भोग रहे हो। अभी तुम कहीं भूल कर रहे हो, अभी तुम्हारे जीवन के दृष्टिकोण में कहीं भूल है। पिछले जन्मों पर टाल कर हमने खूब तरकीबें निकाल लीं। असल में पिछले जन्म पर टाल दो तो फिर करने को कुछ बचता नहीं, फिर तुम जैसे हो सो हो। अब पिछला जन्म फिर से तो लाया नहीं जा सकता। जो हो चुका सो हो चुका। किए को अनकिया किया नहीं सकता। अब तो ढोना ही होगा, खींचना ही होगा, उदास रहना ही होगा।
नहीं, उदास रहने की कोई भी जरूरत नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है। मैं तुमसे यह बात कह दूं कि परमात्मा के जगत में उधारी नहीं चलती। पिछले जन्म में कुछ गलती की होगी, पिछले जन्म में भोग ली होगी। परमात्मा कल के लिए हिसाब नहीं रखता। वह ऐसा नहीं कि आज नगद, कल उधार। नगद ही नगद है, आज भी नगद और कल भी नगद। आग में हाथ डालोगे, अभी जलेगा कि अगले जन्म में जलेगा पानी पियोगे, प्यास अभी बुझेगी कि अगले जन्म में बुझेगी? इतनी देर नहीं लगती प्यास के बुझने में न हाथ के जलने में।
मेरे देखे जब भी तुम शुभ करते हो तत्क्षण तुम पर आनंद की वर्षा हो जाती है। तत्क्षण! देर-अबेर नहीं होती। तुमने कहावत सुनी है कि उसके जगत में देर है, अंधेर नहीं। मैं तुमसे कहता हूं कि देर हुई तो अंधेर हो जाएगा। न देर है न अंधेर है, सब नगद है।
तुम जरा फिर से पुनर्विचार करो, अपनी जीवन-शैली को थोड़ा जांचो। अब जो आदमी यह मान रहा है कि घर-गृहस्थी में रह कर कैसे प्रसन्न हो सकता है, कहो! मुझे कहो, कैसे प्रसन्न होगा? जो आदमी मानता है कि यह पाप है, कब इससे छुटकारा होगा--यह पत्नी, ये बच्चे, यह घर, यह संसार! कब आएगी वह सौभाग्य की घड़ी कि चला जाऊंगा हिमालय की किसी गुफा में और बैठूंगा सब छोड़-छोड़ कर संसार का माया-मोह! जो आदमी ऐसा मान रहा है... और ऐसे ही आदमी मान रहे हैं। इस देश में तो हर आदमी ऐसा मान रहा है। जो अभी-अभी घोड़े पर सवार होकर दूल्हा बन कर जा रहा है, शहनाई बज रही है वह भी ऐसा मान रहा है कि पाप में पड़ रहा हूं। शहनाई अभी ही फीकी हो गई, फूल अभी कुम्हला गए। दुल्हन को लेकर आया है डोले पर, दुल्हन अभी मर गई, लाश आ रही है घर अब। तुम्हारे चित्त में... तुम्हारे चित्त के मूल स्रोत ही जैसे विषाक्त कर दिए गए हैं। तुम्हें इतनी गलत बातें सिखाई गई हैं... ।
मेरे पास युवक आ जाते हैं, वे मुझसे पूछते हैं कि शादी करें या न करें--
आप क्या कहते हैं। मां-बाप पीछे पड़े हैं, पाप में उलझाना चाहते हैं। उन्हें पता नहीं कि मैं.जरा और ढंग का आदमी हूं। वे और साधु-संन्यासियों के पास जाकर ऐसी बात कहते हैं तो वे बड़े प्रसन्न होते हैं कि बेटा, तू बड़ा सात्विक है, तू बड़ा धार्मिक है। मां-बाप की बातों में मत पड़ना, ये तो माया- मोह में उलझाने की बातें हैं। तेरे भीतर बड़ा बोध जगा है।
जब मुझसे कोई ऐसा कहता है कि मुझे पाप में उलझा रहे हैं तो मैं थोड़ा सोचता हूं कि यह युवक अगर विवाह करेगा तो मुश्किल में पड़ेगा, अगर नहीं विवाह करेगा तो मुश्किल में पड़ेगा। इसकी जिंदगी में उदासी नियति हो जाएगी। नहीं विवाह करेगा तो इसकी प्रकृति बदला लेगी। इसके जीवन की सहज आकांक्षाएं अतृप्त रह जाएंगी तो चित्त खिन्न रहेगा। दबाएगा वासनाओं को, वे उभर-उभर कर आएंगी तो जीवन एक अंतःसंघर्ष हो जाएगा। एक आत्मिक कलह हो जाएगी। यह चौबीस घंटे अपने से लड़ेगा। और जो अपने से लड़ रहा है वह प्रसन्न नहीं हो सकता। उसकी ऊर्जा तो लड़ाई में ही क्षीण हो जाती है। उसकी ऊर्जा फूल बनने को बचती ही नहीं। उसके भीतर कभी सहस्रार नहीं खिलता, नहीं खिल सकता। और अगर यह विवाह कर लेगा तो अभी से ही यह कह रहा है कि पाप, तो यह बोझ ढोएगा--यह पत्नी, ये बच्चे, यह घर-द्वार, और उदास रहेगा।
हमारी जीवन को देखने की पद्धति में कहीं बुनियादी भूल है। हमारा गणित गलत है। तुम कहते हो, मैं उदास क्यों हूं? तुम उदास हो क्योंकि तुम्हारा फलसफा तुम्हारा दर्शनशास्त्र तुम्हें उदास कर रहा है। तुमने जिन धर्मो को पकड़ लिया है वे तुम्हें उदास कर रहे हैं। तुम छुटकारा पाओ इन सारी दृष्टियों से। तुम जीवन को जरा ज्यादा सरलता से जीने की शुरुआत करो, सिद्धांतों और शास्त्रों की आड़ मत लो जीवन को जीने में। जीवन को जीओ सरलता से, सहजता से; थोड़े नैसर्गिक, थोड़े प्राकृतिक--और तुम्हारे जीवन में भी

उत्फुल्ता आएगी। अगर गुलाब को यह ख्याल आ जाए कि खिलना पाप है, तो फिर फूल खिलेगा तो भी उदास होगा। नहीं खिलेगा तो गुलाब के प्राणों में पीड़ा होगी कि बिना खिला हूं। फूल टूटना चाहेगा, कली खुलना चाहेगी और वृक्ष उसे दबाएगा और खुलने न देगा तो आत्मघाती हो जाएगा। और अगर खुलने दिया, फूल खिला तो उदास खिलेगा फूल; उसमें सुवास नहीं होगी, जिंदगी नहीं होगी। उसमें मौत की छाप होगी।
गलत दृष्टियों ने तुम्हें जन्म से ही मार डाला है। मगर वे दृष्टियां बड़ी प्राचीन हैं, बड़ी सम्मानित हैं, परंपरा से बड़ी समादृत हैं। तुम्हें याद भी नहीं है कि तुमने गलत दृष्टियां पकड़ रखी हैं। और फिर तुम उदास होते हो तो स्वभावतः प्रश्न उठता है कि मैं उदास क्यों हूं? और फिर तुम उन्हीं महात्माओं के पास जाते हो जिन्होंने तुम्हारी उदासी के सारे बीज बोए हैं। वे तुम्हें सांत्वना देते हैं कि पिछले जन्मों के पाप के कारण उदास हो। अब इस जन्म में मत करना, नहीं तो अगले जन्म में भी उदास रहोगे। उन्हीं की बातों के कारण तुम इस जन्म में उदास हो, उन्हीं की बातों के कारण तुम अगले जन्म में उदास रहोगे।
कब तुम अपने महात्माओं से मुक्त होओगे? परमात्मा की सुनो, महात्माओं
से मुक्त होओ। और परमात्मा की सुननी हो तो बीच से सारे महात्माओं को हटा दो। तुम्हारे भीतर ही निश्चल चेतना में उसका स्वर गूंजेगा। वहीं ध्यान जमाओ। शांत होकर वहीं बैठो। वहीं से आने दो उद्घोष। वहीं से आने दो आवाज, वहीं से आने दो उपदेश, और उसी की मान कर चलो। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी जिंदगी में प्रसन्नता ही प्रसन्नता फैल जाएगी। इस कोने से लेकर उस कोने तक दीपावली ही दीपावली हो जाएगी, दीये वही दीये जल जाएंगे।
कहते हो तुमः "ऐसे तो सब है--सुख-सुविधा, फिर भी उदासी है कि घटती नहीं
है वरन बढ़ती ही जाती है।"
सुख-सुविधा से कोई संबंध नहीं है आनंद का। कभी-कभी जिनके पास कोई सुख-सुविधा नहीं है वे भी आनंदित मिल जाएंगे। कोई अनिवार्य संबंध नहीं है कि तुम्हारे पास धन है इसलिए तुम्हें सुखी होना चाहिए। सुख तो एक कला है। प्रसन्नता एक कला है, एक राज है। जिसको आता है उसके पास धन न हो तो भी प्रसन्न होता है, और धन हो तो तो निश्चित ही होता है।
तुम मेरी बात जरा गौर से समझना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धन न हो तो
ही प्रसन्न हो सकता है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि धन हो ही, तो ही कोई प्रसन्न हो सकता है। ये दोनों बातें अधूरी हैं, अधकचरी हैं। जिसको प्रसन्न होना आता है वह कहीं भी प्रसन्न हो सकता है।

जिसे नाचना आता है वह टेढ़ा आंगन हो तो भी नाच सकता है। जिसे नाचना आता
है वह जेल की काली कोठरी में भी नाच सकता है। जिसे बांसुरी बजाना आता है वह अंधेरी से अंधेरी अमावस में भी बांसुरी बजा सकता है। और बांसुरी बजाना न आता हो और तुम्हें महल में बिठा दिया जाए तो तुम करोगे क्या? झोपड़े में उदास थे, महल में और उदास हो जाओगे। क्यों और उदास हो जाओगे? क्योंकि झोपड़े में एक आशा थी कि अगर महल होगा तो प्रसन्न होंगे। अब वह आशा भी गई। अब उतनी आशा का भी सहारा न रहा। अब महल भी है और उदासी है।
तुम समझो, बाहर से उदासी और प्रसन्नता का कोई संबंध नहीं है, भीतर से संबंध है। इसलिए मैं नहीं कहता कुछ त्यागो, छोड़ो, भागो। नहीं, भीतर की कला सीखो। धन हो तो जो भीतर की कला जानता है वह धन का सदुपयोग कर लेगा; वह धन को जी लेगा। अक्सर तो भीतर की कला न जानने वालों के पास धन होता है तो वह धन से केवल इतना ही करते हैं कि अपने लिए चिंताएं पैदा करते हैं। कृपण हो जाते हैं, कंजूस हो जाते हैं। धन को और जोर से पकड़ लेते हैं, निन्यानबे के फेर में पड़ जाते हैं। जिनके पास नहीं होता वे तो खर्च भी कर लेते हैं। वे तो कहते हैं, है ही नहीं तो यह भी गया तो गया। वैसे भी क्या है? इसलिए गरीब आदमी तो थोड़ा हिम्मत से खर्च भी कर लेता है, अमीर आदमी खर्च भी नहीं करता। वह कहता है कि इतना और बच जाए तो थोड़ा और हो जाएगा। इतना और बच जाए तो थोड़ा और हो जाएगा। जैसे-जैसे आदमी अमीर होता जाता है। वैसे-वैसे कंजूस होता जाता है।

और इस देश में ऐसे कंजूसों को हम कहते हैं कितने सीधे-सादे हैं। कंजूस हैं, सीधे-सादे.जरा भी नहीं हैं। बहुत इरछे-तिरछे हैं, बहुत चालबाज हैं। मगर हम उनको कहते हैं कैसे सीधे-सादे हैं। देखो इनका जीवन कैसा साधु का जीवन है! जब साधु का ही जीवन जीना था तो कृपा करो यह धन किसी और को दो, उसको जी लेने दो। तुम साधु बनो। धन पर तो बैठे हैं फन मार कर और साधु का जीवन जी रहे हैं। इस तरह की मूढ़ता को समादर दिया जाता रहा है। यह निपट मूढ़ता है। धन हो तो धन को जी लो। जब नहीं होगा तो निर्धनता को जी लेना। अभी तो धन है तो धन का गीत गाओ, जब नहीं धन हो तो निर्धनता का गीत गा लेना। अभी जल्दी क्या पड़ी है! मगर लोग धन भी नहीं भोग सकते, क्योंकि भोग ही नहीं सकते। भोग की ही निंदा है।
तुम कहते हो सब सुख-सुविधा है, होगी मगर तुम्हें कुछ नहीं है। तुम तो सुख-सुविधा में भी देख रहे होओगे कि यह सब भोग है! कहां पड़ा हूं, कहां उलझा हूं! कैसा मजा नहीं होगा फकीरों को!?
अक्सर ऐसा हो जाता है कि शहरों में जो लोग रहते हैं वे सोचते हैं देहात में रहनेवाले लोग बड़े मजे में हैं। देहात में रहनेवाले दूसरी बात सोचते हैं। वे सोचते हैं शहर में रहने वाले लोग बहुत मजे में हैं। असल में तुम जहां नहीं हो, लगता है मजा वहां है।
गांव के लोग सब बंबई जाना चाहते हैं। कोई नहीं रुकना चाहता। नहीं तो आखिर बंबई में लोग बढ़ते कहां से जा रहे हैं! सारे गांव बंबई आना चाहते हैं। अगर न रह पाएं तो कम से कम दर्शन करने बंबई आना चाहते हैं। और बंबई के लोग देहात की सुन कर उनकी छाती खिल जाती है अहा! देहात में कैसा सुख! कैसी सुविधा! प्राकृतिक सौंदर्य, ताजी हवाएं ये कहां बंबई की गंदी हवा!
मैं कश्मीर था, बंबई के कुछ मित्र मेरे साथ थे। जिस बजरे पर हम मेहमान थे, मेरे बंबई के मित्र, बंबइया मित्र--वे डल झील की खूब तारीफ करें। और ताजी हवाएं और वृक्ष और चिनार के दरख्त, और चांद-तारे और कश्मीर। उनकी बातें सुन कर वह जो बजरे का मांझी था वह बड़ा चौंके, बड़ा हैरान हो। यह मैं देखता रहा, देखता रहा। मैंने उससे पूछा कि तू इनकी बातें सुन कर बड़ा चौंकता है। उसने कहा, मैं चौंक नहीं तो क्या करूं? मेरी जिंदगी यहीं बीती। यही झील, इसी से सिर मारते-मारते जिंदगी गंवाई। यही नाव, यही चिनार! उनकी बातें सुन कर मैं भी देखता हूं कि क्या खूबी है चिनार में! कुछ मुझे दिखाई पड़ती नहीं। वह मुझे बाबा कहता था। जब हम चलने लगे तो पैर पकड़ लिए। उसने कहा, बाबा बस एक आशीर्वाद, एक दफे बंबई के दर्शन करवा दो। तो मैंने बंबइया मित्रों से कहा, सुनते हो? यह डल-झील का माझी, यह कहता है, बस एक जीवन में इच्छा है, सिर्फ एक, कोई बड़ी इच्छा भी नहीं बेचारे की--कि बंबई का एक दफा दर्शन हो जाए। फिल्मों में देखा है, कहने लगा, कैसा सुख नहीं लोग भोग रहे होंगे!
शहर में रहनेवाला आदमी गांव की तारीफ करता है। गांव जाता-वाता नहीं। कौन तुम्हें रोक रहा है? जाओ, भोगो गांव की कीचड़ और मच्छर और जो भी तुम्हें भोगना हो। और गांव की गंदगी और बदबू! जाओ! गांव जाता-करता नहीं, शहर बैठ कर विचार करता है। महल में बैठा आदमी सोचता है, अहा! जिनके पास कुछ नहीं है, घोड़े बेच कर सोते हैं। क्या मस्ती की नींद! फकीरों की नींद! एक हम हैं कि रात भर चिंता ही चिंता। और वह जो फकीर है, वह देख रहा है कि महल में मजा आ रहा होगा, राग-रंग चल रहा होगा। बड़ी उल्टी दुनिया है।
मैंने सुना है एक बार बनारस में एक महात्मा की मृत्यु हुई और उसी दिन
एक वेश्या की भी मृत्यु हुई। दोनों आमने-सामने रहते थे। अक्सर महात्मा और वेश्या आमने-सामने रहते हैं। दोनों का बड़ा पुराना लेन-देन है। महात्मा के बिना वेश्या नहीं हो सकती और वेश्या के बिना महात्मा नहीं हो सकता। जिस दिन दुनिया में महात्मा नहीं होंगे, वेश्याएं समाप्त हो जाएंगी। क्योंकि वेश्याओं को पैदा कैसे करोगे? महात्मा सिखाता है काम-वासना को दबाओ। और जब महात्मा का पाठ सीख लिया तो फिर वेश्या पैदा होती है। वह दबी हुई कामवासना वेश्या को पैदा करती है। अगर वेश्याएं मिटानी हैं तो पहले महात्मा मिटाने होंगे।

सो कहानी ठीक ही मालूम पड़ती है, तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। महात्मा और वेश्या आमने-सामने रहते थे। दोनों साथ-साथ मर गए। देवदूत लेने आए। महात्मा तो बहुत नाराज हुआ, क्योंकि उसको नरक की तरफ ले चले--पाताल की तरफ, जहां आजकल अमरीका है। और वेश्या को स्वर्ग की तरफ ले चले, आकाश की तरफ। महात्मा ने कहा रुको, यह ज्यादती हो रही है। मैं महात्मा हूं। लगता है कुछ भूल-चूक हो गई। दफ्तर की कोई भूल मालूम होती है। स्वर्ग मुझे ले जाना चाहिए।
देवदूत हंसने लगे। उन्होंने कहाः शक हमें भी हुआ था। तो हमने परमात्मा से पूछा, कुछ भूल-चूक तो नहीं हो गई? कि महात्मा को नरक ले जाना है, वेश्या को स्वर्ग? हमें भी शंका उठी थी तो हम पूछ कर ही आए हैं। अच्छा हुआ हम पूछ कर ही आए। परमात्मा ने कहा, कोई भूल-चूक नहीं हुई, यही शाश्वत नियम है। शाश्वत नियम? हम नये-नये देवदूत हैं, सिक्खड़ हैं, सच पूछो तो यह हमारा पहला ही काम है। तो हमें तो कुछ पता नहीं शाश्वत नियमों का। तो हम और भी चौंके। हमने पूछा, आपका मतलब क्या?
तो उन्होंने कहाः बात यह है कि महात्मा जिंदगी भर यह सोचता रहा कि मजा वेश्या के घर हो रहा है। और वेश्या जीवन भर सोचती रही, रोती रही कि मजा है, आनंद है, तो महात्मा के झोंपड़े में है। महात्मा करता था पूजा, बजाता था घंटी मेरे सामने, सताता था मुझको घंटी बजा बजा कर। अब किसी के भी सामने घंटी बजाओगे तो तुम समझ सकते हो। और रोज-रोज! और पानी चढ़ा रहे हो चाहे ठंड हो, चाहे गर्मी हो। तो घंटी तो मेरे सामने बजाता था लेकिन इसका दिल लगा रहता था वहां--वेश्या की तरफ। खिड़की में खड़े होकर ऐसे तो राम-राम, राम-राम, राम-राम करता था, माला जपता था, मगर देखता रहता था खिड़की से वेश्या को। रात को उठ-उठ कर आता था। उठता था राम-राम कहते हुए, बुलाता था मुझे और मुझको भी जगा देता था। मगर वेश्या के घर नाच चल रहा है, गीत चल रहा है, वीणा बज रही है, मस्त होकर लोग वाह-वाह कर रहे हैं। दिल में इसके बड़ी खटक होती थी। कि मैं भी कहां उलझ गया हूं! यह कौन सी महात्मागीरी में फंस गया! मजा वहां है, इधर तो उदासी ही उदासी है।
और वेश्या को जब भी समय मिलता था तब वह रोती थी। जब महात्मा मंदिर में घंटी बजाता था और पूजा उठती, धूप जलती और सुगंध वेश्या तक पहुंचती तो वह रोती थी कि एक मैं अभागिन! यूं ही जिंदगी बीत जाएगी? परमात्मा को कब पुकारूंगी? उसने कभी पुकारा नहीं मगर उसके आंसू मुझ तक पहुंच गए। और यह मुझे रोज पुकारता रहा लेकिन इसकी पुकार में पुकार थी ही नहीं क्योंकि प्राणों का आह्व नहीं था। इसे नरक ले जाओ, वेश्या को स्वर्ग ले आओ।
ऐसा कुछ आदमी का चित्त है। जो जहां नहीं है वहां होना चाहता है। तुम कहते हो सुख-सुविधा में हो, मगर तुम हो नहीं वहां सुख-सुविधा में। तुम सोचते हो यही होओगे कि फकीर मजे में हैं, संन्यासी मजे में हैं, महात्मा मजे में हैं। इसलिए तुम भीतर ईर्ष्या से जल रहे हो। और ईर्ष्या उदासी लाएगी। जहां हो वहीं मजे में हुआ जा सकता है। जैसे हो वहीं कला है जीवन को जीने की। तुम जीवन की कला से चूक रहे हो। और तुम कहते हो यह बढ़ती जा रही है उदासी, घटती नहीं। वह तो बढ़ेगी। उम्र जैसे-जैसे बढ़ेगी वैसे-वैसे हताश होने लगोगे कि इतने दिन और गए। अब दिन थोड़े बचे। यह तो सांझ आने लगी। यह तो सूरज डूबने को होने लगा। यह मौत दरवाजे पर दस्तक देने लगी। हाथ-पैर लड़खड़ाने लगे, बुढ़ापा आने लगा, अब तक कुछ पाया नहीं। तो और घबड़ाहट बढ़ जाएगी और उदासी बढ़ जाएगी।
लेकिन यह मत सोचो कि क्या ऐसे ही व्यर्थ ही समाप्त हो जाना मेरी नियति है? नहीं, किसी की भी नियति व्यर्थ समाप्त हो जाना नहीं है। नियति तो है सच्चिदानंद हो जाना। नियति तो है परमानंद हो जाना। लेकिन उस नियति को पूरा करने के लिए भी कुछ करो! बीज को डालो जमीन में अंकुरित होगा। पत्थर भी रख दोगे तो क्या करेगा बीज, कैसे अंकुरित हो? और जमीन में भी डाल दोगे और कभी पानी न डालोगे तो भी क्या करे बीज, कैसे अंकुरित हो? और पानी भी डाल दोगे और धूप न मिलने दोगे, छाता लगा कर रख दोगे बीज पर तो क्या करे बीज? संयोजन जुटाओ। सच्चिदानंद के घटने का संयोजन जुटाओ। बीज को गिरने दो भूमि में, जल से सींचो, धूप आने दो। फिर कुछ करना नहीं है तुम्हें और। कुछ खींच-

200

खींच कर पत्ते निकालने हैं, अपने से निकलेंगे। फिर तुम्हें कलियों को पकड़-पकड़ कर खोलना नहीं पड़ेगा। तुम्हें कुछ नहीं करना है, तुम्हें सिर्फ व्यवधान हटा देने हैं।
तो कुछ सूत्र की बातें तुमसे कह दूं। एक--यह जीवन परमात्मा की भेंट है। तुम सौभाग्यशाली हो कि जीवित हो। इसको आधारशिला बनाओ। यह किन्हीं पापों का दंड नहीं है। यह परमात्मा की तरफ से सौगात है। अगर होगा तो पुण्यों का फल होगा। इतना प्यारा जीवन, इतना अदभुत जीवन, इतना रहस्यमय लोक, और पापों का दंड! हटा दो उस पत्थर को और तुम्हारा बीज भूमि में पड़ जाएगा।
फिर तुम जहां हो, वहीं आनंद से जीने की चेष्टा करो। जहां तुम नहीं हो वहां के विचार छोड़ो। क्योंकि वे विचार केवल समय को खराब करवाते हैं। और ऐसा एक भी आदमी नहीं है, ऐसी एक भी स्थिति नहीं है जहां कुछ आनंद संभव न हो। जो तुम्हारे लिए संभव हो, वहीं जितना संभव हो उतना आनंद से जियो।
जीसस का एक अदभुत वचन है। कि जिनके पास है उन्हें और दिया जाएगा और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी ले लिया जाएगा जो उनके पास है। अगर तुम आनंद चाहते हो तो थोड़े आनंदित होओ तो तुम्हें आनंद दिया जाएगा। तुमने यह बात तो सुनी है न कि धन, धन का खींचता है? यह सच है। ध्यान भी ध्यान को खींचता है, यह भी उतना ही सच है। आनंद भी आनंद को खींचता है, यह भी उतना सच है। जो आदमी थोड़ा सा भी आनंदित हो जाता है वह और ज्यादा आनंदित हो जाता है। तुम थोड़े तो आनंदित हो ही सकते हो, कितने ही उदास होओ। जरा जीवन का पहलू बदलो।.जरा जीवन को आशा से देखो, निराशा से नहीं।
मैंने सुना है, एक आशावादी एक बार गिर पड़ा मकान से। न्यूयार्क का मकान! सत्तरवीं मंजिल से गिर पड़ा। चला नीचे की तरफ। आशावादी था, कभी किसी ने उसके मुंह से दुख की कोई बात नहीं सुनी थी। हर चीज में कुछ न कुछ अच्छा खोज लेता था। शुभ्र पहलू को देखना उसका अयास था। उसको जीवन में सदा ही आनंदित लोगों ने पाया था। आज लोग खिड़की से झांक-झांक कर पूछने लगे, क्या हाल है? क्योंकि अब तो पक्का था कि आज तो वह कहेगा कि मारे गए! लेकिन पता है उसने क्या कहा? उसने कहाः अब तक तो आनंद ही आनंद है। अब तक! गिर रहा है जमीन की तरफ। ऐसे ही हम सभी गिर रहे हैं जमीन की तरफ। आखिर मौत नीचे प्रतीक्षा कर रही है। लेकिन अब तक तो उसने कहा, आनंद ही आनंद है।
जीवन को आशा की दृष्टि से देखो। निराशा की आदतें छोड़ो। हर अंधेरी रात में चमकते हुए तारे हैं। और हर काले बादल में चमकती हुई बिजली का गोटा जड़ा हुआ है। कांटे मत गिनो गुलाब की झाड़ी में, फूल गिनो। और फूल गिनना सीख जाओ तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि कांटे भी फूल हो गए। जिनके पास है उन्हें और दिया जाएगा और जिनके पास नहीं हैं उनसे वह भी ले लिया जाएगा जो उनके पास है। जो कांटे गिनेंगे उनके लिए फूल भी कांटे हो जाएंगे। गिनती बदलो, गणित बदलो, और तुमने पानी डाल दिया बीज पर।
और तीसरी बात--सिर्फ सोचो-विचारो मत; आनंद को अभिव्यक्त करो, तो धूप आ जाने दी तुमने। अभिव्यक्त करो आनंद को। लोग आनंद को अभिव्यक्त नहीं करते। गाली तो दे देते हैं, गीत नहीं गाते। हंसो भी, मुस्कुराओ भी, नाचो भी, गुनगुनाओ भी। क्योंकि जिसे तुम अभिव्यक्त करोगे, बहाओगे, फैलाओगे, उसके लिए तुम्हारे भीतर और नये-नये झरनों से ऊर्जा आनी शुरू हो जाएगी। जैसे कुंए से कोई पानी खींचता है तो झरने नया पानी ले आते हैं कुंए में, ऐसे ही हम सब परमात्मा के सागर से जुड़े हैं। उलीचो! दोऊ हाथ उलीचिए। उलीचो! जो तुम्हारे पास है उसे बांटो! मस्ती को लुटाओ। और तुम चकित होओगे नई-नई ऊर्जा, नई-नई धाराएं, नये-नये झरने फूटते आ रहे हैं। और एक बार यह रहस्य पता चल जाए, यह राज हाथ में आ जाए कि लुटाने से बढ़ता है, बांटने से बढ़ता है, अभिव्यक्त करने से मिलता है, और-और मिलता है तो बस! ये तीन सूत्र पूरे हो जाएं कि उदासी गई, रात गई, सुबह हुई।
नियति नहीं है उदास होना, दुर्भाग्य है, दुर्घटना है। तथाकथित गलत जीवन-दृष्टियों, गलत जीवन-शास्त्रों का परिणाम है। गले में तुम्हारी फांसी लगी है। मगर चूंकि फांसी महात्मा लगाए हुए हैं, तुम फांसी नहीं तोड़ सकते। क्योंकि तुम्हें लगता है कि महात्मा फांसी नहीं लगा सकता, फूल-माला

पहनाई होगी।.जरा गौर से देखो, तुम्हारे धर्म ने तुम्हें जीवन नहीं दिया है, जीवन छीन लिया है। एक नये धर्म की तलाश जरूरी है।
सारी पृथ्वी पर एक नई धार्मिकता की तलाश जरूरी है। धार्मिकता होगी आने वाले भविष्य में; न हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई होगा, एक धार्मिकता होगी। जीवन को जीने का एक अहोभाव होगा। एक धन्यवाद होगा परमात्मा के प्रति। उस नये मनुष्य के लिए ही आवाहन है। मेरा संन्यास उस नये मनुष्य के अवतरण के लिए भूमिका है।

आज इतना ही।